वर्ष-34, अंक-394

संपर्क भाषा भारती

वर्ष 1990 से प्रकाशित साहित्य-समाज को समर्पित राष्ट्रीय मासिकी, अगस्त—2023, RNI-50756

डॉ धनंजय सिंह विशेषांक

60/-

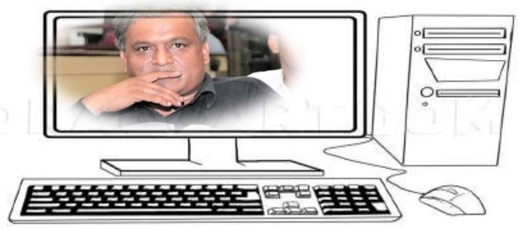

अपनी बात...

संपर्क भाषा भारती पत्रिका के समस्त पाठकगण नमस्कार!

संपर्क भाषा भारती पत्रिका ने अप्रैल माह 2023 में यह निर्णय लिया था कि पत्रिका अपने जून, जुलाई और अगस्त 2023 के अंकों को विशेषांक के तौर पर प्रकाशित करेगी। अतीव प्रसन्नता हो रही है अगस्त 2023 का डॉ धनंजय सिंह को समर्पित यह अंक आपके सम्मुख रखते हुए। जाहिर तौर पर इन विशेषांकों के लिए जो नाम ध्यान में आए वे रचनाकारों की वरिष्ठता और उनके संबन्धित क्षेत्र में योगदान को ध्यान में रखते हुए ही आए थे। यह भी दृष्टिगत रखा गया था कि उनसे संपर्क की सहूलियत भी रहे।

इसी क्रम में आरंभ में चार साहित्यकारों पर काम करने का इरादा रहा। जो इस प्रकार थे :

श्री त्रिलोकदीप :

त्रिलोकदीप जी हालांकि, ता-उम्र समाचार जगत से जुड़े रहे किन्तु उन्होंने सदैव समाचारों एवं सामाजिक सरोकारों को अपने जीवन और व्यक्तिगत येषणा से ऊपर रखा। जहां आज के छुट-भइये पत्रकार खुद के रचे चरित्र से इतने आत्म-मोहित होते हैं कि सदैव उसी का जाप करते रहते हैं वहीं त्रिलोकदीप इससे एक दम भिन्न हैं। कुछ पत्रकार, किसी संस्थान में, आज के हिसाब से तीस-चालीस हज़ार रुपये की क्लर्की करते हुए, अपने नाम और कृत्य से पहले किसी भी अखबार या पत्रिका का एसोशिएट एडिटर, एडिटर लिखते हैं, त्रिलोकदीप ने ऐसे जाने कितने पत्रकारों को उनके बुरे समय में चुपचाप नौकरी प्रदान कर उन्हें उस ऊंचाई तक पहुँचने में मदद प्रदान की जहां से आज वे दुनिया को छोटा देखते हैं।

श्री त्रिलोकदीप जो इसी 11 अगस्त को 90वें वर्ष में प्रविष्ट होंगे स्वर्गीय अज्ञेय जी के शिष्य हैं। जिनके मानस पटल पर अज्ञेय के तमाम जीवन के अंतरंग पहलू, कहानियाँ, मिथ, उनके निजी संबंध, कपिला वात्स्यायन जी का स्त्री पक्ष, प्रेयसी और अंतिम समय की साक्षी सुश्री डालमिया के अछूते एवं गोपन संस्मरण उनका अज्ञेय जी के प्रति मौन समर्पण सब कुछ एक हरी-भरी मनोरम वादी के सदृश्य वृहत्त, विहंगम कैनवास पर मोनालिसा की कृति से भी सुंदरतम तरीके से टंकित और अंकित है।

हिन्दी पत्रकारिता में पत्रकारिता को समर्पित जाज्वल्यमान चेहरे, मेरे चार दशकीय अनुभव के हिसाब से दस फीसद से भी कम हैं जो जैसा जीवन जीते हैं, वैसा ही लिखते हैं। त्रिलोकदीप उनमें से एक हैं। हिन्दी पत्रकारिता में दोहरे चरित्र के पत्रकार लगभग 90 फीसद हैं जो सार्वजनिक नैतिकता की बात अखबारों में लिखते हैं किन्तु व्यक्तिगत जीवन में घोर अनैतिक और भ्रष्ट कार्यों में लिप्त रहते हैं। हर शाम शराब में, हर शाम युवतियों को पत्रकार बनाने की फिराक में संपादकों के कमरों में धकेलने वाले, हर थाने के एसएचओ से साठ-गांठ, वेश्यावृत्ति करा रहे और जबरन युवतियों को इस कारोबार में धकेलनेवालों से अवैध वसूली कराने वाले आपराधिक पत्रकारों के दिवंगत होने के नाम पर आज 'पत्रकारिता' विद्यालय चल रहे हैं। 'जनसत्ता' में 1987 में प्रभाष जोशी जी से मैंने इस विषय पर खुल कर कह दिया था। दरअसल मैं बीएचईएल की सरकारी नौकरी से असंतुष्ट हो कर पुनः पत्रकारिता में लौटना चाहता था। साक्षात्कार में मैंने उनसे स्पष्ट कहा कि जनसत्ता जॉइन करने से पहले मेरी दो प्रमुख शर्तें रहेंगी। मुझे प्रसन्नता है कि प्रभाष जी ने मेरी उन दोनों बातों का सम्मान रखा।

जनसत्ता से एप्वाइंटमेंट लेटर मिलने की प्रसन्नता थी। यह प्रसन्नता इसलिए भी अधिक थी क्योंकि इसके माध्यम से मुझे सक्रिय और प्रतिष्ठित पत्रकारिता में वापस आने का मौका मिल रहा था। इन सब से बढ़ कर यह भी कि सरकारी संगठन में मेरे जैसे प्रोफाइल का कोई विशेष योगदान का रास्ता दिख नहीं रहा था। **(कृपया, इसे पृष्ठ 46 से आगे पढ़ें......)**

संपर्क भाषा भारती
प्रधान संपादकीय कार्यालय : सुधेन्दु ओझा (संपादक), ग्राम : मकरी, पोस्ट भुइंदहा, पृथ्वीगंज, प्रतापगढ़-230304
पत्रिका में प्रकाशित लेख में व्यक्त विचार लेखक के हैं उनसे संपादक मण्डल या संपर्क भाषा भारती पत्रिका का सहमत होना आवश्यक नहीं है। किसी भी विवाद की स्थिति में न्याय-क्षेत्र नई दिल्ली रहेगा। प्रकाशक, मुद्रक तथा संपादक : सुधेन्दु ओझा
दिल्ली पत्र व्यवहार का पता : 97, सुंदर ब्लॉक, शकरपुर, दिल्ली110092

संपर्क भाषा भारतीय

संपादकीय परिवार

मुख्य संपादक : सुधेन्दु ओझा
प्रधान कार्यालय : ग्राम-मकरी, पोस्ट-भुइंदहा, पृथ्वीगंज हवाई अड्डा, प्रतापगढ़-230304 उत्तर प्रदेश
नई दिल्ली कार्यालय : 97, सुंदर ब्लॉक, शकरपुर विस्तार, नई दिल्ली—110092
पत्रव्यवहार तथा पुस्तक भेजने का पता : 97, सुंदर ब्लॉक, शकरपुर विस्तार, नई दिल्ली—110092
फोन नंबर : 9868108713/7701960982
ईमेल : samparkbhashabharati@gmail.com

क्षेत्रीय कार्यालय

आशा शैली : शैलसूत्र त्रैमासिक पत्रिका —सम्पादन
इन्दिरा नगर-2, लाल कुआं, हल्द्वानी-263402 उत्तराखंड
फोन नंबर : 7055336168/9456717150
ईमेल : sha.shaili@gmail.com

अंजना सवि छलोत्रे : वृन्दा, मासिक पत्रिका: सम्पादन
जी-48, फॉर्च्यून ग्लोरी, ई-8, एक्सटेंशन, भोपाल-462039 मध्य प्रदेश
फोन नंबर : 8461912125
ईमेल : anjana.savi@gmail.com

संपर्क भाषा भारती क्षेत्रीय कार्यालय के रूप में संबद्धता की इच्छुक पत्रिकाओं का स्वागत है...

आप अपनी रचनाएँ,

गोष्ठी/सम्मान समारोह संबंधी सूचना फोटो सहित

स्वयं www.newzlens.in पर सब्मिट कर सकते हैं ...

सभी पत्रिकाएँ डाउनलोड के लिए www.newzlens.in पर उपलब्ध हैं...

अगस्त—2023

क्रम:	शीर्षक	लेखक:	पृष्ठ संख्या
1	संपादकीय		2
2	सभा/समाचार		6-10
3	विज्ञान व्रत की 5 ग़ज़लें	विज्ञान व्रत	11
4	लोक संस्कृति की लय है कजरी	कृष्ण कुमार यादव	12-16
5	एक पर्व है कजरी	प्रतिमा पुष्प	17-18
6	कविता	चन्द्र कांता सिवाल	18
7	कविता	डॉ प्रेम कुमार / विकास तिवारी	19
8	कविता	राजपाल सिंह गुलिया	19
9	कविता	बाबा कल्पनेश	19
10	कहानी : देस हुआ बेगाना	प्रकाश मनु	20-23
11	गुजराती कहानी : हल्का फूल	प्रभु दास पटेल	24-27
12	कविता	विजय कनौजिया	27
13	कविता	अनिल कुमार मिश्र	28
14	कविता	विजय कनौजिया	28
15	इंटरनेट के गुलाम नहीं....	पद्मा अग्रवाल	29-31
16	कहानी : मंसूबा	श्याम बिहारी श्यामल	32-33
17	कविता	संजय कुमार सिंह	33
18	कविता	आंबा सुवासरा	34
19	कविता	भानु भारवि	34
20	कविता	अशोक दर्द	34
21	कहानी : डायरी	वंदना गुप्ता	35-39
22	कविता	निर्मला कुमारी	39
23	व्यंग्य : बुद्धसेन से बुद्धूलाल	रामानुज अनुज	40-42
25	पुस्तक समीक्षा	कैलाश अग्रवाल "बेगाना"/ राजकुमार घुवालेवाला	43
26	पुस्तक समीक्षा	डॉ ज्ञानप्रकाश 'पीयूष'	44
27	डॉ धनंजय सिंह	सुधेन्दु ओझा	46-51
28	अनुपम गीतों के रचनाकर	प्रवीण कुमार	52-54
29	काव्य रथ का सव्यसाची	ब्रजेश भट्ट	54
30	धनंजय सिंह के गीतों में भाव एवं शिल्प संगम	डॉ योगेंद्र नाथ शर्मा	55-57
31	कंटक पथ का एक बटोही	संध्या सिंह	58-60
32	मत चूकै चौहान	योगेंद्र दत्त शर्मा	61-64

पत्रिका में प्रकाशित लेख में व्यक्त विचार लेखक के हैं उनसे संपादक मण्डल या संपर्क भाषा भारती पत्रिका का सहमत होना आवश्यक नहीं है। किसी भी विवाद की स्थिति में न्याय-क्षेत्र नई दिल्ली रहेगा। प्रकाशक, मुद्रक तथा संपादक : सुधेन्दु ओझा, 97, सुंदर ब्लॉक, शकरपुर, दिल्ली-110092 फोन : 9868108713

क्रम:	शीर्षक:	लेखक:	पृष्ठ संख्या
33	एक चिर सहयात्री	कुबेर दत्त	65-71
34	डॉ धनंजय सिंह : व्यक्तित्व और कृतित्व	डॉ रमेश कुमार भदौरिया	72-74
35	हम सब हैं कवि	डॉ अतुल शर्मा	75-76
36	पलाश दहके हैं	सतीश सागर	77-79
37	डॉ धनंजय सिंह का काव्यमय व्यक्तित्व	रश्मि अग्रवाल	80-81
38	आत्मीय पल	डॉ शशि शुक्ला	81
39	नवगीत के सशक्त हस्ताक्षर	डॉ आशा रावत	82-83
40	कवि, पत्रकार, संपादक....	आशा 'क्षमा'	84
41	बिरले रचनाकार	सुभाष चंदर	85-86
40	कवि की प्रामाणिकता का आधार	कुमार पंकज	87-88
41	जिनका सम्पूर्ण व्यक्तित्व ही गीत है	राकेश जुगरान	89-91
42	डॉ धनंजय सिंह जी के साथ	नीरज नैथानी	92-97
43	संत मना कवि, पत्रकार....	श्याम श्रीवास्तव	97
44	भावों का अद्भुत संगम....	कमलेश फर्रूखाबादी	98
45	शांत, सरल और सौम्य गीतकार....	आशा शैली	99-100

पत्रिका में प्रकाशित लेख में व्यक्त विचार लेखक के हैं उनसे संपादक मण्डल या संपर्क भाषा भारती पत्रिका का सहमत होना आवश्यक नहीं है।

किसी भी विवाद की स्थिति में न्याय-क्षेत्र नई दिल्ली रहेगा।

पुस्तक समीक्षा के लिए समीक्षार्थ पुस्तक की प्रति भेजना अनिवार्य है।

प्रधान कार्यालय : ग्राम-मकरी, पोस्ट-भुइंदहा, पृथ्वीगंज हवाई अड्डा, प्रतापगढ़-230304 उत्तर प्रदेश
नई दिल्ली कार्यालय : 97, सुंदर ब्लॉक, शकरपुर विस्तार, नई दिल्ली—110092

पत्रव्यवहार तथा पुस्तक भेजने का पता : 97, सुंदर ब्लॉक, शकरपुर विस्तार, नई दिल्ली—110092
फोन नंबर : 9868108713/7701960982
ईमेल : samparkbhashabharati@gmail.com

सभा समाचार

डॉ० रमाकान्त श्रीवास्तव स्मृति सम्मान-सारस्वत समारोह

दिनांक 16 जुलाई 2023 सांयकाल, डॉ० रमाकान्त श्रीवास्तव साहित्यिक संस्थान, लखनऊ (पंजी०) के तत्वावधान में राजर्षि पुरूषोत्तम दास टंडन, हिन्दी भवन, हजरतगंज, लखनऊ के प्रांगण में अवस्थित निराला सभागार में -

सम्पादकाचार्य, पत्रकारिता भूषण, पत्रकार शिरोमणि स्वतंत्रता सेनानी, ऋषि तुल्य-संतहृदयी अमर साहित्यकार, साहित्य और साहित्यकारों के सर्जक, संस्मरण पुरूष (एवं अन्य 24 उपाधियाँ एवं सम्मान) डॉ० रमाकान्त श्रीवास्तव जी के 102 वें जन्मदिवस के अवसर पर संस्थान द्वारा डॉ० रमाकान्त श्रीवास्तव स्मृति सम्मान-सारस्वत समारोह का आयोजन किया।

जिसमें उक्त संस्थान प्रकाशन द्वारा अद्य: प्रकाशित डॉ. श्रीकान्त शुक्ल (पूर्व शिक्षा विद् एवं वरिष्ठ साहित्यकार) की कृति 'चिंतन' व संस्थान के अध्यक्ष, विनय श्रीवास्तव जी की (प्रथम कविता-संग्रह) प्रकाशित कृति 'साँझ का मन:आकाश' का विमोचन आकर्षण था।

कृतियों की विवेचना व समीक्षा क्रमश: वरिष्ठ साहित्यकार स्नेह लता जी व साहित्य

एवं शिक्षा विद् डॉ० रश्मि श्रीवास्तव (अध्यक्ष, शिक्षा संकाय, महिला परास्नातक महाविद्यालय, लखनऊ) जी ने की।

समारोह अध्यक्ष अति वरिष्ठ साहित्यकार-कृषि वैज्ञानिक

डॉ० रामकठिन सिंह जी

मुख्य अतिथि डॉ० अमिता दुबे, प्रधान सम्पादक उ०प्र० हिन्दी संस्थान

विशिष्ट अतिथि :

डॉ० पवन अग्रवाल (प्रोफेसर, हिन्दी एवं आधुनिक भाषा विभाग, लखनऊ विश्व विद्यालय, लखनऊ),

वरिष्ठ साहित्यकार श्री राम निवास पंथी (संस्थापक सदस्य निराला स्मृति संस्थान, डलमऊ)

श्री एस. पी. राय (भारतीय बैंकिंग क्षेत्र के महत्वपूर्ण व्यक्तित्व, BRICKS राष्ट्र के भारत सरकार के स्थायी प्रतिनिधि, नेशनल पैट्रियाटिक पार्टी के राष्ट्रीय अध्यक्ष एवं पूर्व महाप्रबंधक यूनियन बैंक ऑफ इंडिया)

अति वरिष्ठ साहित्यकार डॉ० मिथिलेश दीक्षित व विनय श्रीवास्तव मंचासीन थे।
सारस्वत समारोह में डॉ० रमाकान्त श्रीवास्तव स्मृति सम्मान के अन्तर्गत

*डॉ० मिथिलेश दीक्षित जी को जीवन काल समग्र साहित्यिक उपलब्धि के आधार पर अति विशिष्ट सम्मान

*वरिष्ठ साहित्यकार श्री राजेन्द्र वर्मा जी (लखनऊ) को "विशिष्ट सम्मान" (उनके बहुविधीय साहित्य सृजन पर आधारित)

* श्री गिरीश चन्द्र श्रीवास्तव 'झमाझम बैसवाड़ी' जी को -"काव्य रत्न सम्मान",

*श्रीमती प्रतिभा इन्दु जी (भिवाड़ी) पुत्री अमर साहित्यकार जवाहर इन्दु (डलमऊ) जी को -"काव्य रत्न सम्मान"

*डॉ० आजेन्द्र प्रताप सिंह जी (सहायक प्रोफेसर- हिन्दी साहित्य, फीरोज गाँधी परास्नातक महाविद्यालय रायबरेली) जी को "हिन्दी गौरव सम्मान"

*डॉ० हरिनारायण चौरसिया (पूर्व प्रोफेसर हिन्दी विभाग नागपुर विश्वविद्यालय जी गोंदिया, महाराष्ट्र)
"कृति सम्राट सम्मान" : आधार कृति 'हितैषी काव्य विमर्श',

*डॉ० सुभाष वसिष्ठ (नवगीतकार/रंगकर्मी, दूरदर्शन शृंखलाओं एवं चलचित्रों में अभिनय और माडलिंग की दुनिया के स्तम्भ पूर्व प्रोफेसर हिन्दी बदायूँ व खुर्जा के स्नातकोत्तर महाविद्यालय, नयी दिल्ली निवासी) जी को "साँझ का आकाश काव्य नखत सम्मान" :

3, 4, 5 जुलाई 2023 लखनऊ यात्रा

आधार कृति 'बना रह ज़ख्म तू ताज़ा',

*श्री प्रदीप श्रीवास्तव जी (लखनऊ) को- "कहानी सम्राट सम्मान"

*श्री प्रदीप श्रीवास्तव जी (सं० प्रणाम पर्यटन, लखनऊ) जी को "पत्रकारिता गौरव सम्मान

*श्री एस.पी. राय (लखनऊ) जी को "समाज रत्न सम्मान"

*श्री रामेश्वर यादव जी (रायबरेली) जी को "समाज रत्न सम्मान" से सम्मानित किया गया।

समारोह में आकाँक्षा द्विवेदी सुपौत्री राष्ट्र कवि सोहन लाल द्विवेदी (डॉ० रमाकान्त श्रीवास्तव जी मित्र कवि) भी उपस्थित थीं आपने डॉ० रश्मि श्रीवास्तव (मुख्य वक्ता : साँझ का मन:आकाश) जी का सम्मान संस्थान की ओर से किया।

समारोह में नगर और बाहर से आये गणमान्य साहित्यकार व साहित्य अनुरागियों का संस्थान की ओर से अभिनंदन, वंदन, स्वागत संस्थान की सचिव प्रीति कीर्ति जी व धन्यवाद ज्ञापन संस्थान के मंत्री अमरेन्द्र जी ने किया।

विनय श्रीवास्तव

लखनऊ की यात्रा अविस्मरणीय सिद्ध हो रही है।

दो जुलाई को राजधानी दिल्ली से गोरखनाथ धाम ट्रेन से यात्रा प्रारंभ की थी।

ट्रेन ने प्रातः 5.15 पर हल्की बूँदा बाँदी के बीच लखनऊ स्टेशन पहुंचा दिया।

गेस्ट हाउस तक पहुंचने में कुछ समय लगा। लगभग 6.30 गेस्ट हाउस पहुँच गए।

सब कुछ बहुत अच्छा रहा।

केयर टेकर श्री दिलीप का व्यवहार बहुत ही विनम्र और प्रेमयुक्त रहा।

प्रमुख गंतव्य, उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान था जो कि गेस्ट हाउस के समीप ही था।

10.30 पर उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान में सुश्री अमिता दुबे जी से मुलाकात हुई। उन्हों ने स्नेहिल चाय का निमंत्रण भी दिया।

स्नेहिल चाय का निमंत्रण भी दिया।

अपनी देखरेख में उन्हों ने कार्य निष्पादित करवाया और कुछ महत्वपूर्ण सुझाव भी दिए।

उन सुझावों पर दिल्ली पहुंच कर अमल करना है।

उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान से निकल कर हमने अच्छा भोजनालय तलाशा।

लखनऊ में अच्छे शाकाहारी भोजन की तलाश करते हुए हम वेलिंगडन में "जय माँ वैष्णो देवी" भोजनालय पहुँच गए।

डॉक्टर राबहादुर मिसिर जी, डॉक्टर सुश्री सत्या सिंह जी से फोन पर बात हो रही थी।

डॉक्टर सत्या सिंह जी के ओमेगा सिटी के आवास पर एक गोष्ठी का आयोजन सांय 4 बजे रखा गया था।

भोजन के पश्चात हम फिर परिवर्तन चौक स्थित गेस्ट हाउस वापस आ गए।

तीन बजे अपराह्न हम गोष्ठी के लिए निकले।

ऑटो वाले श्री मनोज साहू हमें BBDU (बाबू बनारसी दास यूनिवर्सिटी) से आगे,

गंतव्य तक पहुंचा आए।

श्री प्रदीप सारंग जी और श्री रजत बहादुर जी हमें इस आवासीय परिसर के बाहर ही मिल गए।

आदरणीय डाक्टर राम बहादुर मिसिर जी, प्रिय श्री महेंद्र भीष्म जी, श्री प्रदीप सारंग जी, श्री विश्वंभर नाथ अवस्थी (पप्पू भैया), श्री सदानंद जी, श्री रजत बहादुर जी सभी इस गोष्ठी में शामिल हुए।

डॉक्टर सत्या सिंह जी और उनकी भाभी सुश्री आरती सिंह जी ने भव्य कार्यक्रम का आयोजन किया।

अल्पाहार के नाम पर पूर्णाहार की व्यवस्था रही। सत्या सिंह जी ने कोई कमी नहीं रहने दी। बिस्किट, केक, नमकीन, (सर्वप्रिय) रसगुल्ले, सॉफ्ट ड्रिंक.....एक लंबी फहरिश्त....थी।

सत्या सिंह के आवास की एक विशेषता देखने को मिली, यह अभूतपूर्व विशेषता है जिसका उल्लेख आवश्यक है।

उनके तीन कमरों का फ्लैट उनके सम्मान प्रतीकों/चिह्नों/ट्रौफ़ियों से पूरी तरह, एक व्यवस्था और करीने से सजा हुआ है।

ऐसा सारस्वत सम्मान युत आवास मैंने बहुत कम ही देखा है, वह भी सत्या सिंह जी जैसा आवास तो सच कहूँ मैंने आज तक नहीं देखा था।

पाठकों की सुविधा केलिए बताता चलूँ कि डॉक्टर सत्या सिंह बहुत ही सिद्ध लेखिका हैं। उन्हें उत्तर प्रदेश सरकार के हिन्दी संस्थान से उनकी पुस्तक 'भारतीय कानून में महिलाओं के अधिकार' पर 75, 000 रुपये राशि से पुरस्कृत भी किया जा चुका है।

डॉक्टर राम बहादुर मिसिर जी 'अवध ज्योति' त्रैमासिक पत्रिका के संपादक हैं और वे अवधी भाषा के क्षेत्र में अद्वितीय कार्य कर रही 'अवध भारती संस्थान' हैदरगढ़, बाराबंकी के राष्ट्रीय अध्यक्ष भी हैं। इस गोष्ठी की अध्यक्षता भी आपने ही की।

श्री महेंद्र भीष्म जी इलाहाबाद उच्च न्यायालय की लखनऊ बेंच के रजिस्ट्रार और प्रिंसिपल बेंच सेक्रेटरी हैं। साहित्यानुरागी श्री भीष्म जी बहुत अच्छे कथाकार और नाट्यकार भी हैं।

किन्नर विमर्श को केंद्र में रख कर इधर उनकी कई पुस्तकें चर्चा में रहीं हैं। आप इस गोष्ठी के मुख्य वक्ता रहे।

इतने अल्प समय में आयोजित यह गोष्ठी प्रेम और स्नेह के इतने सुखद पलों से आप्लावित रही कि उसका वर्णन शब्दों में नहीं किया जा सकता।

हालांकि, जिस स्थान पर हमारा गेस्ट हाउस था वहां से यह स्थान दूर था किंतु, एक बार वहां पहुंचने के बाद वह अविस्मरणीय पलों में बदल गया।

डॉक्टर सत्या सिंह का घर सरस्वती–आलय

की तरह पुस्तकों और प्रशस्ति प्रमाणों का भव्य संग्रहालय ही है।

शाम 4 बजे से 7 बजे तक का समय खिलखिलाहटों के बीच फुर्र हो गया। इस दरम्यान डॉक्टर सत्या जी की मेजबानी की जितनी प्रशंसा की जाय वह कम ही है।

इस अवसर पर सुश्री सत्या सिंह जी ने सभी अतिथियों को अंगवस्त्र से सम्मानित भी किया।

इस अवसर पर डॉक्टर राम बहादुर मिसिर जी ने मुझे अवध ज्योति पत्रिका के कई अंक और उनकी शोध थीसिस 'फगुनवा में रंग बरसे' का concise संस्करण प्रदान कर सम्मानित किया।

डॉक्टर सत्या सिंह जी ने अपनी पुस्तकें 'दर्द भी खामोशी भी' (मुक्तक संग्रह), 'अनाम पातियाँ' (काव्य संग्रह), 'भारतीय कानून में महिलाओं के अधिकार', चिट्ठियाँ (हाइकू संग्रह), 'एक क्षैतिज और भी' (हाइकू संग्रह) प्रदान कर मुझे सम्मानित किया।

प्रिय भाई महेंद्र भीष्म जी ने अपनी कृति 'बड़े साब' (कथा संग्रह) से मुझे पुरस्कृत किया।

प्रेम रस से सिक्त हम सब, पुनः मिलने का प्रण लेकर शाम 7 बजे वहां से विदा हुए......

इस लखनऊ यात्रा के लिए विशेष धन्यवाद श्री कुमार यादव जी को जाता है.....जिसका मैं सार्वजनिक रूप से उल्लेख सदैव करता रहूँगा।

श्री अरविंद चतुर्वेदी और श्री त्रिलोकदीप जी का सान्निध्य...

लखनऊ प्रवास के दौरान डेली न्यूज़ एक्टिविस्ट के संपादक श्री अरविंद चतुर्वेदी जी मुलाक़ात करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ।

वर्ष 2012 से लगभग 2017 तक बराबर सम्पादकीय अग्रलेख डेली न्यूज एक्टिविस्ट, जनसंदेश टाइम्स, दैनिक आज, यूनाइटेड भारत, नॉर्दर्न इंडिया पत्रिका में प्रकाशित होते थे। प्रयास था कि लखनऊ प्रवास के दौरान श्री अरविंद चतुर्वेदी जी (संपादक डेली न्यूज़ एक्टिविस्ट) और श्री सुभाष राय जी (संपादक जनसंदेश टाइम्स) से मुलाक़ात हो जाए। पर फोन केवल अरविंद जी का ही उठा।

सो, घोड़ा अस्पताल (वेटरनरी अस्पताल) के समीप उनके कार्यालय में भेंट की और तमाम विषयों पर चर्चा की।

दिल्ली पहुंचा तो यहाँ भीषण बारिश से स्वागत हुआ अतः कुछ दिनों तक घर में ही कैद रहना पड़ा।

बारिश खुलते ही श्री त्रिलोकदीप जी का फोन आया।

आज, उनके आवास पर जाना हुआ, "दिनमान~त्रिलोकदीप" की प्रति भेंट की और उनसे कुछ अमूल्य पुस्तकें प्राप्त हुईं।

गुरु ग्रंथ साहब के 3 वृहत खंड, हिन्दी अनुवाद सहित, दिवंगत लालबहादुर शास्त्री स्मृति पर प्रकाशित अभिनंदन ग्रंथ।

और इसके बाद स्वर्गीय अज्ञेय जी और सर्वेश्वर दयाल सक्सेना जी की पुस्तकों की वह

5 ग़ज़लें : विज्ञान व्रत

ग़ज़ल 1

मैं जब ख़ुद को समझा और
मुझमें कोई निकला और

यानी एक तजुरबा और
फिर खाया इक धोखा और

होती मेरी दुनिया और
तू जो मुझको मिलता और

मुझको कुछ कहना था और
तू जो कहता अच्छा और

मेरे अर्थ कई थे काश
तू जो मुझको पढ़ता और

ग़ज़ल 2

पास आना चाहता हूँ
बस बहाना चाहता हूँ

आप से रिश्ता नहीं तो
क्या निभाना चाहता हूँ

सिर्फ़ मुझसे ही रहे जो
वो ज़माना चाहता हूँ

काश ख़ुद भी सीख पाता
जो सिखाना चाहता हूँ

जो मुझे हैं याद उनको
याद आना चाहता हूँ

ग़ज़ल 3

आप कब किसके नहीं हैं
हम पता रखते नहीं हैं

जो पता तुम जानते हो
हम वहाँ रहते नहीं हैं

जानते हैं आपको हम
हाँ मगर कहते नहीं हैं

जो तसव्वुर था हमारा
आप तो वैसे नहीं हैं

बात करते हैं हमारी
जो हमें समझे नहीं हैं

ग़ज़ल 4

मुझ पर कर दो जादू - टोना
एक नज़र ऐसे देखो ना

इतने दिन में घर आये हो
घर जैसे कुछ देर रहो ना

बादल हो तुम या ख़ुशबू हो
बरसो खुलकर या बिखरो ना

ढूँढ़ न पाया ख़ुद को घर में
छान चुका हूँ कोना - कोना

तुमसे ख़ुद को वापस क्या लूँ
रक्खो अब तुम ही रख लो ना

ग़ज़ल 5

मैं ठिकाना था कभी
वो ज़माना था कभी

आप मेरी जान थे
ये न जाना था कभी

अब हक़ीक़त हूँ यहाँ
इक फ़साना था कभी

मैं अगर नाराज़ था
तो मनाना था कभी

आपका हूँ या नहीं
आज़माना था कभी

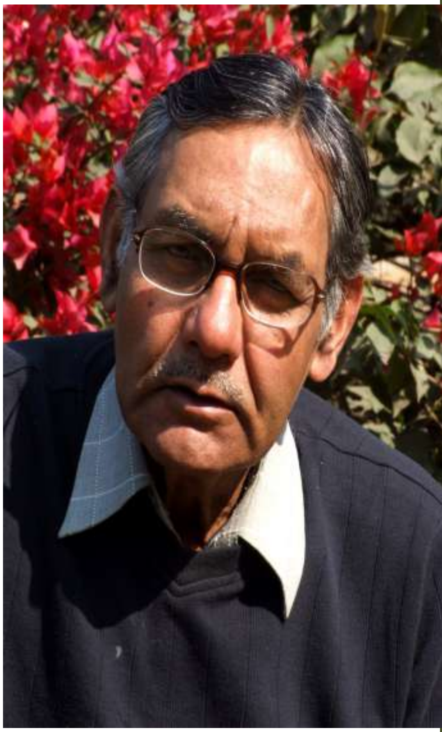

लोक संस्कृति की लय है कजरी

भारतीय परम्परा का प्रमुख आधार तत्व उसकी लोक संस्कृति है। यहाँ लोक कोई एकाकी धारणा नहीं है बल्कि इसमें सामान्य-जन से लेकर पशु-पक्षी, पेड़-पौधे, ऋतुएं, पर्यावरण, हमारा परिवेश और हर्ष-विषाद की सामूहिक भावना से लेकर श्रृंगारिक दशाएं तक शामिल हैं। 'ग्राम-गीत' की भारत में प्राचीन परंपरा रही है। लोकमानस के कंठ में, श्रुतियों में और कई बार लिखित-रूप में यह पीढ़ी-दर-पीढ़ी प्रवाहित होते रहते हैं। पं. रामनरेश त्रिपाठी के शब्दों में-'ग्राम गीत प्रकृति के उद्गार हैं। इनमें अलंकार नहीं, केवल रस है। छन्द नहीं, केवल लय है। लालित्य नहीं, केवल माधुर्य है। ग्रामीण मनुष्यों के स्त्री-पुरुषों के मध्य में हृदय नामक आसन पर बैठकर प्रकृति मानो गान करती है। प्रकृति का यह गान ही ग्राम गीत है....। ' इस लोक संस्कृति का ही एक पहलू है- कजरी। ग्रामीण अंचलों में अभी भी प्रकृति की अनुपम छटा के बीच कजरी की धारायें समवेत फूट पड़ती हैं। यहाँ तक कि जो अपनी मिटटी छोड़कर विदेशों में बस गए,

उन्हें भी यह कजरी अपनी ओर खींचती है। तभी तो कजरी अमेरिका, ब्रिटेन इत्यादि देशों में भी अपनी अनुगूंज छोड़ चुकी है। सावन के मतवाले मौसम में कजरी के बोलों की गूंज वैसे भी दूर-दूर तक सुनाई देती है -

रिमझिम बरसेले बदरिया,
गुईयां गावेले कजरिया
मोर सवरिया भीजै न
वो ही धानियां की कियरिया
मोर सविरया भीजै न।

वस्तुतः 'लोकगीतों की रानी' कजरी सिर्फ गायन भर नहीं है बल्कि यह सावन मौसम की सुन्दरता और उल्लास का उत्सवधर्मी पर्व है। प्रतीक्षा, मिलन और विरह की अविरल सहेली, निर्मल और लज्जा से

सजी-धजी नवयौवना की आसमान छूती खुशी, आदिकाल से कवियों की रचनाओं का श्रृंगार कर, उन्हें जीवंत करने वाली 'कजरी' सावन की हरियाली बहारों के साथ जब फिज़ा में गूंजती है तो देखते ही बनता है। प्रतीक्षा के पट खोलती लोकगीतों की श्रृंखलाएं इन खास दिनों में गजब सी हलचल पैदा करती हैं, हिलोर सी उठती है, श्रृंगार के लिए मन मचलता है और उस पर कजरी के सुमधुर बोल! सचमुच 'कजरी' सबकी प्रतीक्षा है, जीवन की उमंग और आसमान को छूते हुए झूलों की रफ्तार है। शहनाईयों की कर्णप्रिय गूंज है, सुर्ख लाल मखमली वीर बहूटी और हरियाली का गहना है, सावन से पहले ही तेरे आने का एहसास! महान कवियों और रचनाकारों ने तो कजरी के सम्मोहन की व्याख्या विशिष्ट शैली में की है। मौसम और यौवन की महिमा का बखान करने के लिए परंपरागत लोकगीतों का भारतीय संस्कृति में कितना महत्व है-कजरी इसका उदाहरण है। चरक संहिता में तो यौवन की संरक्षा व सुरक्षा हेतु बसन्त के बाद सावन महीने को ही सर्वश्रेष्ठ बताया गया है। सावन में नयी ब्याही बेटियाँ अपने पीहर वापस आती हैं और बगीचों में भाभी और बचपन की सहेलियों संग कजरी गाते हुए झूला झूलती हैं-

घरवा में से निकले ननद-भउजईया

जुलम दोनों जोड़ी साँवरिया।

छेड़छाड़ भरे इस माहौल में जिन महिलाओं के पति बाहर गये होते हैं, वे भी विरह में तड़पकर गुनगुना उठती हैं ताकि कजरी की गूँज उनके प्रीतम तक पहुँचे और शायद वे लौट आयें-

सावन बीत गयो मेरो रामा

नाहीं आयो सजनवा ना।

....

भादों मास पिया मोर नहीं आये

रतिया देखी सवनवा ना।

यही नहीं जिसके पति सेना में या बाहर परदेश में नौकरी करते हैं, घर लौटने पर उनके सांवले पड़े चेहरे को देखकर पत्नियाँ कजरी के बोलों में गाती हैं -

गौर-गौर गइले पिया

आयो हुईका करिया

नौकरिया पिया छोड़ दे ना।

एक मान्यता के अनुसार पति विरह में पत्नियाँ देवि 'कजमल' के चरणों में रोते हुए गाती हैं, वही गान कजरी के रूप में प्रसिद्ध है-

सावन हे सखी सगरो सुहावन

रिमझिम बरसेला मेघ हे

सबके बलमउवा घर अइलन

हमरो बलम परदेस रे।

नगरीय सभ्यता में पले-बसे लोग भले ही अपनी सुरीली धरोहरों से दूर होते जा रहे हों, परन्तु शास्त्रीय व उपशास्त्रीय बंदिशों से रची कजरी अभी भी उत्तर प्रदेश के कुछ अंचलों की खास लोक संगीत विधा है। कजरी के मूलतः तीन रूप हैं- बनारसी, मिर्जापुरी और गोरखपुरी कजरी। बनारसी कजरी अपने अक्खड़पन और बिन्दास बोलों की वजह से अलग पहचानी जाती है। इसके बोलों में अइले, गइले जैसे शब्दों का बखूबी उपयोग होता है, इसकी सबसे बड़ी पहचान 'न' की टेक होती है-

बीरन भइया अइले अनवइया

सवनवा में ना जइबे ननदी।

....

रिमझिम पड़ेला फुहार

बदरिया आई गइले ननदी।

विंध्य क्षेत्र में गायी जाने वाली मिर्जापुरी कजरी की अपनी अलग पहचान है। अपनी अनूठी सांस्कृतिक परम्पराओं के कारण मशहूर मिर्जापुरी कजरी को ही ज्यादातर मंचीय गायक गाना पसन्द करते हैं। इसमें सखी-सहेलियों, भाभी-ननद के आपसी रिश्तों की मिठास और छेड़छाड़ के साथ सावन की मस्ती का रंग घुला होता है-

पिया सड़िया लिया दा मिर्जापुरी पिया

रंग रहे कपूरी पिया ना

जबसे साड़ी ना लिअईबा

तबसे जेवना ना बनईबे

तोरे जेवना पे लगिहें मजूरी पिया

रंग रहे कपूरी पिया ना।

विंध्य क्षेत्र में पारम्परिक कजरी धुनों में झूला झूलती और सावन भादो मास में रात में चौपालों में जाकर स्त्रियाँ उत्सव मनाती हैं। इस कजरी की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यह पीढ़ी दर पीढ़ी चलती हैं और इसकी धुनों व पद्धति को नहीं बदला जाता। कजरी गीतों की ही तरह विंध्य क्षेत्र में कजरी अखाड़ों की भी अनूठी परम्परा रही है। आषाढ़ पूर्णिमा के दिन गुरू पूजन के बाद इन अखाड़ों से कजरी का विधिवत गायन आरम्भ होता है। स्वस्थ परम्परा के तहत इन कजरी अखाड़ों में प्रतिद्वन्दता भी होती है। कजरी लेखक गुरु अपनी कजरी को एक रजिस्टर पर नोट कर देता है, जिसे किसी भी हालत में न तो सार्वजनिक किया जाता है और न ही किसी को लिखित रूप में दिया जाता है। केवल अखाड़े का गायक ही इसे याद करके या पढ़कर गा सकता है-

कइसे खेलन जइबू

सावन में कजरिया

बदरिया घिर आईल ननदी

संग में सखी न सहेली

कईसे जइबू तू अकेली

गुंडा घेर लीहें तोहरी डगरिया।

बनारसी और मिर्जापुरी कजरी से परे गोरखपुरी कजरी की अपनी अलग ही टेक है और यह 'हरे रामा' और 'ऐ हारी' के कारण अन्य कजरी से अलग पहचानी जाती है-

हरे रामा, कृष्ण बने मनिहारी

पहिर के सारी, ऐ हारी।

सावन की अनुभूति के बीच भला किसका मन प्रिय मिलन हेतु न तड़पेगा, फिर वह चाहे चन्द्रमा ही क्यों न हो-

चन्दा छिपे चाहे बदरी मा

जब से लगा सवनवा ना।

विरह के बाद संयोग की अनुभूति से तड़प और बेकरारी भी बढ़ती जाती है। फिर यही तो समय होता है इतराने का, फरमाइशें पूरी करवाने का-

पिया मेंहदी लिआय दा मोतीझील से

जायके साइकील से ना

पिया मेंहदी लिअहिया

छोटकी ननदी से पिसईहा

अपने हाथ से लगाय दा

कांटा-कील से

जायके साइकील से।

....

धोतिया लइदे बलम कलकतिया

जिसमें हरी- हरी पतियां।

ऐसा नहीं है कि कजरी सिर्फ बनारस, मिर्जापुर और गोरखपुर के अंचलों तक ही सीमित है बल्कि इलाहाबाद और अवध अंचल भी इसकी सुमधुरता से अछूते नहीं हैं। कजरी सिर्फ गाई नहीं जाती बल्कि खेली भी जाती है। एक तरफ जहाँ मंच पर लोक गायक इसकी अद्भुत प्रस्तुति करते हैं वहीं दूसरी ओर इसकी सर्वाधिक विशिष्ट शैली 'धुनमुनिया' है, जिसमें महिलायें झुक कर एक दूसरे से जुड़ी हुयी अर्धवृत्त में नृत्य करती हैं।

मध्यप्रदेश और छत्तीसगढ़ के कुछ अंचलों में तो रक्षाबन्धन पर्व को 'कजरी पूर्णिमा' के तौर पर भी मनाया जाता है। मानसून की समाप्ति को दर्शाता यह पर्व श्रावण अमावस्या के नवें दिन से आरम्भ होता है, जिसे 'कजरी नवमी' के नाम से जाना जाता है। कजरी नवमी से लेकर कजरी पूर्णिमा तक चलने वाले इस उत्सव में नवमी के दिन महिलायें खेतों से मिट्टी सहित

फसल के अंश लाकर घरों में रखती हैं एवं उसकी साथ सात दिनों तक माँ भगवती के साथ कजमल देवी की पूजा करती हैं। घर को खूब साफ-सुथरा कर रंगोली बनायी जाती है और पूर्णिमा की शाम को महिलायें समूह बनाकर पूजी जाने वाली फसल को लेकर नजदीक के तालाब या नदी पर जाती हैं और उस फसल के बर्तन से एक दूसरे पर पानी उलचाती हुई कजरी गाती हैं। इस उत्सवधर्मिता के माहौल में कजरी के गीत सातों दिन अनवरत् गाये जाते हैं।

कजरी लोक संस्कृति की जड़ है और यदि हमें लोक जीवन की ऊर्जा और रंगत बनाये रखना है तो इन तत्वों को सहेज कर रखना होगा। कजरी भले ही पावस गीत के रूप में गायी जाती हो पर लोक रंजन के साथ ही इसने लोक जीवन के विभिन्न पक्षों में सामाजिक चेतना की अलख जगाने का भी कार्य किया है। कजरी सिर्फ राग-विराग या श्रृंगार और विरह के लोक गीतों तक ही सीमित नहीं है, बल्कि इसमें चर्चित समसामयिक विषयों की भी गूँज सुनायी देती है। स्वतंत्रता आन्दोलन के दौरान कजरी ने लोक चेतना को बखूबी अभिव्यक्त किया। स्वतंत्रता आन्दोलन के दौरान कजरी ने लोक चेतना को बखूबी अभिव्यक्त किया। आजादी की लड़ाई के दौर में एक कजरी के बोलों की रंगत देखें-

केतने गोली खाइके मरिगै

केतने दामन फांसी चढ़िगै

केतने पीसत होइहें जेल मां चकरिया

बदरिया घेरि आई ननदी।

1857 की क्रान्ति पश्चात जिन जीवित लोगों से अंग्रेजी हुकूमत को ज्यादा खतरा महसूस हुआ, उन्हें कालापानी की सजा दे दी गई। अपने पति को कालापानी भेजे जाने पर एक महिला 'कजरी' के बोलों में गाती है-

अरे रामा नागर नैया जाला काले पनियां रे हरी

सबकर नैया जाला कासी हो बिसेसर रामा

नागर नैया जाला काले पनियां रे हरी

घरवा में रोवै नागर, माई और बहिनियां रामा

से जिया पैरोवे बारी धनिया रे हरी।

स्वतंत्रता की लड़ाई में हर कोई चाहता था कि उसके घर के लोग भी इस संग्राम में अपनी आहुति दें। कजरी के माध्यम से महिलाओं ने अन्याय के विरूद्ध लोगों को जगाया और दुश्मन का सामना करने को प्रेरित किया। ऐसे में उन नौजवानों को जो घर में बैठे थे, महिलाओं ने कजरी के माध्यम से व्यंग्य कसते हुए प्रेरित किया-

लागे सरम लाज घर में बैठ जाहु

मरद से बनिके लुगइया आए हरि

पहिरि के साड़ी, चूड़ी, मुंहवा छिपाई लेहु

राखि लेई तोहरी पगरइया आए हरि।

सुभाष चन्द्र बोस ने जंग-ए-आजादी में नारा दिया कि- ''तुम मुझे खून दो, मैं तुम्हें आजादी दूंगा, फिर क्या था पुरूषों के साथ-साथ महिलाएं भी उनकी फौज में शामिल होने के लिए बेकरार हो उठीं। तभी तो कजरी के शब्द फूट पड़े-

हरे रामा सुभाष चन्द्र ने फौज सजायी रे हारी

कड़ा-छड़ा पैंजनिया छोड़बै, छोड़बै हाथ कंगनवा रामा

हरे रामा, हाथ में झण्डा लै के जुलूस निकलबैं रे हारी।

महात्मा गाँधी आजादी के दौर के सबसे बड़े नेता थे। चरखा कातने द्वारा उन्होंने स्वावलम्बन और स्वदेशी का रूझान जगाया। नवयुवतियाँ अपनी-अपनी धुन में गाँधी जी को प्रेरणास्त्रोत मानतीं और एक स्वर में कजरी के बोलों में गातीं-

अपने हाथे चरखा चलउबै

हमार कोऊ का करिहैं

गाँधी बाबा से लगन लगउबै

हमार कोई का करिहैं।

कजरी में 'चुनरी' शब्द के बहाने बहुत कुछ कहा गया है। आजादी की तरंगें भी कजरी से अछूती नहीं रही हैं-

एक ही चुनरी मंगाए दे बूटेदार पिया

माना कही हमार पिया ना

चद्रशेखर की बनाना, लक्ष्मीबाई को दर्शाना

लड़की हो गोरों से घोड़ां पर सवार पिया।

जो हम ऐसी चुनरी पइबै, अपनी छाती से लगइबे

मुसुरिया दीन लूटै सावन में बहार पिया

माना कही हमार पिया ना।

....

पिया अपने संग हमका लिआये चला

मेलवा घुमाये चला ना

लेबई खादी चुनर धानी, पहिन के होइ जाबै रानी

चुनरी लेबई लहरेदार, रहैं बापू औ सरदार

चाचा नेहरू के बगले बइठाये चला

मेलवा घुमाये चला ना

रहइं नेताजी सुभाष, और भगत सिंह खास

अपने शिवाजी के ओहमा छपाये चला

जगह-जगह नाम भारत लिखाये चला

मेलवा घुमाये चला ना

उपभोक्तावादी बाजार के ग्लैमरस दौर में कजरी भले ही कुछ क्षेत्रों तक सिमट गई हो पर यह प्रकृति से तादातम्य का गीत है और इसमें कहीं न कहीं पर्यावरण चेतना भी मौजूद है। इसमें कोई शक नहीं कि सावन प्रतीक है सुख का, सुन्दरता का, प्रेम का, उल्लास का और इन सब के बीच कजरी जीवन के अनुपम क्षणों को अपने में समेटे यूं ही रिश्तों को खनकाती रहेगी और झूले की पींगों के बीच छेड़-छाड़ व मनुहार यूँ ही लुटाती रहेगी। कजरी हमारी जनचेतना की परिचायक है और जब तक धरती पर हरियाली रहेगी कजरी जीवित रहेगी। अपनी वाच्य परम्परा से जन-जन तक पहुँचने वाले कजरी जैसे लोकगीतों के माध्यम से लोकजीवन में तेजी से मिटते मूल्यों को भी बचाया जा सकता है।

कृष्ण कुमार यादव

पोस्टमास्टर जनरल,

वाराणसी परिक्षेत्र, वाराणसी-221002

मो0- 09413666599 ई-मेलः kkyadav.t@gmail.com

कृष्ण कुमार यादव : भारत सरकार में वरिष्ठ प्रशासनिक अधिकारी। प्रशासन के साथ-साथ साहित्य, लेखन और ब्लॉगिंग के क्षेत्र में भी प्रवृत्त। विभिन्न विधाओं में अब तक कुल 7 पुस्तकें प्रकाशित- 'अभिलाषा' (काव्य-संग्रह, 2005), 'अभिव्यक्तियों के बहाने' व 'अनुभूतियाँ और विमर्श' (निबंध-संग्रह, 2006 व 2007), 'India Post : 150 Glorious Years' (2006), 'क्रांति-यज्ञ : 1857-1947 की गाथा', 'जंगल में क्रिकेट' (बाल-गीत संग्रह, 2012) व '16 आने 16 लोग' (निबंध-संग्रह, 2014)।

देश-विदेश की प्रायः अधिकतर प्रतिष्ठित पत्र -पत्रिकाओं और इंटरनेट पर वेब पत्रिकाओं व ब्लॉग पर निरंतर प्रकाशित। शताधिक पुस्तकों/संकलनों में रचनाएँ प्रकाशित। आकाशवाणी लखनऊ, कानपुर, इलाहाबाद, वाराणसी, जोधपुर व पोर्टब्लेयर और दूरदर्शन से कविताएँ, वार्ता, साक्षात्कार का समय-समय पर प्रसारण।

व्यक्तित्व-कृतित्व पर एक पुस्तक 'बढ़ते चरण शिखर की ओर : कृष्ण कुमार यादव' (सं.- दुर्गाचरण मिश्र, 2009) प्रकाशित।

उ.प्र. के मुख्यमंत्री द्वारा ''अवध सम्मान'', पश्चिम बंगाल के राज्यपाल द्वारा ''साहित्य-सम्मान'', छत्तीसगढ़ के राज्यपाल द्वारा ''विज्ञान परिषद शताब्दी सम्मान'', परिकल्पना समूह द्वारा ''दशक के श्रेष्ठ हिन्दी ब्लॉगर दम्पति'' सम्मान, अंतर्राष्ट्रीय ब्लॉगर सम्मेलन, भूटान में ''परिकल्पना सार्क शिखर सम्मान'', विक्रमशिला हिन्दी विद्यापीठ, भागलपुर, बिहार द्वारा डॉक्टरेट (विद्यावाचस्पति) की मानद उपाधि, भारतीय दलित साहित्य अकादमी द्वारा ''डॉ. अम्बेडकर फेलोशिप राष्ट्रीय सम्मान'' साहित्य मंडल, श्रीनाथद्वारा, राजस्थान द्वारा ''हिंदी भाषा भूषण'', वैदिक क्रांति परिषद, देहरादून द्वारा ''श्रीमती सरस्वती सिंहजी सम्मान'', भारतीय बाल कल्याण संस्थान द्वारा ''प्यारे मोहन स्मृति सम्मान'', राष्ट्रीय राजभाषा पीठ इलाहाबाद द्वारा ''भारती रत्न'', अखिल भारतीय साहित्यकार अभिनन्दन समिति मथुरा द्वारा ''कविवर मैथिलीशरण गुप्त सम्मान'', आगमन संस्था, दिल्ली द्वारा ''दुष्यंत कुमार सम्मान'', विश्व हिंदी साहित्य संस्थान, इलाहाबाद द्वारा ''साहित्य गौरव'' सम्मान, सहित विभिन्न प्रतिष्ठित सामाजिक-साहित्यिक संस्थाओं द्वारा विशिष्ट कृतित्व, रचनाधर्मिता और प्रशासन के साथ-साथ सतत् साहित्य सृजनशीलता हेतु शताधिक सम्मान और मानद उपाधियाँ प्राप्त। **संपर्क:** कृष्ण कुमार यादव, पोस्टमास्टर जनरल, वाराणसी

कजरी एक पर्व

प्रतिमा पुष्प

झूला पडा़ कदम की डारी,
झूलें कृष्ण मुरारी ना
एक सखी झूलैं एक झुलावैं.....

कुछ ऐसे ही गीत के बोल थे जो मेरे बालमन को झकझोर कर बुला रहे थे। मुझे याद आती है वो रिमझिम बरसात की शाम जब मुहल्ले की सखियाँ आपस में चुहल करती हुई भाइयों से मनुहार कर रही थी सामनें की नीम की मोटी डाल दिखाते हुए...

भइया डार द झुलनवाँ वोही डार पे
खूब ललकार के ना
जौ झुलनवाँ भइया डलबे
हलुआ पूड़ी हम खियइबै
दूध मलाई हम खियउबै
चोराय के खूब ललकार के ना

मुझे समझ में नहीं आ रहा था कि ये किस प्रकार का शोर और मनुहार है। बाद में सहेलियों नें बताया कि सखी सावन आ गया है और हम सावन को उत्सव के रूप में मनाते हैं। जहाँ जुलाई अगस्त में हिन्दी माह के अनुसार सावन भादों जैसे बरसाती दिन, हल्की और गहरी होती जल की फुहारों से लेकर तेज बौछारें वातावरण में एक प्रकार की मादकता व सरसता जन जीवन में भर देती हैं, वहीं खेती के लिए फसलों को पानी की फुहारें व बरसात का जल अमृत के समान जीवनदायिनी हो कृषक के मन को आल्हाद से भर देती हैं। ऐसे में मिट्टी की उर्वरकता भी बढ़ जाती है। धन धान्य की समृद्धि के लिए सावन वरदान तो है ही जन जीवन को भी जेष्ठ वैषाख की तपन से मुक्ति मिल जाती है।

भाद्रपद की तृतिया को मनाए जानें वाले इस पर्व को विंध्य क्षेत्र में कजरी के नाम से जाना जाता है। कहते हैं कि माता विंध्यवासिनी का का जन्म भी भाद्रपद मास में तृतिया के दिन हुआ था इस लिए अभी भी प्रतिवर्ष विंध्य क्षेत्र में कजरी महोत्सव खूब धूम धाम से मनाया जाता है। कजरी का संबंध द्वापर युग में भगवान श्री कृष्ण के जन्म से भी है। कंस के अत्याचारपूर्ण कृत्य से देवकी और वासुदेव मथुरा के कारावास में देवकी के आठवें पुत्र का जन्म हुआ तो वासुदेव नें उन्हें गोकुल में माता यशोदा की नवजात पुत्री से बदल दिया और कंस नें उस पुत्री को ज्यों ही उठा मार देनें के लिए पटकना चाहा तो वह कन्या रुपी देवी जो स्वयं महामाया के रूप मे माता यशोदा के गर्भ से जन्म ले चुकी थी आकाशवाणी करते हुए कि "हे कंस तुम्हें मारनें वाला जन्म ले चुका है और वही तुम्हारी मृत्यु का कारण बनेगा "उड़ती हुई विन्ध्य पर्वत पर आ गिरी थी।

यद्यपि कंस के ऊपर क्रोध करनें के कारण उनकी कमल की पंखरियों जैसी आभा वाली कांति श्यामल हो काली हो उठी थी इसलिए कज्जला देवी के नाम से जानी गई। श्यामवर्णी कज्जला देवी की अपार महिमा और शक्ति के कारण विन्ध्य वासी जन समुदाय नें उन्हें मां विंध्यवासिनी के नाम से

विन्ध्य पर्वत पर तीन स्थानों पर स्थापित किया। विंध्याचल माता, अष्टभुजा माता एवं काली माता। विन्ध्य क्षेत्र में यह त्रिकोणीय यात्रा भक्तों की आत्मशक्ति से भरती है।

विन्ध्य पर्वत पर निवास करनें वाली माता कज्जला जो मां विन्ध्यवासिनी माता के नाम से अभी भी मिर्जापुर में स्थित हैं उनकी स्तुति व आराधना के लिए जो गीत गाते रहे वही कजरी के रूप में प्रसिद्ध हुआ।

इस पर्व में लड़कियाँ सावनके शुक्ल पक्ष के पंचमी (जो नागपंचमी के नाम से जानी जाती है) से ही तालाब की काली और साफ मिट्टी में जौ बो कर माँ कज्जला देवी का आह्वान कर पूरे बारह दिन तक सुबह शाम स्वच्छता से जल देती हैं। जौ से निकलनें वाले अंकुरणों की रक्षा व सेवा सुश्रूषा उसी प्रकार से करती हैं जैसे माँ कज्जला देवी उनका करती हैं । कजरी गाते हुए अपनें भाइयों व परिवार की कुशलता की कामना माता कज्जला देवी से करती प्रसन्नता पूर्वक आनंदोत्सव मनाती हैं। चूंकि मां कज्जला देवी नें अपनें भाई श्री कृष्ण की जीवन रक्षा का भार स्वयं के ऊपर लेकर भाई के प्राणों की रक्षा की थी, बहनें भी अपनें भाई की लंबी उम्र के लिए माता से प्रार्थना करते हुए कज्जला माता से प्रार्थना करती हैं। गाँवों में कजरी के मनभावन गीतों की स्वर लहरी मानों सावन के स्वागत का गान करती हुई धरती आकाश को धन्यवाद करती प्रतीत होती हैं।

जहाँ पर शहरों में परंपराएं तेजी से बदल रही हैं वहीं पर गाँव अब भी पुरानें रीति रिवाज को जीवित किए हुए हैं। ये बात अलग है कि लड़कियाँ अब पढ़ाई टीवी आधुनिकता व फिल्मी परिवेश में पुरानी परंपराओं को छोड़ती हुई प्रगति के दौड़ में शामिल हो कर घरों में बंद रहना ज्यादा उचित समझती हैं वहीं पर अभी बहुत सारे लोग इस परंपरा को जीवित रखते हुए आज भी कजरी का आयोजन कर झुंड में मिल कर कजरी गाते हुए झूमते प्रतिस्पर्धा करते दिखते हैं।

कजरी लोग गीत की एक मनमोहक परंपरा है जिसमें लोक संबन्धित गीत व देवी आराधना को कुछ विशेष लय ताल में गाते हैं। कुछ कजरी के गीतों के बोल तो मुझे आज भी याद आते हैं और मन स्वतः गुनगुना उठता है जैसे....

अरे रामा धानी रंग चुनरिया पहिन खड़ी धनियाँ रे हरी
(यहाँ पर धनिया का तात्पर्य घर की स्त्री की मनभावन संपन्नता से है)

पिया झुलनी लिया द बिकानेर से ओढ़नी जय पुर से ना

(मतलब कि सावन की संपन्नता को देख कर पत्नी अपनें पति से मनुहार करती है कि अब तो धन धान्य के अच्छी आमद होनें वाली है तो हमारे लिए ये सब तो आप ला ही सकते हो तो ला दो न)।

इसी प्रकार के अनेक गीतों को गाते हुए लड़कियों की टोली कजरी के एक दिन पूर्व रतजगा मनाती हँसी ठिठोली करती पूरी रात जागरण करती हैं । उस दिन चावल के विविध पकवान बनते हैं जिनमे अनरसा जैसी मिठाई जो वर्ष में इसी समय ही बाजार हाट में विविध रंग रूप में मिल जाती है।

दूसरे दिन प्रातः लड़कियां "जरई माता "(जौ से निकलनें वाले पौधे जिनको जरई के नाम से देवी कज्जला के रूप में स्थापित की गई थी) गंगा या नदी में प्रवाहित करते हुए कुछ पत्तियाँ माता के आशीर्वाद के रूप में घर ले आती और भाइयों के कान पर रख कर उनके दीर्घायु होनें की कामना करती हैं। घरोंमें दाल भरी पूडी, खीर व काशीफल की सब्जी बनती है।

यह तो हो गई निष्ठा, परंपरा, भक्ति और विश्वास की बात साथ ही हर्ष उल्लास और हास परिहास के साथ मनाया जानें वाला यह पर्व अपनी विशिष्टता बनाए रखनें में अभी भी पूर्ण सक्षम है।

सरगम जैसी गीत सी,
वीणा का अनुराग।
बेटा मिलता भाग से,
बेटी मिले सौभाग।।

नन्हीं परियों के पड़े,
जिस भी द्वारे पाँव।
मुस्काता घर आँगना,
करते सब ही चाव।।

इक बेटी को दीजिये,
शिक्षा का उपहार।
खुद ब खुद हो जाएंगे,
शिक्षित दो परिवार।।

शब्द ज्ञान की रौशनी,
नित - नित बढ़ती जाय।
ज्यूँ लिख-पढ़ती बेटियां,
घर आँगन मुस्काय।।

सुबह सुनहरी धूप सी,
खिलती आँगन भोर।
जब हँसती हैं बेटीयाँ,
हर देहरी हर पोर।।

नन्हीं परियों के पड़े,
जिस भी द्वारे पाँव।
मुस्काता घर आँगना,
करते सब ही चाव।।

होवे जिस घर बेटीयाँ,
मिलता आदर मान।
सादर ओ सत्कार की,
बनती है पहचान।।

चन्द्र कांता सिवाल

खबर

खबर
मस्तिष्क में मचाते
विचार कोलाहल
जैसे जनरल बोगी में
खचाखच भरे यात्री
भर्राता दिमाग फड़ाफड़ाती नसें
तिलमिला देती हैं रूह को

अगली सुबह की
भयानक खबरों को महसूस कर
आँखें बंद हो गई हैं

न जाने सुबह
अखबार के पृष्ठ
रंगे होंगे कितनों के
रक्त से.....

डॉ. प्रेम कुमार

उदास आंखों में छुपी है चाहत की धूप,
रूह की गहराई से उठती है ज़रा ऊँची धूप।

जुबां पर ख़्वाहिशों के फूल मुरझा जाते हैं,
आंखों की झील से नयी कहानियाँ बह जाते हैं।

आँखों की चमक जब खो जाती है,
दिल की धड़कन रुक जाती है।

मोती सा छाप जब आंखों में बहता है,
ख़्वाबों की दुनिया में दिल उड़ जाता है।

ग़ज़ल की आवाज़ से आंखें मुद्दत से रोयें,
जैसे ख़्वाबों के सफ़र में ज़िंदगी खोयें।

नई ग़ज़ल आंखों को सजाती है,
ख़्वाबों की रातें आंखों में बसाती है।

विकास तिवारी

नवगीत

खास दिनों के चक्कर में हम,
आम दिनों को हड़का बैठे.
आकर कहीं दही के धोखे,
ज्यों बिल्ली रूई खा बैठे.

सोचा था दिन फिर जाएंगे,
अपने भी तो घूरे जैसे.
मगर नींव की ईंटों से कब,
सजें कहाँ कंगूरे कैसे.
खुशी खोजते पता नहीं हम,
कहाँ जाना कहाँ जा बैठे.

कहने की ना लाज आपको,
हम सुनने की क्या शर्म करें.
किले बनाते जो बातों के,
वो नाहक ही क्यों कर्म करें.
अपनी अपनी ढपली लेकर,
ये राग कौन सा गा बैठे.

झूठमूठ के आश्वासन ने,
मन ऐसे आश्वस्त किया था.
तारे जमीं पर आने लगे,
धोखे ने मदमस्त किया था.
कंकर मार दिया धोखे से,
हम जाता शेर बुला बैठे.

राजपाल सिंह गुलिया
जाहिदपुर, झज्जर (हरियाणा)

मलाला पर विशेष

निश्चय जानो बड़ी मलाला मौर्या से है कई गुना।
जीने की उत्कट अभिलाषा जोखिम का ही मार्ग चुना।।
आतंकी की गोली खाकर हार नहीं स्वीकार किया।
बुर्का तो पाँवों की बेड़ी ज्ञान जगा तत्काल दिया।।

पौरुष पुरुष चुनौती देता माँ-बेटी इंकार करो।
मानवता की रक्षा खातिर करतल में अधिकार धरो।।
बढ़ो तोड़ पाँवों की बेड़ी तुममें शक्ति अपार भरी।
तुमसे ही यह धरती घाटी शाश्वत से है हरी-हरी।।

लेकिन ज्योति बहादुर ऐसी संबंधों पर दाग बनी।
किया प्यार को लांछित अपने इतनी होती गई धनी।।
जिससे मिला सहारा उसको तृण के जैसे फेंक चली।
नहीं मूल्य आलोक समझती अँधियारे से भरी गली।।

ज्योति मलाला की तुलना में अँधियारे में मुड़ी गली।
जहाँ समझ पाना है मुश्किल शाम ढली या सुब्ह ढली।।
क्या अच्छा है और बुरा क्या ज्योति शिखा आलोप हुई।
मानवता के गलियारे से गई सिमटती छुई-मुई।।

धन्य मलाला जिसने जीवन मानवता के हेतु जिया।
विश्व मनुज के हित के खातिर अपना जीवन होम दिया।।
तुच्छ स्वार्थ से प्रेरित होकर ज्योति गिरी तो बहुत गिरी।
सहज प्यार को तुच्छ समझ कर घने तमस में अधिक घिरी।।

बाबा कल्पनेश

देस हुआ बेगाना

कहानी: प्रकाश मनु

वह बदहवास-सा पगडंडी पर गिरता-पड़ता चला जा रहा था। गांव पीछे छूट चुका था। मंजिल का पता नहीं था। आज उसके पास कुछ नहीं था- न संवेदना, न प्रेम। केवल बीते दिनों की घटनाएं थीं जो मस्तिष्क के अंदर बैठी थीं और संग-संग चल रही थीं। उसके सोचता का सिलसिला जारी था।

पहले उसका नाम था, परिवार था, साथी-संगी थे, अपना गांव था। लेकिन अब कुछ नहीं। वह कमाने खाने के लिये दूर देस चल पड़ा था। वहां उसकी पहचान मजदूर की हुई। कोरोना महामारी में कब उसकी पहचान बदल गई उसे पता भी नहीं चला। वह अब प्रवासी हो गया। अपने ही देश में प्रवासी मजदूर!

महामारी के कारण जब काम धंधे बंद हो गए तो वह यक-ब-यक बेरोजगार हो गया। न कहीं कमाने का जरिया रहा, न खाने का ठिकाना। तब अपने देस-जवार की याद आयी उसे। उस गांव की याद आयी जिसकी माटी में लोटपोट कर वह बड़ा हुआ था। गांव में उसके भाई-बाप, परिवार, दोस्त-महीम सभी थे। बेरोजगार होते ही उसकी चेतना में गांव का आकर्षण, अपनों का प्यार, मित्रों की याद सब कुलबुलाने लगे। उसे अपने गांव-देस की ओर ढकेलने लगे। उसने आव देखा न ताव। जिस हाल में था निकल पड़ा उस ओर जहां की मटमैली, सोंधी खुशबू उसे खींच रही थी अपनी ओर। इतने दिनों तक कंक्रीट, बालू की गर्द ने उसकी नाक बंद रखी थी। गर्द हटते ही माटी की सोंधी खुश्बू उसे मदहोश करने लगी थी। गाँव की हरियाली बाँहे पसार उसे बुला रही थी। फिर तो वह पैदल ही चल पड़ा था।

रास्ते में उसके पैर थके, शरीर टूटा, भूख से अँतड़ी कुलबुलाई, प्यास से गला सूखा, पाँव में छाले पड़े लेकिन गांव धरती की सोंधी खुशबू नाक में समाई ही रही। अपनो से मिलने की ललक हर कदम पर बढ़ती ही गई। आखिर छिपते-छिपाते, पुलिस का डंडा खाते, डाँट-डपट सुनते वह पहुच ही गया अपने गाँव। गाँव की सीमा पर आते ही उसकी सारी थकान, शरीर की पीड़ा, जाती रही। लेकिन जैसे ही वह गाँव में घुसने के लिये आगे बढ़ा कि यह देखकर उसका कलेजा धक से रह गया। बाँस-बल्ले बांधकर गांव में अजनबियों के प्रवेश पर रोक लगा दी गयी थी। टेढ़े-मेढे अक्षरों से लिख दिया गया था, प्रवासी को अंदर आना मना है। उसके ठीक नीचे लिखा था, गांव वासी।

अरे तो मैं क्या कोई बाहरी हूँ, प्रवासी हूँ। इसी गाँव की धुली में लोटपोट के बड़ा हुआ

हूँ। मुझे कौन रोकेगा- यह सोचते हुए जैसे ही वह बाँस के बगल से अंदर जाना चाहा कि गाँव वाले सामने आ गए। बूढ़े, जवान, बच्चे सब की आँखों से झाँकती शक की चिंगारी उसके चेहरे को झुलसाए दे रही थी। उससे बस एक ही सवाल पूछा जा रहा था- क्या कोरोना का टेस्ट करवाया है? वह हतप्रभ था। उसके दिमाग में ऐसी स्थिति आने की कभी बात ही नहीं आयी थी। ठकमुरकी लग गई थी उसे। क्या जवाब देता। जिन साथियों के साथ डोल पत्ता , कबड्डी, गुलीडण्डा खेल-खेल कर बड़ा हुआ था, जिन बड़ों के पाँव लग-लग कर आशीर्वाद लेता रहा था, वही सामने खड़े थे, दूर भगा रहे थे उसे जैसे वह कोई दुश्मन हो। उनकी आँखों से घृणा ऐसे छलक रही थी मानो उसमें कोढ़ फूट आया हो। उसके शरीर में बम बंधा हो कि गाँव में घुसते ही फट जाएगा। वह बक बना दूर खड़ा होकर ताकता रहा।

गाँव के लोगों के साथ अपने परिवार वालों को भी चुपचाप खड़ा देखकर उसका सिर नाचने लगा था। गांव की मिट्टी की सुगंध उसकी नथुनों से न जाने कब विदा ले चुकी थी। परिवार के प्रति प्रेम, स्नेह , लगाव सब विछोह के कीचड़ में बह-बिला चुके थे। आक्रोश ने उनकी जगह ले ली थी। उसकी आँखों में उदासी की परछाई और गहरी होती कि सरपंच की आवाज उसके कानों से टकराई- " विनोद , गाँव में यदि रहना है तो जा, जाकर अपनी जाँच करवा ले नहीं तो चल जा स्कूल में। चौदह दिनों तक वहीं पड़ा रह। इस बीच ठीक रहा तो अंदर आ जाना। "

उसने कातर निगाह भाई -बाप पर डाली। उन्होंने नजरें नीची कर लीं। उसकी रही सही संवेदना भी जाती रही।

कभी आधा पेट खाकर, कभी केवल पानी पीकर जैसे- तैसे 14 दिनों के बनवास का जीवन काटकर उसने गाँव में घुसने की गुहार लगाई तो सरपंच के साथ गाँव वालों ने भी नरमी दिखाई लेकिन शक की सुई उस पर टिकी ही रही। उसे एक तरफ खड़ा कर दिया गया। सरपंच ने एक बच्चे को दौड़ा दिया उसके परिवार वालों को बुलाने के लिये। गाँव वाले उसके साथ अजनबी जैसा सलूक कर रहे थे। वह संवेदनशून्य होकर उस रास्ते पर टकटकी लगाए रहा जिस रास्ते से उसके भाई- बाप आनेवाले थे। उसकी शादी अभी हुई नहीं थी और माँ स्वर्ग सिधार चुकी थी इसलिए उनके आने का कोई प्रश्न ही नहीं था।

परिवार के आने के बाद उसने आशा की नज़र से उन्हें देखा लेकिन उनके चेहरे निर्विकार थे। वहां उसे स्नेह का एक बून्द भी नहीं दिखा। सरपंच के पूछने पर कि क्या वे अपने परदेसी भाई को घर ले जाने को राजी हैं, सब सिर झुकाकर मौन खड़े रहे। बाप की नजर एकबार उठी जरूर लेकिन अनजाना भय या फिर मजबूरी का भाव उसके चेहरे पर झलक आयी। वह लाचार-सा दिखा। कुछ देर बाद मौन तोड़ते हुए बड़े भाई ने सपाट शब्दों में उसे कोरोना जाँच के बगैर घर में रखने से मना कर दिया। इतना सुनते ही उसकी आँखों

के बचेखुचे आँसू भी बाहर निकल आये। वह एकदम से मुड़ा और विक्षिप्त-सा जिस दिशा में रास्ता दिखा, चल पड़ा।

न उसे समय का ख्याल था, न मंजिल का पता था। पाँव के साथ उसके दिमाग में सोच भी चल रहा था। उबड़ खाबड़ रास्ते पर चलते हुए पाँव अचानक ठोकर खाकर रुक गए साथ में सोच भी। वह गिरते- गिरते बचा। बेहोशी-सी हालत से मुक्त होने पर उसे एक विशाल झील दिखी। वह उस ओर ही मुड़ गया यंत्रचालित-सा। जब आदमी की संवेदना की धारा सूख जाए, प्रेम, स्नेह का स्रोत बंद हो जाए तो वह यंत्र बन जाता है। एक रोबोट। इस समय वह रोबोट ही तो बन बैठा था। बस एक बात उसके मस्तिष्क में गूँज रही थी- दुनिया में अब उसकी जरूरत नहीं, उसे मर जाना चाहिए। रोबोट बने उसके दिमाग में यही एक सोच प्रोग्रामिंग कर दिया गया हो जैसे।

वह लम्बे-लम्बे डग भरते हुए झील की ओर चला जा रहा था। शायद उसे बहुत जल्दी थी वहां पहुचने की। सूर्य विश्राम की मुद्रा में आ गया था। वह अपनी विरासत रात को सौंपकर विश्राम करने की मुद्रा में आ चुका था। वह जब झील पर बने डैम पर पहुंचा तब अँधेरा का साम्राज्य स्थापित हो चुका था। निकट था कि वह झील में छलांग लगाता कि उसकी निगाह डैम के दूसरे छोर पर एक छाया हिलती सी नजर आयी। अँधेरा गहरा जाने के कारण वह स्पष्ट तो नहीं देख पाया लेकिन उसे लगा कोई मुसीबत में है, उसे बचाना चाहिए। वह दौड़ पड़ा बेतहाशा डैम के उस छोर पर। इस समय उसका मस्तिष्क सक्रिय था। सूख गई मानवीय संवेदन का सोता अचानक फुट पड़ा था। उसने देखा, छाया झील में छलाँग लगाने वाली है। उसने सारी शक्ति लगाई, एक लंबी सी छलाँग भरी और उस छाया को पकड़ लिया।

वह झोंक को सम्हाल नहीं सका और उस छाया को लिये-दिये गिर पड़ा। वह तुरंत धूल झाड़कर उठ खड़ा हुआ। नजदीक आने पर उसे यह अंदाजा लग गया कि जिस छाया को उसने बचाया है, वह कोई स्त्री है। उसने हाथ बढ़ाकर उठने में उसकी मदद की। इधर-उधर नजर घुमाकर देखा, थोड़ी दूर पर पीली क्षीण-सी रोशनी दिखी। उसे रोशनी में बहुत पुराना टूटा- फुटा एक केबिन दिखा। डैम के निर्माण के वक्त शायद निर्माण सामग्री रखने के लिये बनाया गया होगा और अब डैम की देख-रेख करने के उपयोग में लाया जा रहा है। उसने अनुमान लगाया।

-" अंधेरा घिर गया है। साँप-बिच्छू का भय भी है। चलिये, उस केबिन के वरांडे में शरण लेते हैं। " प्रस्ताव रखकर उसने दूर खड़ी सहमी छाया पर नजर डाली। "

वह सहमति दिखाती हुई केबिन की ओर चल दी। वह भी पीछे हो लिया। वरांडे में आने के बाद छाया के चेहरे से पीली रोशनी जैसे ही टकराई, उसके मुँह से अनायास निकल गया- " अरे, गीता तू...। गीता भी अचानक पलटकर देखी और आश्चर्य से भर उठी लेकिन बोली कुछ नहीं।

कुछ देर उनके बीच मौन पसरा रहा। चारो तरफ झाड़-पुटुस, मानव विहीन क्षेत्र, अँधेरी रात , झींगुर की डरावनी आवाज। बीच-बीच में दूर रिहाइशी इलाके से कुत्तों के भौकने की आवाज। कुल मिलाकर भीतर तक सिहरन पैदा कर देने के लिए काफी था। वह तो खैर स्थिर था लेकिन गीता डर कर काँप जाती थी। जब भी कोई जंगली जानवर चीखता वह सहमकर उसकी ओर खिसक आती।

-"डरो नहीं गीता। मैं हूँ न। हमदोनो बचपन में साथ-साथ खेले हैं। एक दूसरे को मारते-गरियाते बड़े हुए हैं। क्षण में कुट्टी, क्षण में दोस्ती। याद है न, कि सब भूल गई। " वह बातें किये जा रहा था ताकि गीता सहज हो सके। मन के भीतर यदि किसी तरह का शंका या डर हो तो मिट जाये। वह कुछ देर गीता की तरफ देखता रहा। जब उसे लगा

कि गीता सहज हो चुकी है तो बोला-" गीता , तुम गाँव से इतनी दूर कैसे आ गई ? आ गई तो आ गई। अपनी जान क्यों दे रही थी? ठीक वक्त पर मैं नहीं रोकता तो तू तो झिल में डूबकर मर ही गई होती। बता, क्यों?"

गीता गला खखार कर चुप हो गई। कुछ देर चुप ही रही। फिर धीरे-धीरे बोलने लगी-" तुमको जब गाँव वाला सब गाँव में घुसने नही दिया, तब मैं वहीं थी। एक कोने में छिपकर सब देख सुन रही थी। जब तुमको स्कूल में चौदह दिन तक रहने के लिये कहा गया तो मुझको बड़ी दया आई कि तुम खाओगे क्या। पानी का भी इन्तजाम नहीं था। उस रात मैं बड़ी देर तक सोचती रही। फिर यह सोचकर तसल्ली हुई कि तुम्हारे घरवाले छिप-छिपाकर जरूर कुछ न कुछ खाना पहुचायेंगे। लेकिन सुबह देखा तो तुम वैसे ही मरा जैसा पड़ा था। दया तो बहुत आ रही थी तुमपर, पर मैं क्या करती। लाचार थी। " बीच में साँस लेने के लिये वह रुक गई। रात के गहरे अंधेरे में शायद वह कुछ तलाश करती रही। फिर बोलने लगी-

-" मैं समझ गई , परिवारवाले भी तुम्हारी परवाह नहीं कर रहे हैं। मैं रात होने का इंतजार करने लगी। रात को अपने खाना से दो रोटी निकालकर रख ली। जैसे ही मेरे भाई-भाभी सो गए, मैं रोटी और पानी लेकर छिपते-छिपाते तुम्हारे नजदीक रखकर वापिस लौट आयी। इस तरह मैं रोज रात को रोटी पहुँचा दिया करती थी। एक रात भाई द्वारा पकड़ी गई। तुम तो जानते ही हो, मैं अपने पति की बुरी आदतों से तंग आकर मैके में पड़ी थी। मां के जिंदा रहते सब ठीक था। उनके मरते ही भाई पर बोझ बन चुकी थी। उस दिन उन्हें घर से निकालने का मौका मिल गया। मार-पिट कर यह कहते हुए घर से निकाल दिया कि तुम्हें अब कोरोना हो गया है। घर के अंदर भी नहीं घुसने दिया। मैं क्या करती, कोई सहारा नहीं था। डूबकर मर जाने के सिवा कोई चारा नहीं था। इसलिए झील में कूदने वाली थी कि तुमने बचा लिया। "

उसने आपबीती सुना कर सूनी आँखों से मुझे देखा जैसे आंखों से ही पूछ रही हो-" तुमने बचा तो लिया, अब बताओ मैं क्या करूँ? कहाँ जाऊँ?"

मैं खुद गाँव- परिवार से वहिष्कृत होकर इस निकृष्ट जीवन से छुटकारा चाहता था लेकिन अब एक बेसहारा उससे सहारे की आशा लिए उसपर नजर टिकाए बैठी थी। उसे गीता की स्थिति पर दया आ रही थी। याद आ रहे थे रोटियों के टुकड़े जिन्हें खाकर वह जिंदा रह पाया था। वे रोटियां गीता के हिस्से की थीं। वह खुद का पेट काटकर उसे जीवन देती रही थी। उसकी आँखें भर आईं। नम आंखों से वह गीता को देखते हए सोचता रहा। गीता पर प्यार, दया, सहानुभूति जैसे सैलाब बनकर उमड़ आया उसके भीतर।

-" गीता, तुम खुद को बेसहारा कैसे समझती हो? मैं हूँ न तुम्हारे साथ। अब तो मुझे भी जीने का मकसद मिल गया है। हमदोनो घर-परिवार से बंचित हैं। अब हम एक दूसरे का सहारा बनेंगे। नए जीवन की शुरुआत करेंगे। "

गीता के मुरझाए चेहरे पर अचानक चमक आ गई। विश्वास और भरोसे से भरे आँसू के साथ उसने पूरब की ओर देखा। भोर के उजाले में वही झाड़-पुटूस जो रात के अंधेरे में डरावने लगते थे, कितने हरे-भरे खूबसूरत दिख रहे थे।

लेख में व्यक्त विचार लेखक के हैं उनसे संपादक मण्डल या संपर्क भाषा भारती पत्रिका का सहमत होना आवश्यक नहीं है। किसी भी विवाद की स्थिति में न्याय-क्षेत्र नई दिल्ली रहेगा।
प्रकाशक तथा संपादक : सुधेन्दु ओझा, 97, सुंदर ब्लॉक, शकरपुर, दिल्ली110092

हल्का फूल

लेखक : प्रभुदास पटेल
अनुवादक : डॉ॰ सोमाभाई पटेल

मध्याह्न के समय संध्या हुई हो ऐसा माहौल था। आकाश और तल का भेद मानो मिट गया था। कहीं कोई मानवीय हलचल नहीं थी। इधर-उधर पक्षियों के थोड़े से झुण्ड ऐसे चल रहे थे मानो आँधी में ग़ायब हो गये हो ! एक आदमी तेजी से चल रहा था और एक औरत उसके पीछे-पीछे बिना मन चल रही थी। आदमी सोच-समझकर जल्दी चल रहा था। लेकिन वह औरत ! उसमें चलने का भाव भी कहाँ था ? मानो बेसुध वृद्ध बकरी क़दम भरने के लिए मथ रही हो ! आदमी बहुत आगे बढ़ गया, उसने पीछे देखकर कहा 'जल्दी चल न बहन !' और अचानक नींद में से चौक उठी हो वैसे नेमली कुछ क़दम तेजी से चली। लेकिन, वापस वही लागत ! नेमली कैसे चल सकती है? उसमें नूर भी कहाँ था ? उस घटना से मुश्किल से वह स्वस्थ हुई थी और फिर से थकान महसूस हो रही थी।

क़ुदरत ने मौत के नाम पर ऐसा जाल बिछाया कि नेमली की हरीभरी बाड़ी मानो भस्म हो गई। और आख़िरकार सारा जीवन क़ुदरत पर छोड़ दिया था। भट्ठी के अंगारों पर मुश्किल से राख़ जमी थी, वहीं आज फिर से हैरत ! 'मुआ, समाज का यह कैसा रिवाज ?' वह आह बरते हुए बुदबुदाई। पति की मृत्यु को दो महीने बीते थे। उसका मन कर रहा था कि हाश ! अब मायके वाले लेने नहीं आयेंगे। लेकिन, मायके वाले समाज के रिवाज को कैसे टाल सकते हैं ? यदि ऐसा किया तो समाज में क्या मुँह दिखाएँ ! सुबह में जैसे ही उसने अपने भाई को देखा; उसको कुछ होने लगा था ! अपने भाई को देखकर वह उसके गले से लिपट गई और फूट-फूट कर रोने लगी। उसके बाद तो उसने अँधेरे कोने को ही पसंद किया था। फिर विदाई का समय हुआ तब तो मानो उसका हृदय दहकती भट्ठी में जलने लगा था। उसने अपने भाई और ससुराल वालों का संवाद सुना नहीं था।

यदि सूना होता कैसा हाल होता ? और अपनी बेटियों को, जिठानी उठाकर नये घर ले गई थी। उसका शरीर शिथिल हो गया था और आँखों में अँधेरा भी छा गया था। 'ये ससुराल वाले लड़कियों को भी मुझसे अलग करना चाहते हैं क्या ?' यह सोचकर वह सिहर उठी थी। उसने जिठानी के ज़रिये कह देना चाहा था कि 'मुझे मायके नहीं जाना है। भाई से बोल दें कि आणा नहीं करना है' पर मुँह खुले तब न ! और दूसरे ही क्षण विचार बदल गया : 'बेवा स्त्री की क्या ताक़त ? मायके वाले तो मायके वाले ठहरे ! कल यदि ससुराल में अनहोनी हुई तब मेरा और लड़कियों का कौन ?' इस विचार से नेमली स्तब्ध हो गई थी। '

पर मायके लौटने का क्षण नेमली के दिमाग में धुंए की तरह घोंट रहा था। और जैसे ही वह क्षण आया, उसके रूदन पर सभी लोग पिघल गये थे। 'बाई, वापस लौटना...', 'बाई, वापस लौटना...' कहते हुए मोटी नमित चेहरे एकटक निहार रही थी और छोटी

चकित होकर सिसक रही थी। साथ ही गले लगाकर रोने वाली जिठानियाँ; और ‘सुखी रेज्जे, बेटा’ कहकर खाट के पास बैठ पड़े ससुर।

नेमली भाई के साथ घर की तलहटी पार कर पथरीले खेत में थोड़ा चली होगी कि उसके पैर थक गये। जहाँ सोमला ने सारे गर्मी के दिन छाँव में खटियाँ बिछाकर आमों की रखवाली करते हुए बिताये थे। जहाँ अपराह्न छोटी बेटी को कमर पर बिठाकर खिलखिलाते हुए वह ख़ुद सोमले को चाय पिलाने जाती थी; और अपनी बेटी को सीने से लगाकर खिलखिलाहट; उसकी मीठी-मीठी चुटकुलेबाजी ! नेमली का हृदय भर आया और ‘हे भगवान !’ आह भरते हुए वह अपने भाई के साथ बिना मन चलने लगी थी। आख़िरकार मायके वालों की क्या मंशा ? ससुराल वाले ख़ुश थे तो भाई के साथ क्यों बिदा कर दिया ? उसका ब्याकुल मन न समझ सका। हालाँकि, मायके वाले शायद समाज का रिवाज ही निभाना चाहते हो तो वह कितने दिन वहां ठहर सकेगी ? ऐसा सवाल भी दिमाग में घूम रहा था। अचानक दो बेटियों की चीखों ने उसके कानों में डर भर दिया।

अब भाई थोड़ा अकुलाने लगा : ‘तू गूंगी हो गई है क्या ? चल न ! गाँव कितना दूर है ?’ कुछ पल के लिए नेमली भी भाई के साथ क़दम मिलाने के लिए कोशिश करने लगी। वह सीम पार करके नदी तक पहुँची; उसने अपना घूँघट ज़रा-सा ऊपर उठाया। सावन के दिनों में दोनों तट बहती हरनाव भी सूखे पत्थर बिछाकर मानो आह भर रही थी। वह सूखे भाठे में चलने लगे। सूखी हरनाव को देखते ही उसकी नज़र कहीं पहुँच गई। दोनों किनार पर बहती हरनाव को पार करते हुए हरे घास का पोटला लेकर बिलकुल सामने तट पर पहुच चुका सोमला।

इस तट पर स्वयं को बोझिल देखकर भार हलका करने दौड़ चला आता सोमला ! नेमली अचानक रो पड़ी। भाई के कानों में मिर्ची की तरह लगा।

‘चलना है तो चल ! देखी न हो तो ! नहीं, नहीं, जो चल बसा है, उसे वापस ला सकते हैं ?’ लेकिन, भाई का कथन नेमली के लिए सुनने – न सुनने जैसा ही रहा। नदी पार करने के बाद भी उसके मन में सोमला का भूत ही सवार था। फिर भाई की डांट, मायका, मायके का रोना-धोना और सान्तवना के शब्द ! लेकिन उसका मन ही कहाँ था बिस्तर पर पड़ी हुई वह सोमला में ही डूबी हुई थी। उसके तन-मन में बिदाई की उस घटना ने अलग रूप में अवतरण लिया था। ’

घर की तलहटी से उतरते हुए देखा तो भाई कहीं नज़र नहीं आ रहा है। वह बिलकुल अकेली ! जैसे ही पथरीले खेत में आगे बढ़ते हुए आम के नीचे से वह गुजरी; किसी आव़ाज को सुनकर उसके पैर रूक गये। उसके दिमाग में आया कि यह सोमला की आव़ाज है या उसका भूत ? उसके सीने की धड़कन बढ़ गई। फिर भी आमों को देखे बिना नहीं रहा गया।

‘बाप रे ! लाल आँखें, मुरझा हुआ चेहरा और दुबले-पतले शरीर वाला सोमला डाल पर बैठा हुआ कांप रहा है ?’

‘आई रे ! सोमला की ऐसी दशा ?’ वह शोक से भर गई।

‘नेमली, मैं बस वहां भटक रहा था !’ सोमला रोने-सा हो गया।

‘अरे ! अरे ! आपको ठंड लग रही है ! आपके लिए मैं कांबली और खाने के लिए रोटी और प्याज ले आती हूँ। ’ कहते हुए नेमली लौटने लगी कि...

‘नेमली, वह मेरे कुछ काम नहीं लगाने वाला। कुछ करना है तो पर्व-त्यौहार पर धूप-दीप करना !’ कहते हुए भीगी आँख देख रहा था।

‘लेकिन, आप क्यों रो रहे हैं ?’

सोमला बहुत देर तक नेमली को देखता रहा और फिर थूक निगलते हुए बोला ‘मैं तुझे एक बात पूछने के लिए प्रकट हुआ हूँ !’

‘क्या?’ पूछते हुए नेमली आश्चर्य से देखने लगी। सोमला बोलते हुए अटक गया। तब नेमली ने उसे साक्ष्य देते हुए कहा : ‘यदि आपके प्राण को शांति मिलती है तो जो पूछना हो सो पूछ लीजिए ! मैं ज़रा भी झूठ नहीं बोलूंगी !’

‘लेकिन तुझे बुरा लग जाएगा, इसलिए डर

रहा हूँ। ’

‘आपकी कसम खाकर कहती हूँ, मुझे बुरा नहीं लगेगा, बस !’

‘नेमली, तू मायके तो जा रही है, लेकिन वापस लौटने वाली हैं ?’

नेमली का सीना धड़कने लगा और चेहरा पसीने से तर-ब-तर हो गया। सोमला से रहा नहीं गया। वह आम पर से नीचे कूद गिरा। उसने नेमली को गले लगाने की कोशिश भी की, लेकिन नेमली को वह पकड़ न सका। उसने करुण स्वर में पूछा : ‘नेमली, हमारी बेटियों का क्या होगा ?’

नेमली में हिम्मत भर आयी। ‘ओ ! ओ ! आप, आप मुझे क्या समझ बैठे हो ?’

‘तो फिर मैं पूछ रहा हूँ कि मेरे मरने के बाद तूने एक ही महीने में घर छोड़ने का विचार क्यों किया ?’

नेमली हक्का-बक्का रह गई। अपने मन की बात सोमला कैसे समझ गया ? उसका नूर चला गया और रोने सी आवाज में –

‘फिर तो आप यह भी जानते होंगे कि उस दिन आपका भाई... ! फिर कैसे सहन हो सकता है ? उसको लेकर आज भी डर लगता है !’

जवाब में उदास सोमला आम की डाल हिलाता रहा। इससे पहले कि नेमली कुछ और कहती, ‘लेकिन, मुझे, मुझे किसी ओर चीज से ही डर लगता है। ’ कहते हुए उसके चेहरे पर मानो पानी में डूब रहा हो ऐसा भाव उभरा। नेमली ने और जानने की ज़िद की तब, ‘नेमली, अभी समय है, तेरे मायके वाले नहीं मानेंगे तो?’ प्रश्न रूपी कंकड़ फेंक कर कहीं ग़ायब हो गया। तब नेमली का गुस्सा उस तरह भड़क उठा मानो छाती पर बड़ा पत्थर पड़ा हो ! घर में सो रही दोनों भौजाइयां ब्याकुल नेमली की चीखों से चौंक पड़ी और बैठ खड़ी हुईं। जब उन्होंने देखा तो बिजली की रोशनी के अलावा कुछ नहीं था !

०००

चाँद-तारों से जडी हुई रात। मायके में, बाड़े में खाट पर सोयी हुई नेमली करवटें बदल रही थी। दिन भर की भीषण और असहनीय गर्मी के बाद, रात को बहने लगी मद्दिम हवा के तीखे झोंकों का उस पर कोई असर नहीं हुआ। और रात के चाँद और तारों ककी

रोशनी भी उसे दुःख के अलावा ओर क्या दे सकते थे ? सोमला के साथ बिताई वे रातें; सवेरे उठकर उसके साथ लकड़ियाँ या महुंदे बीनने जाना; न जाने कितना कुछ सता रहा था ? ससुराल में, पति की मौत के बाद वही अँधेरा कोना ! इधर मायके में तो शुरुआत में एक-दो रात घर में गुज़ारी। बाद में बिलकुल आज़ादी। लगातार सोने की जद्दोजहद ! इसी जद्दोजहद में नेमली के मन में स्मृतियाँ उभरने लगीं।

सोमला का गाँव तो बहुत दूर है, फिर भी मिलने के लिए कैसे कैसे साहस ? वह ख़ुद चौपड़ में सो रही हो और बड़ी देर रात वही बैटरीचारा ! फिर तो चोरकदम घर के पीछे; पहाड़ी और फिर खजूर की छाया में।

‘सोमला, शरम जैसा कुछ है या नहीं ? मेरे भाइयों को पता चल गया ओ ! ससुरे, तेरा सिर फोड़ देंगे !’

‘ही... ही... ही... ! तेरे भाई ? नहीं, नहीं, वे तो माला पहन कर घुमते-फिरते होंगे। ’

‘तू तो बिलकुल नकटा है !’

‘हाँ, हाँ, नकटा तो नकटा... जैसा मानो वैसा ! लेकिन, तुझे मिले बीमा नहीं रह सकता हूँ नेमली !’

और पहले पहर तक मीठा झगड़ा और मौज-मस्ती। एक सुबह कपड़ों की गठरी बांधकर सोमला के साथ शहर में , श्रम और विवाह।

सोमला बड़ा दिलेर था। दिख्नने में जितना सुन्दर था उतना ही स्वाभाव में भी। श्रम, खेती या अन्य कार्यों में सोमला और नेमली की जोड़ी साथ-साथ। और सोमल दूसरे पुरुषों से कितना अलग ! नहीं शराब का व्यसन, नहीं पैसे का हिसाब या मार-झुड तो बिलकुल नहीं।

उसने आह भरते हुए कहा : ‘मेरे सोमला जैसा कोई दूसरा मिल सकता है ? नहीं, नहीं, ऊपर भी नहीं मिला सकता। सोमला तो सोमला !’

दूसरे ही पल सवाल हो उठा : ‘जानवर के काटने के बाद घर वालों ने सोमला जाडू-टोनों की जगह अस्पताल दिखाया होता तो ! अरे ! लेकिन औरतों का कहाँ कोई सुनता है ?’ सोचा भी नहीं था ऐसा एक विचार उसके मन में घर कर गया। उसके बाद की अधिकांश

रात करवटें बदलने में व्यतीत हुई। नेमली का अनार्मं बोल उठा :
'नेमली, अब क्या ?' वह बावली हो उठी। ऊपर से शाम की घटना का स्मरण हो आया। अपने दोनों भाई और माँ-बाप चौपड़ में बैठकर चर्चा कर रहे थे। भावजें और वह ख़ुद रसोईघर थीं। पिताजी ने शुरू किया :
'अनहोनी हो गई ! लेकिन, अब नेमली का क्या ?'
चौपड़ में थोड़ी देर के लिए सन्नाटा छा गया। लेकिन, कुछ ही मिनटों बाद, बड़े भाई ने कहा : 'पिताजी, उसके ससुराल वाले रखने के लिए तो राजी हैं, पर उनके भरोसे कैसे रह सकते हैं ? मैंने तो कह दिया कि यह तो हम देख लेंगे !
'पर अब क्या ?'
'पिताजी, मैं दो दिन पहले कह रही थी उस बात पर सोचना चाहिए। '
'मैं सोच ही रहा था, लेकिन...'
'इसमें लेकिन वेकिन क्या ? मावजी हवालदार जैसा कोई मिल ही जाएगा ! और पेंशन भी है !'
'यह तो सही, लेकिन उसे दो दो लडके...'
'उसमें क्या ?'
'नेमली की लड़कियों का क्या ? वह नहीं स्वीकारेगा तो !'
'उसमें क्या ? नेमली के सास-ससुर मर नहीं गये हैं !'
'हम लोग तो मावला के साथ पक्का मान बैठे हैं। '
और बहुत समय से मौके के इन्तजार में बैठा छोटा भाई भी –
'नहीं, नहीं, पिताजी, बड़ा भाई सही कह रहा है। मावला ही...' दरमियाँ माँ का रोना सुनाई दिया और सारा मामला शांत हो गया। माँ का फुसफुसाना धीरे धीरे लेकिन स्पष्ट सुनाई दे रहा था : 'कैसा ज़माना ? नहीं, नहीं, बेचारी दो-दो भांजियां मामा को भारी...!'
और कड़ुआ घूंट पी कर बैठी रही नेमली को हुआ : 'इससे तो भला, उसी दिन सोमला के साथ जल कर मर गई होती तो ? ऐसा दिन नहीं देखना पड़ता !'
और नेमली को चुपके से रोती देखकर भाभी ने कहा : 'नेमीबहन, मेरी यह बात आप को अच्छी नहीं लगेगी। बिना पति के औरत की ज़िंदगी दूभर है ! आदमी की जात से बचकर औरत कैसे रह सकती है ?'
दो महीनों से जो सहन किया था वह नेमली को याद आने लगा। उसके दिलोदिमाग में भयानक चित्र खड़ा हो गया।
एक बकरी अपने दो बच्चों के साथ भौंकते कुत्तों से घिरी हुई थी। सबकी नज़र बकरी की प्रतिक्रिया और हिलचाल पर थी। बकरी की नज़र कभी 'में' 'में' करते अपने छोटे बच्चों पर जाती, कभी वह डर की मारी सिहर उठती। किसी की ज़ुबाँ फुद्फुदा उठी थी। कोई नज़रें मिलाने के लिए मथ रहा था। कोई मौके का इंतज़ार कर रहा था। कोई दयालु बनने का नाटक कर रहा था।

मन फिर गबराने लगा।
'काश ! भाभी का कहा मान लिया होता !'
'लेकिन, ओर कोई चारा नहीं हैं। डर कर जीने से तो...'
'लेकिन परायी पांचशेर कौन अपनाने के लिये तैयार होगा !'
और बेटियों का स्मरण होते उसका हृदय भरी हो गया। जीवली मुश्किल से स्कूल जाने लगी थी। और काम में भी आजकल हाथ बँटाने लगी थी। छोटी घाघरा पकड़कर अभी अभी चलने लगी है। '
'मेरी बेटियाँ मेरा इंतजार करते हुए मर जायेगी ! उनका क्या हाल होगा ? उनको कौन संभालता होगा? कौन खिलाता होगा ? रोती होगी तो कौन शांत करता होगा !'
'जीवली को कौन नहला कर पाठशाला भेजता होगा ? रे कुदरत ! मैं कैसी अभागिन हूँ ?'
ऐसे ही विचारों में नेमली मानो पंख फूटे हो वैसे कहीं दूर पहुँच गई। खेत तक छोड़ने आई अपनी भाभी को अपने गले लगा लिया। 'भाभी, जो होना है सो हो, लेकिन अपने पेट के बच्चों को तो कैसे छोड़ सकते हैं। ' आँसू बहाते चेहरे चार-चार बार गले लगाकर बलैयां लेती थी। और पल में तो ससुराल में और सोमला तथा ख़ुद ने बनाए हुए नये घर पहुँच गई। बार-बार माँ को मिलकर बेटियाँ मानो पूछ रही थी :

लोरी तुम्हें सुनाता था

तुम भी जब रूठा करती थी
मैं भी तुम्हें मनाता था
जब कोई उलझन होती थी
मैं ही तो सुलझाता था..। ।

तन्हाई में जब अक्सर तुम
छुप-छुप रोया करती थी
बनकर मीत तुम्हारा मैं ही
तुमको खूब हंसाता था..। ।

बेबस और लाचारी लेकर
जब तुम गुमसुम रहती थी
भूलकर मैं अपने सारे ग़म
मन को मैं बहलाता था..। ।

रात-रात भर करवट में जब
नींद तुम्हें न आती थी
नींद तुम्हें मैं अपनी देकर
लोरी तुम्हें सुनाता था..। ।

तुम अवसरवादी बन बैठे
प्रेम रीति सब भूल गए
टूट गया वो प्रेम घरौंदा
जिस पर मैं इतराता था..। ।
जिस पर मैं इतराता था..। ।

~ विजय कनौजिया

हे पिता!

हे पिता!
तुम्हारे लिए आज
जो दिवस बने हैं
मैं ठुकराता हूँ
प्रतिपल ऐसे दिवसों को।
जीवन के क्षण क्षण में
जो दुख आते थे
तुम उनको
बस झट से
चुटकी में हर ले जाते थे।
हे पिता!तुम्हें मैं कैसे बाँधूँ एक दिन में
तुम दशक नहीं, तुम सदी नहीं
तुम युग से बड़े महायुग हो
हे पिता!तुम्हें मैं कैसे बाँधूँ, कैसे बाँधूँ
एक दिन में?
जब अपने कदमों पर
मैंने चलना सीखा
गिरा, गिराया गया
कई-कई बार
लगी ना मुझको चोट
तलहथी तुम्हारी चोट सह गई
चेहरे पर बिखरी मुस्कान
हे पिता!तुम्हें मैं कैसे बाँधूँ एक दिन में।
लगती थी मुझको चोट जब कभी
दर्द तुम्हें ही होता था
तेरी आँखों मे देखकर ऑसू
दर्द भी मेरा रोता था।
हे तात! तुम्हें मैं कैसे बाँधूँ एक दिन में।
जब घर से
पहली बार मैं
बाहर निकला था
चुपके से मुड़कर देखा था
तेरी आँखें, तेरी आँखें,
आँसू, आँसू
हे पिता! तुम्हें मैं कैसे बाँधूँ एक दिन में।
अपने जूते फटे
कभी तुम देख ना पाए
उसको सिलवा-सिलवा कर
तुम काम चलाए
छत उन्हें दिया
जो छत का मोल समझ ना पाए
हे तात! तुम्हे मैं कैसे बाँधूँ एक दिन में।
तुमने मुझको जन्म दिया है
रूप दिया है, रंग दिया है
खुशियों का तरंग दिया है
आँसू लेकर मुस्कान दिया है
जीवन में परमानंद दिया है
हे मेरे आराध्य!
मुझसे यह पाप ना होगा
क्षमा करो तुम।
हे तात! तुम्हें मैं कैसे बाँधूँ,
कैसे बाँधूँ, कैसे बाँधूँ
एक दिन में?
तुम मुनि नहीं, तुम ऋषि नहीं
ना अभिनेता ना नेता हो
तुम त्यागों के पर्याय अनवरत
बस तुम ही
आदर्श हो मेरे
अंतिम साँसों तक।
हे पिता तुम्हें मैं कैसे बाँधूँ
कैसे बाँधूँ, कैसे बाँधूँ
एक ही दिन में।
तुम दशक नहीं, तुम सदी नहीं
तुम युग से बड़े महायुग हो
हे पिता!तुम्हें मैं बाँधूँ कैसे, कैसे बाँधूँ
कैसे-कैसे, बाँधूँ-बाँधूँ
कैसे बाँधूँ
एक ही दिन में?

अनिल कुमार मिश्र, रांची, झारखंड

चाहत फिर से आज हुई

****

बहुत दिनों के बाद आज फिर
मेरी उनसे बात हुई
हुई शिकायत वाली बातें
फिर मीठी तकरार हुई..। ।

दोषारोपण इक दूजे पर
हमने खूब लगाया आज
अपनेपन से छलकी आंखें
जमकर खूब बरसात हुई..। ।

एक दूजे के बिन बीते जो
चर्चा उस पर खूब हुई
क्यों थे इतने दूर भला तुम
पूछताछ फिर आज हुई..। ।

कब से थे हम खोए-खोए
एक दूजे की बातों में
भूल गए हम सभी शिकायत
पहले जैसी बात हुई..। ।

वादा करते हैं हम तुमसे
फिर ना कभी सताएंगे
तुम भी देना साथ हमेशा
चाहत फिर से आज हुई..। ।
चाहत फिर से आज हुई..। ।

~ विजय कनौजिया

पद्मा अग्रवाल

इंटरनेट के गुलाम नहीं वरन् मालिक बनिये ...

आजकल मोबाइल के बिना जीवन की कल्पना करना ही कठिन हो गया है। छोटे बड़े सभी की मुट्ठी में मोबाइल है। मोबाइल के द्वारा हम दोस्त रिश्तेदारों से संपर्क में रहते हैं। हमें ट्रैफिक की जानकारी देता है , नेविगेशन में सहायता करता है। हमारा मनोरंजन करता है मनपसंद टी.वी. सीरियल , म्यूजिक के द्वारा अपना मनोरंजन कर सकते हैं। मुसीबत के समय तुरंत मोबाइल के द्वारा आवश्यकतनुसार आपातकालीन सेवा से संपर्क कर सकते हैं। बैंकिंग और भुगतान में मोबाइल बहुत उपयोगी है।

यही कारण है कि हम सब धीरे धीरे स्मार्टफोन या मोबाइल के गुलाम बनते जा रहे हैं।

समस्या यह हो गई है कि बच्चों के हाथ से मोबाइल छूटता ही नहीं है। हम सब विशेष कर बच्चे इस कदर मोबाइल और इंटरनेट के मोहपाश में बंध गये हैं कि इसका असर बच्चों की सेहत पर दिखने लगा है ....

यदि आपका लाडला आपकी बातों पर ध्यान नहीं दे रहा और कुछ चिढा चिढा सा रहता है , अपने दोस्तों से भी इन दिनों दूर दूर रह रहा है , पढाई लिखाई में भी मन नहीं लगाता .... कुछ धुंधला भी दिखने लगा है तो यह आपके लिये एलार्म की घंटी है कि आपके बच्चे को मोबाइल इंटरनेट की लत लग गई है

मोबाइल और इंटरनेट के अधिक प्रयोग से बच्चों के मस्तिष्क पर घातक असर पड़ रहा है। डॉक्टरों का कहना है कि 10 से 15 वर्ष के बच्चों में डिप्रेशन , एंक्जायटी , अटैचमेंट डिसआर्डर, मायोपिया जैसी बीमारी की जकड़ में आ रहे हैं।

रांची के मशहूर मनोचिकित्सा संस्थान रिनपास और सी. आई . पी. के आंकड़ों की मानें तो हर माह इस तरह की शिकायत से लगभग 200 बच्चे पीड़ित होकर आ रहे हैं। इसका कारण मुख्य रूप से. मोबाइल फोन , टैब , और लैपटॉप और वीडियोगेम्स के अधिक प्रयोग के कारण बच्चों के मस्तिष्क पर बुरा असर पड़ रहा है। दिन में औसतन दो घंटे से अधिक मोबाइल का प्रयोग बच्चों के दिमाग पर असर डालता है। मस्तिष्क के साथ साथ शारीरिक विकास पर भी बुरा प्रभाव डाल रहा है।

मोबाइल गेम्स की एक छद्म दुनिया होती है। बच्चे इसमें पूरी तरह खो जाते हैं ''पब्जी' , फोर्टनाइट , कॉल ऑफ ड्यूटी जैसे गेम इसके उदाहरण हैं , पब्जी पर सरकार ने बैन किया है परंतु अभी भी अधिकतर

ऐसे कई गेम हैं जो बच्चों के मन में हिंसा की भावना भड़काते हैं।

फेसबुक, ट्विटर , इंस्ट्राग्राम, व्हाट्सऐप की लत भी खतरनाक है। अनजान लोगों से दोस्ती के कारण नादानी में सूचनाओं का आदान प्रदान घातक हो जाता है। अपराधी प्रवृत्ति के लोग इसका दुरुपयोग करते हैं।

मोबाइल के अधिक प्रयोग के दुष्परिणाम हम सबको अपने चारों तरफ दिखाई पड़ने लगे

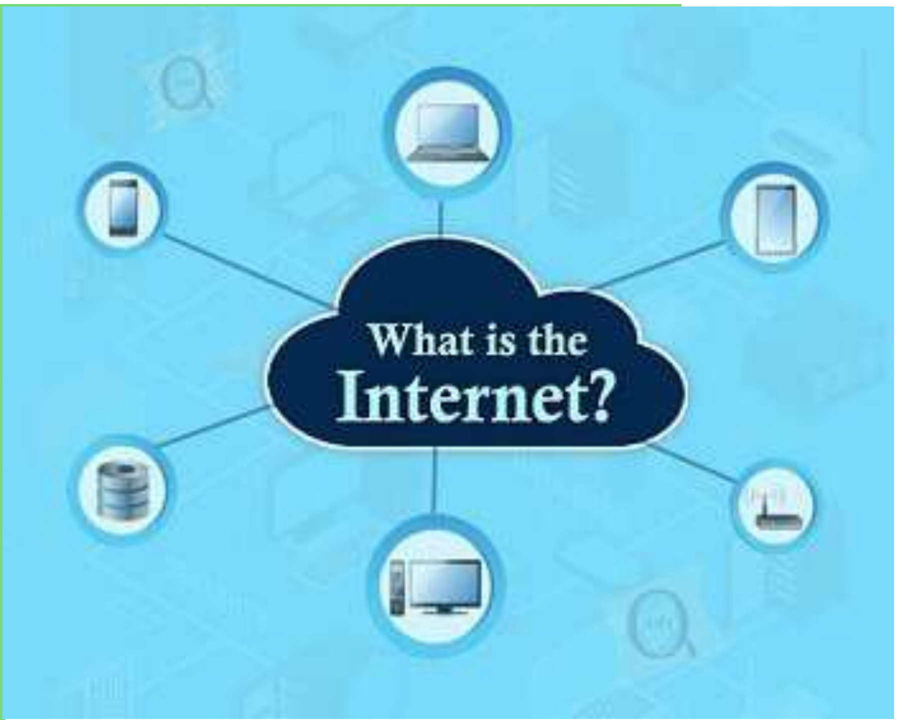

हैं ....

1-दिमाग के विकास पर असर— दिमाग का शुरुआती विकास कई प्रकार के वातावरणीय उद्दीपनों (Environmental stimuli) के होने या न होने पर निर्भर करता है।

विकसित हो रहे दिमाग पर टेक्नालॉजी के एक्सपोजर से बच्चों के सीखने की क्षमता पर असर पड़ रहा है। बच्चों में ध्यान न लगना , खाना ठीक से न खाना , आंखे खराब होना, हायपर एक्टिविटी , और स्वयं को अनुशासित और नियमित न रख पाने की समस्या पैदा हो रही है।

2-विकास धीमा हो जाना –(Delayed development)—दिन भर मोबाइल के संपर्क में रहने के कारण बच्चों की शारीरिक मानसिक गतिविधियां सीमित हो जाती हैं। इस कारण उनका शारीरिक विकास की गति धीमी हो जाती है। फिजिकल एक्टिविटी करते रहने से बच्चे एक चीज पर फोकस करना सीखते हैं और नई स्किल भी उनके अंदर डेवलप होती है।

3-मोटापा बढना –(Epidemic obesity) —जिन बच्चों को डिवाइसेज उनके कमरे में उपयोग के लिये दी गईं , उनके मोटे होने का रिस्क 30 प्रतिशत अधिक पाया गया है। मोटे बच्चों को बड़े होने पर। डायबिटीज , पैरालिसिस, और हार्टअटैक का खतरा बढ जाता है।

4-नींद की कमी (Sleeping disorder)—60 प्रतिशत पैरेन्ट्स अपने बच्चों के टेक्नालॉजी के प्रयोग पर निगरानी नहीं रखते। और 75 प्रतिशत बच्चों को अपने कमरे में मोबाइल इस्तेमाल की खुली छूट रहती है। इस वजह से उन्हें नींद की समस्या रहने लगती है।

5-मानसिक रोग—(Mental illness)—बच्चों में डिप्रेशन , एंक्जायटी , ध्यान नहीं लगना , ऑटिज्म (Autism), बाय पोलर डिसऑर्डर , उन्माद , और प्राब्लम चाइल्ड बिहेवियर (problematic behaviour) जैसी समस्यायें बढती जा रही हैं।

6-आक्रामकता – (Aggression)—मीडिया , टी.वी. , फिल्मों और मोबाइल गेम्स में हिंसा ज्यादा दिखाई जा रही है जिसके कारण बच्चों में आक्रामकता बढ रही है। आजकल बाल अपराधियों की संख्या तेजी से बढ रही है। शारीरिक और लैंगिक हिंसा के टी. वी . प्रोग्राम और वीडियो गेम्स के कारण बच्चे अपराधी बन रहे हैं। हत्या , बलात्कार और टॉर्चर के दृश्यों की भरमार आजकल टी.वी., के प्रोग्राम में होती है।

मीडिया द्वारा दिखाई जाने वाली हिंसा को अमेरिका में पब्लिक हेल्थ रिस्क की श्रेणी में रखा
जाता है। क्योंकि ऐसे दृश्य बच्चों के विकास को विकृत करते हैं।

7-डिजिटल स्मृतिलोप (digital dementia)—हाई स्पीड मीडिया कन्टेंट से बच्चों के फोकस करने की क्षमता बुरी तरह से प्रभावित हो रही है। जिसके कारण वह एक चीज पर ज्यादा देर तक अपना ध्यान केंद्रित नहीं रख पाते। इन बच्चों को पढाई में दिक्कत आती है।

8-लत लगना (Addiction)-जब मातापिता स्वयं अपने गैजेट्स में बिजी रहेंगें तो अपने बच्चों से भावनात्मक आधार पर दूर होने लगते हैं। स्वस्थ विकास के लिये आवश्यक है कि मातापिता बच्चों को अपना क्वालिटी टाइम दें। जब बच्चे अकेलापन महसूस करते हैं तो इन चीजों की ओर ज्यादा आकर्षित होते हैं। और इनका इस्तेमाल करते करते इतने एडिक्ट हो जाते हैं कि कई बार तो उन्हें अपने खाने पीने का भी ध्यान नहीं रहता है।

9-रैडियेशन का खतरा (Radiation Emission)—W.H.O. ने मई 2011 में ही सेलफोन से 2बी कैटेगरी के रैडियेशन रिस्क को संभावित कैंसर कारक बताया था लेकिन 2013 में टोरंटो विश्वविद्यालय के स्कूल ऑफ पब्लिक हेल्थ के डॉक्टर एंथोनी मिलर ने अपनी रिसर्च में बताया कि 2बी का नहीं वरन् 2ए कैटेगरी का कैंसर कारक माना जाना चाहिये।

बच्चे हमारा भविष्य हैं लेकिन टेक्नालॉजी के सीमा से अधिक प्रयोग करने वाले बच्चों का मस्तिष्क खतरे में है।

10-आंखों पर दबाव (Eye strain)- बच्चे बिना पलक झपकाये स्क्रीन पर देखते रहते हैं। इसे कंप्यूटर विजन सिंड्रोम भी कह सकते हैं। यदि आप अपने बच्चों के आंखों की भलाई चाहते हैं तो 30 मिनट से ज्यादा लगातार स्क्रीन पर न देखने दें।

मोबाइल फोन और इंटरनेट के दुष्परिणाम से हम सभी अवगत हैं। लेकिन फिर भी बच्चों के साथ साथ बड़े भी इस लत के शिकार हो चुके हैं। अमेरिका के कैलीफोर्निया यूनिवर्सिटी में एक सर्वे हुआ था ... जिसमें

- सार्वजनिक स्थानों में मोबाइल फोन का इस्तेमाल अशिष्टता कहा गया है।
- हार्वर्ड यूनिवर्सिटी की रिसर्च में बताया गया है कि सोशल साइट्स के द्वारा दुनिया से जुड़ाव एक नशा है। इनसुला दिमाग का एक पदार्थ है जो किसी फोटो या खबर को शेयर करने के बाद उतना ही आनंद आता है , जितना अच्छा खाना खाकर मिलता है।
- इंटरनेट ज्यादा प्रयोग करने वाले बच्चे अपनी शारीरिक बनावट और अपने लुक से असंतुष्ट रहते हैं। जो सोशल साइट्स पर ज्यादा नहीं जाते उसमें 82 प्रतिशत अपने लुक से खुश और संतुष्ट रहते हैं।

44 प्रतिशत बच्चे जो सोशल साइट्स का ज्यादा प्रयोग करते हैं वह अपने पैरेंट्स से अक्सर झगड़ा करते हैं। जो इसका इस्तेमाल नहीं करतेउनमें 20 प्रतिशत हफ्ते में एक दिन झगड़ा करते हैं।

इन्हीं कारणों से इंटरनेट को इलेक्ट्रिक हेरोइन कहा जाने लगा है। ऑनलाइन गेम से बच्चों में अकेलापन बढ रहा है। उनके मन में हिंसा की भावना बढ़ रही है। लड़कियां चाहती हैं कि उनकी प्रोफाइल पिक्चर सबसे अच्छी हो .... जब उनकी पोस्ट पर कम लाइक्स और कमेंट मिलते हैं तो उनमें क्रोध , निराशा , और अवसाद की भावना घर कर जाती है ....उनकी पढाई में व्यवधान आने लगता है।

मोबाइल और इंटरनेट आज हम सबकी जरूरत बन चुका है , इसीलिये इसे नकारा नहीं जा सकता।

आपको अपने बच्चे को मोबाइल और इंटरनेट देना ही होगा। इसलिये आवश्यकता इस बात की है कि आप और आपका बच्चा इसका लाभ उठायें , इसके लिये निम्न टिप्स आजमायें ----

1- आप सबसे पहले अपने आप पर कंट्रोल करें। हर समय आप फोन और इंटरनेट पर अपनी आंखें न लगाये रखें। अपने बच्चे के लिये अच्छा उदाहरण बन कर अपने को प्रस्तुत करें।

2-बच्चे को कोई स्पोर्ट्स क्लब ज्वायन करवायें। फिजिकल एक्टिविटी के लिये बच्चे को प्रोत्साहित करें। खेल से थका हुआ बच्चा स्वतः ही इन चीजों से दूर हो जायेगा। खेल के द्वारा बच्चे के मन में प्रतियोगिता की भावना पैदा होगी।

3-पूरे दिन में समय सुनिश्चित करें। कुछ नियम बनायें और उसको आप स्वयं भी फॉलो करें। पाबंदी निश्चित करें। और रूल तोड़ने पर घरेलू कामों को दण्डस्वरूप करें और अपने बच्चे से भी करवायें।

4-वीडियो दिखाकर बच्चे को जागरुक करें। मोबाइल इंटरनेट के ज्यादा प्रयोग से होने वाले नुकसान को बताने के लिये किसी परिचित डॉक्टर या विशेषज्ञ के द्वारा बातचीत करवा कर बच्चे को सही गलत की जानकारी करवायें।

5-बच्चे को उसके दोस्तों के साथ मिलने जुलने का अवसर दें। उन्हें अपने साथ आउटिंग या पिकनिक पर लेकर जायें। शाम को निश्चित समय पर बाहर पार्क या ग्राउंड में बच्चों के साथ खेलने के लिये कहें।

6-जब आपका बच्चा कोई क्रियेटिव काम करे तो उसके दोस्तों के सामने चर्चा करके उसे इनाम और सम्मान दें

7-बच्चे को कभी यह लालच न दें कि वह जब होमवर्क कर लेगा तो उसे मोबाइल पर गेम खेलने को मिलेगा। बच्चे का पूरा ध्यान तो मोबाइल पर रहता है , न ही वह ढंग से अपना होमवर्क करेगा और न ही वह अपना पाठ याद करेगा। इसलिये ध्यान रखें कि बच्चे को लालच कतई न दें।

8-आप स्वयं भी अपने बच्चे के साथ इनडोर गेम खेल कर उसे व्यस्त रख कर मोबाइल से दूर रख सकती हैं।

मोबाइल और इंटरनेट के नुकसान से बचने के लिये आवश्यक है कि नोटिफिकेशन , एलर्ट आदि विकल्पों को बंद कर रखें । थोड़ा मुश्किल है लेकिन एक तरीका यह भी है कि सोशल मीडिया एकाउंट्स से बाहर निकल आने के साथ ही चैटिंग, कॉलिंग, आदि को भी सीमित करना भी है। क्यों कि हमें यह मालूम हो चुका है कि सोशल मीडिया का अधिक प्रयोग समय , शक्ति , आदि का नुकसान करके मन में नकारात्मक ऊर्जा भर देता है।

इंटरनेट और मोबाइल के गुलाम मत बनिये वरन् उसके मालिक बन कर उसका लाभ उठायें।

मंसूबा

कहानी : श्यामल बिहारी महतो

उन दिनों पत्नी के साथ मेरा भारत चीन जैसा ताना तनी चल रही थी। तभी मैने पाकिस्तान जैसा एक नापाक चाल चली थी। घर में गाय और माय के अभेद्य किले को तोड़ने की चाल...!

गाय का दाम कल शाम को ही तय हो चुका था। दाम दूध-दूधारू और देह देख कर तय हुआ था। जुमन मियां बूढ़े-बांझ और" ऐब " वाले मवेशियों को बेचने का धंधा पिछले कई वर्षों से करता चला आ रहा था। इसके पहले उसका बाप इस धंधे में लगा हुआ था। कहा जाता है एक बार एक बूढ़े बैल ने बौखला कर अपनी दोनों लंबी सींग को जुमन के बाप के पेट में घूसेड दिया था। अस्पताल जाते जाते रास्ते में उसने दम तोड दिया था। इसके बावजूद जुमन ने इसी धंधे को चुना था। वह सुबह तड़के उठता और गांव गांव में घूमता, चक्कर लगाता रहता-बिना खाये-पिये ! जैसे ही कहीं सौदा पट जाता-वहीं गमछी बिछा देता और अल्ला को याद करने बैठ जाता। मानो अल्ला मियां ने ही यह सौदा तय कराया हो। जुमन मियां पक्का कारोबारी आदमी था। उसके धंधे में आज तक कोई दाग नहीं लगा था। जो बात तय होती-उसे वह खुदा का फरमान समझता था। तय समय पर लोगों को पैसे देकर अपनी ईमानदारी का सिक्का जमा रखा था उसने। यही जान हमने भी उसके साथ उधार ही सौदा तय कर गाय दे देने का मन बना लिया था।

गाय को छ:माह पहले ही खरीदी थी मैंने। काली गाय और खैरा उसका बछड़ा, दोनों ही मेरे मन को भा गया था। तब मन में दूध से ज्यादा " गो-सेवा की भावना थी। गाय लेने के वक्त मुझसे कहा गया था कि यह गाय इतनी सुधवा अर्थात अच्छी स्वभाव की है कि इसे औरतें भी बड़ी आसानी से दूध दूह लेती है। औरतें भी से मैने समझा था कि मर्द तो इसका दूध दूहते ही होगें-औरतें भी आसानी से दूध निकाल लेती होंगी।

आज मुझे गाय के पहले मालिक को बड़ी बड़ी गालियां देने का जी कर रहा था-कमीने ने कमाल का झूठ बोला था और एक ऐब वाली गाय को मेरे गले बांध दिया था।

दो दिन पहले अपनी कुछ बातों को मुद्दा बना कर पत्नी ने झगड़ा की और फिर मायके चली गयी। जाने से पहले तंज कसते हुए कहा था-" कहते हो यह हमारी खरीदी हुई गाय है- दूध निकाल लेना इसकी थान से तो जानू..तुम्हारी गाय है...!"

पत्नी की अहम वाली बात और गाय की लात ने मुझे एकदम से पागल कर दिया था। गाय को गोहाल से बाहर कर देने का जैसे मुझे पर भूत सवार हो गया था। और इसी जुनून ने जुमन मियां से मिला दिया था। इसके पहले जुमन मियां से मै कभी मिला नहीं था। नाम के साथ बुलावा सुनते ही वह दौड़ा चला आया था।

गाय-गोबर और दूध दूहने के नाम पर हर दिन पत्नी की चख चख से भी मै निजात चाहता था। गो सेवा का भूत भी अब सर से पुरी तरह उत्तर चुका था। दो दिन में ही लगा यह गाय मेरा गूह-मूत करा के छोड़ेगी-इससे छुटकारा अब केवल जुमन मियां ही दिला सकता था। पर कैसे ? अभी तो वह खुद गोहाल के बगल में बनी पक्की नाली में पसरा पड़ा हुआ था। सीधे छाती पर गाय की ऐसी लात पड़ी थी कि जुमन मियां सात जन्मों तक उसे भूला नहीं पायेगा। कहूं तो गाय मरखनी बन चुकी थी। दो दिन में ही उस पर जैसे लात मारने का भूत सवार हो चुका था। उसकी आंखों में अंगारे दहक रहे थे। जो भी उसके सामने जाता-दुश्मन नजर आता, उसमें मैं भी शामिल हो गया था। और उसकी लातों का पहला भुक्त भोगी भी मै ही बना था।

पत्नी का मायके जाने के बाद गाय की थान से दो दिनों में दो बूंद भी दूध निकाल नहीं पाया था। उल्टे अब तक हम उसकी कई लातें खा चुके थे। गुस्साये-तिलमिलाये गाय की दूध की जगह अपनी छठी की दूध याद कर रहा था। यहां तक तो किसी तरह सह लिया था।

बल्कि दिन की लात भी भूला देने का मन बना लिया था और सोचने लगा आखिर हमारे साथ गाय का यह भेद-भाव क्यों ? सुबह कुट्टी के साथ दररा-चारा मिला कर मै इसे खिलाता हूं। गुड-पानी मै पिलाता हूं। फिर दूध देने में इतनी भेद-भाव क्यों? दूध की जगह हमें लात क्यों खानी पड़ रही है !

उस दिन शाम को भी गाय से दूध नहीं ले सका। खाली लोटा देख मन तो भड़का परन्तु कुछ सोच कर शांत हो गया था।

दूसरे दिन सुबह तो गजब ही हो गया। सहन शक्ति एक दम से जवाब दे गयी। हुआ यूं कि बछड़े की रस्सी बेटी पिंकी को पकड़ा दी और खुद दूध दूहने बैठ गया। अभी मैने गाय की थान पर अपना हाथ भी नहीं लगाया था-बस हाथ आगे बढ़ा ही रहा था कि जोर की लात सीधे बांयी चूतड पर पड़ी और फिर पड़ी ! यह देख पिंकी डर से चीख पड़ी। तभी बछड़े ने उसे जोर का झटका दिया। वह धम से जमीन पर गिर पड़ी। रस्सी उसके हाथ से छूट गयी। उठने की कोशिश की, वह उठती इसके पहले गाय उधर घूम गयी और कब एक लात उसे भी जमा दी-" बप्पा गो बप्पा....!" वह चिल्ला उठी तो उसे उठाने दौड़ पड़ा। इसके बाद तो मेरा क्रोध जैसे जाग उठा था। बगल कोने में पड़ी डंडा उठायी और तड़तड़ाकर दो-तीन ठंडे गाय पर चला दी। अब गाय रंभाने लगी। पिंकी मुझसे लिपट गई। बोली-"छोड़ दो बप्पा...!"

अकस्मात मेरी जेहन में पत्नी से पहली मुलाकात-पहली रात और पहला सहवास की तस्वीरें और आज तक की एक उबाऊ भरी जिंदगी का खट्टा मीठा अनुभव मानस पटल पर किसी चलचित्र की भांति घूम गयी थी। उसकी इच्छा की परिधि के भीतर मै आज तक कदम नहीं रख सका था।

गोहाल में खड़े खड़े कभी गाय को देखता तो कभी पत्नी के बारे में सोचता। दोनों के स्वभाव में कितनी सामनताऐं थी। धीरे धीरे मेरे अंदर का क्रोध उबले दूध की तरह ठंडा होता चला गया था।

इधर जुमन मियां फिर उठ खड़ा हुआ था। लेकिन अभी तक वह गाय गोहाल से निकाल नहीं पाया था। परन्तु वह भी जानवरों का पक्का लतखोर और थेथर आदमी था। सो पुनः आगे बढ़ा था। उस वक्त हमारा गोहाल एक रणक्षेत्र में बदल चुका था। एक छोर में मै था, मेरी बेटी पिंकी थी और अपने अल्ला को याद करता जुमन मियां था। वहीं दूसरी ओर काली गाय और उसका खैरा बछड़ा था। युद्ध शुरू हो चुकी थी। जुमन मियां को बिगड़ैल जानवरों की जानकारी थी। जिद्दी भी था। किस जानवर को कैसे काबू में किया जाय, इसका बपौती हुनर था उसके पास।

वह आगे बढ़ा था। अपनी सारी शक्तियों को समेट कर। अपने मरहूम बाप और खुदा को याद कर। पगहा उसके हाथ में था। और गाय ठीक उसके दो हाथ दूर खड़ी थी। जुमन मियां ने एक कदम आगे बढ़ाया। गाय ने जुमन मियां को कसाई की तरह आगे बढ़ते देखा। उसकी क्रोधित आंखें लाल अंगारों की तरह दहक रही थी और रह रह कर उसके आगे के दोनों पैर आगे-पीछे हो रहे थे। मतलब साफ था। वह जुमन मियां के लिए एक ललकार थी। जैसे कह रही थी -" आओ.. आज हम जीवन का आखरी दांव लगाते है..! इस घर में या तो मैं रहूंगी या फिर तुम जाओगे..!"

और जुमन मियां गाय की गर्दन को लपक लिया था। जिस तेजी से जुमन गाय की गर्दन पर सवार हुआ था। पगहा फंसाता कि अगले ही पल वह दीवार से जा टकराया था। गाय ने दूगूनी ताकत से उसे उछाल दिया था। उसे जोर का चक्कर आया और माथा पकड़ वहीं बैठ गया। उसके सर पर गहरी चोट लगी थी। मेरी आंखों के सामने का यह दृश्य किसी सिनेमायी से कम नहीं था। सोचा कुछ उपचार कर दूं उसका। यह सोच मै घर के अंदर गया। इतने में सतबजिया कमाडर गाड़ी से पत्नी मायके से वापस लौट आयी। आंगन में उसे जुमन मिल गया-" तुम मेरे घर में....?" आवाज रौबदार थी।

गाँव

फूल की पंखुड़ियों पर शबनम
की बून्दें जल गयीं।
प्यास मर गयी कुएँ में औनाकर। ।
गाय बिकी कर्ज के लिए।
अन्न बिके इलाज के नाम पर। ।

बैल मरे बूढ़े होकर।
बीज सड़े धरे-धरे बेबस होकर। ।
किसान मरे पहाड़ खींचकर।
मजूर झखे पंजाब जाकर। ।

आँखों में अँखुआती इच्छा मुरझाई।
कभी तेज धूप से, तो कभी पाले से। ।
जो बचे, उससे जिन्दगी चली।
कभी कसक कर, तो कभी लहक कर। ।

रोटी जब भी जली
खूँट में नमक रह गया। ।
स्वप्न भले झड़े सूख कर।
मगर आँखों में उम्मीद रह गयी। ।
मेरा एक भाई अब भी गाँव में बाँस कटवा रहा।
इतने अटपटे समय में भी साँसों में नए अर्थ भर रहा। ।
सूखे हुए पेड़- पौधों को।
सींच रहा आँखों की नमी से। ।
मैं जीने की तमन्ना से रूठ गया हूँ यहाँ।
वह कौन है जो गाँव की सूरत पर हँस रहा शहर में। ।
कौए घर की मुंडेर से उड़कर कचनार पर बैठे हैं।
स्मृति में नीलकंठ की खोज जारी है। ।

कोई सदा भटक रही है सुबह से उन रास्तों पर।
अनंत छवियाँ डूब रही हैं वक्त की परछाइयों में। ।
बच्चे हँस रहे हैं।
बैल की घंटियाँ देख कर। ।
टूट कर जो भी गिरे।
एक हलचल फिर भी मुझे बेचैन करती है
अपने बयाबाँ में। ।

संजय कुमार सिंह

सीमाओं के पत्थर

वह भेद-भाव नहीं,
समान चाहती हैं।
वह तोड़ना नहीं,
जोड़ना चाहती हैं।
वह तोड़ना चाहती हैं,
सीमाओं के पत्थर।
वह नफरत नहीं,
प्रेम-प्यार चाहती हैं।
वह घमंड नहीं,
गर्व चाहती हैं।
वह मिटाना चाहती है,
सीमाओं के पत्थर।
वह ईर्ष्या नहीं,
इश्फ़ाक चाहती हैं।
वह पाप नहीं,
पुण्य चाहती हैं।
वह हटाना चाहती हैं,
सीमाओं के पत्थर,
वह छल नहीं,
विश्वास चाहती हैं।
वह संघर्ष नहीं,
शांति चाहती है।
वह दबाना चाहती हैं,
सीमाओं के पत्थर।

आंबा सुवासरा

(एक)

यह कैसी है हवा चली.....!

यह कैसी है हवा चली
क्यों उदास हैं कली कली
है नहीं वो दिखता जैसा
सूरत जिसकी भली भली

प्यादों के बल खेल रहा हूँ
जीवन का शतरंजी खेल
जीतूँगा कैसे, गर उसने
साजिशी वज़ीरी चाल चली

चलते चलते हाँफ गया हूँ
पहुंचूंगा कैसे मंज़िल तक
दिशाहीन रस्ते पथरीले
अंधी सड़कें अंध गली

भ्रष्टाचार मिटा देने का
करता जो मिथ्या वादा
भ्रष्टाचार मे आकंठ जो डूबा
भ्रष्टाचारी महाबली।

000

(दो)

लहरें लौट गई हैं बतिया के किनारों सर
हम हैं कि खड़े कश्ती के इन्तज़ार में

लुट गई है अस्मत जिन ख़ुश्क फ़िज़ाओं की
तलाश रहे हैं हम उन्हें सर-ए-बाजार में

था भला वो अबतक हमारे दरमियान
ढूँढ रहे हैं याद कर उसे मज़ार मे

लौट के आया वो आज हमारी बस्ती में
ढूँढा किए थे जिसे दर-ए-इश्तहार में

000

भानु भारवि

3 मुक्तक

1...

मुश्किलों से खेलकर धूप छांव झेलकर ,
हर एक पेट को ये अन्न उपजाते हैं।

मिट्टी से यह सने हुए पर्वतों से तने हुए ,
खेत की ये मेंढ पर तन झुलसाते हैं। ।

धुर कश्मीर से यह कन्याकुमारी तक , जीत कर क्षुधा मन - मन मुस्कुराते हैं।

इनकी ही तपस्या से समृद्धि - वृष्टि होती है
धरती के ये आनंद- घन कहलाते हैं। ।

2....

ये मौसमे बहार भी खिजां सा लगा लगने ,
छीनी जग की हरियाली इस कोरोना ने।

चौपट हुए सभी के धंधे गांव शहर में, खाली है सारी खुशहाली इस कोरोना ने। ।

राग रंग फीके फीके सारे हो गए देखिए ,
नीरस की ईद दिवाली इस कोरोना ने। ।

फूलों की महक भी है सहमी हुई लगती ,
की है उदास डाली डाली इस कोरोना ने। ।

3....

पेट में संभालती लहू से है पालती , इसकी आशीष से यह धरा मुस्काती है।

सृजन की बेल यह दिए में यूं तेल यह,
इसके आलोक में ही धरा उजियाती है

जीवन में रंग देती जीने के ये ढंग देती ,
जीवन की धरा को प्रेम से महकाती है

इसके बिना शिव शव रह जाता है , उजले संसार की यह दिया तेल बाती है। ।

अशोक दर्द (डलहौजी)

डॉ वंदना

डायरी

श्रीमती एवं श्री खुशहाल सिंह दयाल स्मृति सम्मान

'प्रणेता साहित्य न्यास' के संस्थापक और अध्यक्ष , राष्ट्रपति से सम्मानित , सुप्रसिद्ध प्रतिष्ठित कथाकार श्री एस जी एस सिसोदिया जी ने 2017 से अपने सास ससुर की स्मृति में एक प्रतियोगिता प्रणेता के तत्वावधान में आरंभ की थी। 2017 से हम विविध विधाओं की पुस्तकें मंगवा कर प्रथम , द्वितीय , तृतीय पुरस्कार में धनराशि, अंग वस्त्र और सम्मान पत्र देते रहे हैं, पर इस वर्ष इसमें दिव्यांग साहित्यकारों के लिए भी पुरस्कार देने का विधान रखा गया था। इस वर्ष चले आ रहे तीन पुरस्कारों के अतिरिक्त हमने दो विशेष पुरस्कार दिव्यांग साहित्यकारों को दिए। ढाई हजार शब्दों से ऊपर की लंबी कहानी प्रतियोगिता के लिए आमंत्रित की गई थी, जिसमें प्रथम पुरस्कार फरीदाबाद से श्रीमती कमल कपूर जी को द्वितीय पुरस्कार फरीदाबाद से ही डॉक्टर इंदु गुप्ता जी को और तृतीय पुरस्कार जयपुर से डॉक्टर आभा सिंह जी को दिया गया। विशेष पुरस्कार के अंतर्गत डॉ वंदना और डॉ घनश्याम आसुदानी जी सम्मानित हुए।

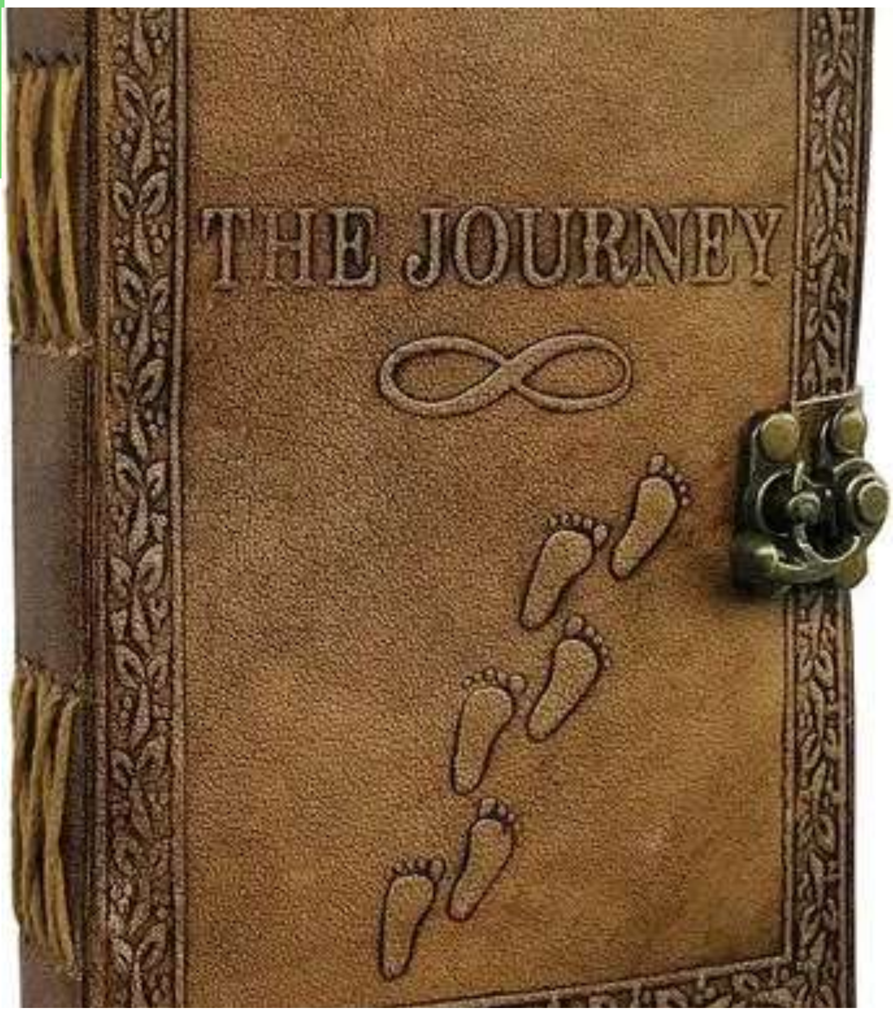

पुष्पिता कुछ दिनों से बहुत उद्विग्न थी, इतनी उद्विग्न तो वह तब भी नहीं हुई थी जब अकस्मात् विभोर उसे और पंखुड़ी को छोड़ कर एक ऐसी दुनिया में चले गए थे, जहाँ से कभी कोई लौटकर नहीं आता। एक रात विभोर सोए तो फिर कभी नहीं उठे। डॉक्टरों के अनुसार उन्हें साइलेंट हार्ट अटैक पड़ा था। तब पंखू मात्र दो वर्ष की ही थी। इस घटना को भी अब 12 वर्ष बीत चुके हैं, पर लगता है जैसे कल की ही बात हो। सृष्टि का संचालक विधाता ही तो है। सबके जीवन पतंग की डोर उसी के हाथ में है। वह जिस जीवन पतंग की डोर खींचना चाहता है, खींच लेता है। विभोर के जाने के बाद माँ बाबू जी ने उससे दूसरा ब्याह करने की कितनी ही ज़िद की थी पर उसने "बाबूजी मुझे दूसरी शादी नहीं करनी, मैं पंखु के सहारे ही अपना सारा जीवन काट लूंगी। पता नहीं दूसरा पिता पंखू को अपना पाएगा या नहीं? मैं पंखू के बचपन के साथ कोई रिस्क नहीं लेना चाहती। " कहकर दूसरे विवाह की संभावनाओं को ही समाप्त कर दिया।

पुष्पिता पढ़ी लिखी थी, अतः थोड़ी कोशिश के बाद उसे घर के पास वाले विद्यालय में ही अध्यापिका की नौकरी मिल गई। स्कूल के बाद उसे जो भी समय मिलता वह बच्चों को ट्यूशन पढ़ाने में व्यतीत हो जाता। उसके ऊपर न तो घर की कोई जिम्मेदारी थी, न ही

पंखू की। घर की सारी जिम्मेदारी माँ जी ने ले ली थी और पंखू की बाबूजी ने। लेकिन दो वर्ष पूर्व विभोर ने पहले माँ जी को फिर बाबूजी को अपने पास बुला लिया, और उसे तथा पंखू को इस नश्वर संसार में दर दर की ठोकरें खाने के लिए छोड़ दिया।

माँ और बाबूजी के जाने के बाद पंखू की बुआ पुष्पिता से अपने बेटे विस्मय को साथ रखने का आग्रह करने लगीं। "आजकल समय ठीक नहीं है, तुम दोनों अकेली कैसे रहोगी? घर में किसी न किसी मर्द का होना जरूरी है। रात बिरात कोई बात हो जाए तो कोई भाग दौड़ करने वाला तो होना ही चाहिए। वैसे भी विस्मय यहाँ पढ़ता लिखता नहीं है, दिन रात आवारागर्दी करता रहता है तुम्हारे पास रहेगा तो आदमी बन जाएगा। "

पुष्पिता न चाहते हुए भी उनके आग्रह को टाल न सकी, पर विस्मय के आ जाने के बाद उसकी समस्या घटने के बजाय बढ़ने लगीं। उसके स्कूल के बाद का अधिकतर समय विस्मय के लिए खाना बनाने, कपड़े धोने, जूते पोलिश करने में ही बीतने लगा।

इधर कुछ महीनों से पंखुड़ी बहुत उदास रहने लगी थी। स्कूल से आने के बाद वह अपने आपको कमरे में बंद कर लेती और पुष्पिता के बहुत बुलाने के बाद ही वह कमरे से बाहर आती। इस बार परीक्षा में भी उसके अंक कम आए थे, न तो वह ठीक से खाना खाती और न ही पुष्पिता की बात का जवाब देती, जहाँ बैठती वहीं गुमसुम बैठी रहती। पुष्पिता ने मनोचिकित्सक से उसके बारे में बात की थी और उन्हीं की सलाह पर उसने ट्यूशन पढ़ाना छोड़ दिया था। अब वह स्कूल के बाद का सारा समय पंखू के साथ ही बिताती, पर फिर भी पंखू में कोई बदलाव नहीं आ रहा था। "क्या ईश्वर पंखू को भी मुझसे छीन लेगा? वह इतना निष्ठुर हो गया है ! नहीं, नहीं मैं पंखू के बिना नहीं जी पाऊँगी। " यह सोचते सोचते उसकी आँखें छल छला आईं।

छुट्टी का दिन था। लगभग ग्यारह बज रहे थे। पंखुड़ी अपने कमरे में बैठी स्कूल का होमवर्क कर रही थी। पुष्पिता भी घर का काम निबटा कर नहाने की तैयारी करने लगी। अभी वह घुसलखाने में घुसी ही थी कि उसे पंखू की चीख सुनाई पड़ी, वह उल्टे पाँव उसके कमरे की ओर भागी। जो दृश्य उसने कमरे में देखा उसे देखकर कुछ क्षणों के लिए उसके पैर कमरे के द्वार पर ही जड़ हो गए। विस्मय ने पंखू को अपनी बाहों में जकड़ रखा था और वह उसकी बाहों से मुक्त होने के लिए पूरी शक्ति लगा रही थी। पंखू की आँखों से अश्रु की अविरल धारा बह रही थी। उसने किसी तरह विस्मय को खीचकर पंखू से अलग किया। वह चिल्लाई, " यह क्या बदतमीजी है, विस्मय? पंखू तुम्हारी बहन है। क्या तुम हमारी इज्जत उतारने इस घर में आए हो?" पंखू अभी भी बुरी तरह काँप रही थी। पुष्पिता का जी चाहा कि वह विस्मय को पुलिस के हवाले कर दे, किंतु समाज में बदनामी और परिवार के डर से वह ऐसा नहीं कर सकी। पुष्पिता फिर चिल्लाई , " निकल जाओ विस्मय मेरे घर से इसी वक्त, अब तुम यहाँ एक पल भी नहीं ठहर सकते। " विस्मय भी चीखा, "यह घर मेरा भी है, इस घर पर जितना तुम्हारा अधिकार है उतना ही मेरी मां का भी है। मैं जा रहा हूं लेकिन फिर इसी घर में लौट कर आऊंगा। " यह कह कर वह घर से निकल गया। पुष्पिता जानती थी विस्मय ठीक कह रहा है। घर बहुत बड़ा था इसीलिए बाबू जी ने घर की एक मंजिल की रजिस्ट्री उसके नाम कर दी थी और दूसरी मंजिल की अपनी बेटी के नाम। निर्णय बाबू जी ने उससे पूछ कर ही

लिया था, पर तब वह यह कहां जानती थी कि। बाबू जी का यह निर्णय उसका और उसकी बेटी का सुकून छीन लेगा।

विस्मय को गए हुए दो महीने बीत चुके थे। पंखू धीरे धीरे सहज होने लगी थी। पर अभी भी पहले जैसी खिल खिलाहट उसके चहरे पर नहीं लौट पाई थी। पुष्पिता की परेशानियां बढ़ती जा रही थी। बीते दो महीने के भीतर उसकी ननद के कई फोन आ चुके थे। "देखो भाभी, विस्मय को तो मुझे भेजना ही पड़ेगा। नहीं भेजूंगी तो उसकी पढ़ाई अधूरी रह जाएगी। तुम्हें नहीं रखना तो अपने पास मत रखो। ऊपर की मंजिल में रह लेगा। वैसे भी ऊपर की मंजिल तो बाबूजी मेरे नाम ही लिख गए हैं। लड़कपन में तो ऐसी छोटी मोटी गलतियां हो ही जाती हैं। तुम तो खामख्वाह बात का बतंगड़ बना रही हो। " पुष्पिता जान चुकी थी कि अब वह और अधिक दिन पंखू के साथ इस घर में नहीं रह सकेगी। उसे घर छोड़कर जाना ही पड़ेगा, उसने गहने बेचकर तथा बैंक में अपने और बाबूजी के द्वारा जमा रुपए, जो पंखू के भविष्य के लिए रख छोड़े थे, निकाल कर एक ढाई कमरे का घर खरीद लिया। विस्मय के लौटने के पहले ही वह घर छोड़कर चली जाना चाहती थी, अतः स्कूल के बाद का उसका सारा समय सामान पैक करने में व्यतीत होने लगा।

रात के आठ बज रहे थे। आकाश में तारे टिमटिमा रहे थे। चंद्रमा का शीतल प्रकाश चुपके से खिड़की के रास्ते घर के भीतर तक प्रवेश कर चुका था। पंखुड़ी टेलीविजन पर कोई सीरियल देख रही थी। पुष्पिता रोज की तरह बचे हुए सामान को पैक करने में व्यस्त थी, वह जल्दी जल्दी पंखू की अलमारी का सामान निकालकर सूटकेस में भर रही थी। सहसा उसकी दृष्टि कपड़ों के नीचे छिपाकर रखी डायरी पर पड़ी। डायरी! वह उठाकर उसे दिखने लगी। यह पंखू कब लाई? वह हर सप्ताह पंखू की अलमारी ठीक करती है। पर उसकी दृष्टि इस पर कभी क्यों नहीं पड़ी? उसके मन में आया कि वह खोलकर डायरी पढ़ डाले, पर फिर यह सोचकर कि कहीं पंखू कमरे में न आजाए उसने डायरी वहीं रख दी। पैकिंग करते करते ग्यारह कब बज गए उसे पता ही नहीं चला, पांखू टेलीविजन देखते देखते सोफे पर ही सो चुकी थी। पुष्पिता ने धीरे से डायरी निकाली और दबे कदमों से रसोई में आ गई। वह किवाड बंद कर के डायरी पढ़ने लगी। डायरी के कुछ पृष्ठों पर पंखू ने बहुत सुंदर चित्रकारी की हुई थी। उसने उसमें अपनी उपलब्धियों एवं पुरस्कारों के विषय में भी लिखा था। अचानक पुष्पिता की नजर एक ऐसे पृष्ठ पर पड़ी जिस पर कोई रंग नहीं था। अक्षर भी कुछ धुंधले हो गए थे।

नवंबर, 2017

प्रिय सहेली,

डायरी

आज मेरा मन बहुत उदास है। आज मेरे साथ जो कुछ हुआ मैं तुम्हे सब बताना चाहती हूं। शायद तुम मेरी कुछ सहायता कर सको। आज सुबह हम सभी बच्चे रोज की तरह PT कर रहे थे, पर PT वाले सर का व्यवहार आज बिलकुल बदला हुआ था, वे exercise सिखाने के बहाने कभी मुझे... कभी किसी और लड़की को छू रहे थे, कभी वह हमारी पीठ पर हाथ लगाते और कभी किसी और अंग पर। मैं बहुत डर गई थी आज, इससे पहले उन्होंने कभी ऐसा नहीं किया था। उन्होंने ऐसा क्यों किया होगा? प्यारी सहेली बताओं न? मैं मां को सब कुछ बताना चाहती थी, पर बता नहीं सकी, और बताने से होगा भी क्या? मां क्लास टीचर से

शिकायत करेगी और क्लास टीचर PT वाले सर को सब बता देंगी, फिर सर मुझे बहुत डांटेगे।

अप्रैल, 2018

प्रिय सखी

डायरी

बहुत रात हो चुकी है, सब सो चुके हैं। पर मुझे नींद नहीं आ रही है, पता है तुम्हे! आज मै बहुत रोई हूं, तुम्हे तो पता है कि मैं रोज शाम को दोस्तों के साथ खेलने जाती हूं, आज भी गई थी। पर खेलते खेलते अचानक लाइट चली गई। मां ट्यूशन पढ़ा रहीं थीं शबनम मुझे अपने घर ले गई, शबनम के बड़े भाई के कहने पर हम सब मम्मी पापा वाला खेल खेलने लगे। मैं मम्मी बनी वह पापा और शबनम हमारा बच्चा। तुम तो जानती हो न कि वह मुझसे बहुत बड़ा है, खेलते खेलते वह मेरे समीप आने लगा। धीरे धीरे उसने मुझे छूना शुरू किया। कभी वह मेरे गालों पर हाथ लगाता, कभी पीठ पर, कभी छाती पर। मैं उसे जितना अपने से दूर हटाने की कोशिश करती वह और चिपकता जाता, वह मेरे कपड़े उतारने लगा। मैं बुरी तरह कांप रही थी। मेरी आंखों से झर झर आंसू गिरने लगे, मैं किसी तरह भाग कर घर आना चाहती थीं पर दरवाजा अंदर से बंद था तभी लाइट आ गई। कॉल बेल की आवाज से हम सब हड़बड़ा गए, जैसे ही दरवाजा खुला मैं दौड़कर बाहर आ गई। मां पहले से ही मुझे ढूंढ रहीं थीं। मैंने आज भी मां को कुछ नहीं बताया और चुपचाप घर आ गई। प्यारी सहेली उसी वक्त मैंने फैसला कर लिया कि अब मैं कभी भी खेलने नहीं जाऊंगी। मां के कहने पर भी नहीं।

सितंबर, 2020

अब मैं 12 साल की हो चुकी हूं। सब कहते हैं मैं बिल्कुल पापा जैसी हूं। शाम हो चुकी थी। मां ने मुझे पड़ोस वाली आंटी के यहां कुछ सामान देने के लिए भेजा था। मैंने कॉल बेल बजाई, अंकल ने दरवाजा खोला और जैसे ही मैं सामान देने लगी उन्होंने मुझे अंदर खीच लिया और दरवाजा बंद कर दिया। इससे पहले कि मैं कुछ कह पाती उन्होंने मेरे चारों ओर अपनी बाहें कस दी और मुझे चूमने लगे। मेरी रुलाई छूट गई, मैं जोर जोर से रोने लगी। अंकल मुझे छोड़ दो। घर जाने दो। मां इंतजार कर रहीं हैं मेरा। लेकिन जैसे उन्हें मेरी बात सुनाई ही नहीं पड़ रही थी वे जैसे ही मुझे बिस्तर पर लिटाने ही वाले थे कि कॉल बेल बजी। अंकल ने मुझे छोड़ दिया और दरवाजा खोलने चले गए मैं अभी भी रो रही थी, मेरे आंसू थमने का नाम नहीं ले रहे थे। थोड़ी देर बाद आंटी मेरे सामने खड़ी थी उन्होंने मुझसे बार बार रोने का कारण पूछा लेकिन मैंने कुछ नहीं बताया। मैंने अपने कपड़ों से आंसू पोछे और घर से बाहर निकल आई। प्यारी सहेली, क्या मुझे आंटी को सब कुछ बता देना चाहिए था ?मेरे पापा नहीं हैं न इसीलिए सब मेरे साथ ऐसा व्यवहार करते हैं। अंकल की बेटी भी तो मेरे जैसी ही है। क्या वे उसके साथ भी......

जानती हो सखी! अगर मेरे पापा होते तो मेरे साथ ऐसा कभी नहीं होता। मैंने उस दिन भी मां के पूछने पर कुछ नहीं बताया। प्रिय सहेली! मैं मां को सब कुछ बताना चाहती हूं। कैसे बताऊं? तुम ही कोई रास्ता बताओ न। काश! तुम बोल सकती तो कितना अच्छा होता। तुम ही सब कुछ मां को बता देती।

फरवरी 2022

प्यारी सहेली

डायरी,

आज मैं आखिरी बार तुमसे बातें कर रहीं हूं। मैं पूरी तरह टूट चुकी हूं, अब मैं शायद और अधिक जी नहीं पाऊंगी। मैं जानती हूं मां

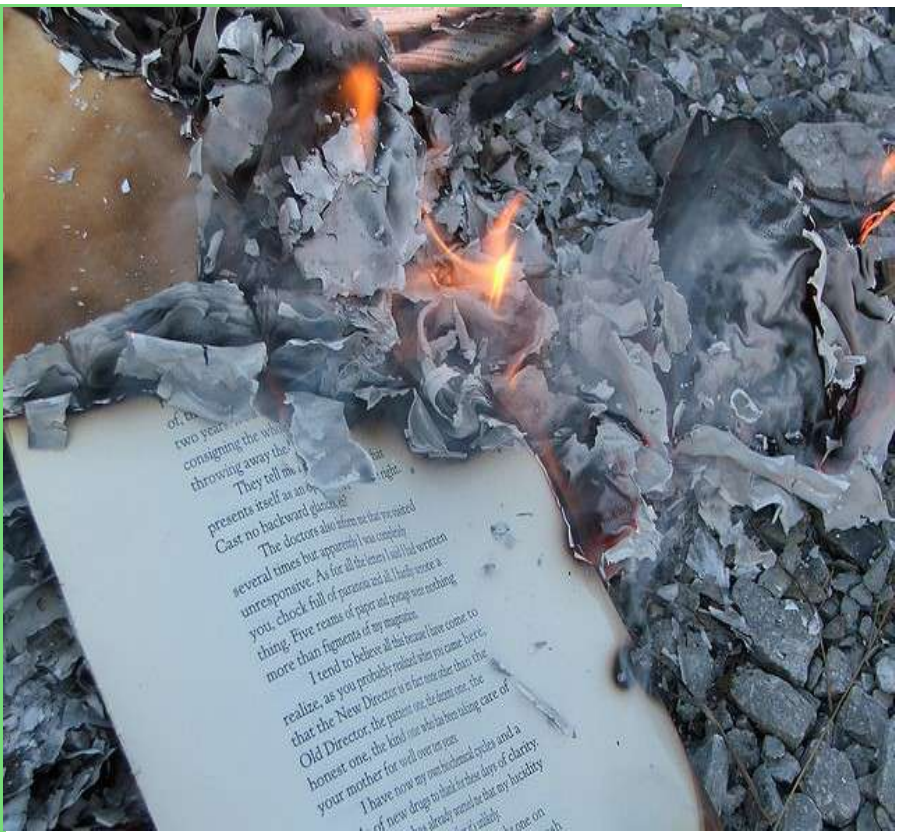

मुझसे बहुत प्यार करती हैं। मेरे बिना वे कैसे रह पाएंगी? मैं क्या करूं सखी, मैं क्या करूं? तुम्हें तो सब पता ही है कि जिस दिन से विस्मय इस घर में आया है, उस दिन से मैं एक एक दिन मर मर कर जी रही हूं। वह कभी मुझे अपनी बाहों में जकड़ लेता है, कभी अपने साथ बिस्तर पर खींच लेता है और मेरे साथ अनैतिक संबंध बनाने की कोशिश करता है। मैं थक चुकी हूं उसके इस व्यवहार से। मेरे लिए मर जाने के अतिरिक्त अब कोई रास्ता नहीं बचा है। पर मैं मरना नहीं चाहती। मैं जीना चाहती हूं, मुझे बचा लो सखी! बचा लो। मैं मां को सब कुछ बता देना चाहती हूं। हिम्मत भी बटोरती हूं, पर मुख से शब्द नहीं निकल पाते। पुष्पिता इसके आगे डायरी नहीं पढ़ सकी, वह वहीं धम्म से बैठ गई। उसके आंसू फर्श को भिगोने लगे। उसने कांपते हाथों से लिखना आरंभ किया, "मेरी बच्ची पंखू, मुझे माफ कर दो। मैं मां का कर्तव्य नहीं निभा सकी। पता नहीं मुझसे कहां चूक हो गई? बस, तुम मेरी एक बात मान लो। बोलो, मानोगी ना! तुम सब कुछ बुरे स्वप्न की तरह भुला दो। सूरज भी तो अस्त होने के बाद पुनः उदित होता है ना। तुम भी अपनी उदासियों से बाहर निकलकर जीवन में आगे बढ़ो। जब किसी मनुष्य को शून्यहीनता से एक ही मार्ग पर चलते रहने से लक्ष्य की प्राप्ति न हो सके तब समय रहते उसे दूसरा मार्ग चुन लेना चाहिए। तुम अपनी प्यारी सहेली डायरी को अपने से दूर कर दो, उसे भूल जाओ और नई सहेली बनाओ। जीवन निरंतर आगे बढ़ने का नाम है तुम्हें आगे बढ़ते रहना चाहिए। आगे बढ़ोगी तभी लक्ष्य तक पहुंचोगी। "

पुष्पिता कई घंटों तक फर्श पर ही बैठी रही। सुबह के चार बज चुके थे। उसने पुनः डायरी पंखू के कपड़ों में रख दी। वह बिस्तर पर जाकर लेट गई और सोने का प्रयत्न करने लगी। पंखू अभी भी गहरी नींद में सो रही थी। उसके चहरे पर एक अलौकिक आभा विद्यमान थी। पुष्पिता

कविता-प्रणय का विरह

चाह थी गर राधा न बन
पाऊँ
मीरा बन हृदय में , बसाऊँ
तुमको
मैं मीरा तो बन न सकीं
तुम कृष्ण गैरों के
बने रहे l
चाह थी राधा बन
तुमसे विलग न रह
पाऊँ मै,
मै राधा तो न बन
सकीं,
तुम कृष्ण गैरों के
बने रहे l
चाह थी सखियों मे छिप
निहारू छवि तुम्हारी
मैं सखी तो न बन पाई
तुम कृष्ण गैरों के
बने रहे l
चाह थी अर्जुन बन
उपदेश तुम्हारा सुन
पाऊँ,
मैं अर्जुन तो न बन
पाई,
तुम कृष्ण गैरों के
बने रहे l
चाह थी कालिया बन
चरणों का स्पर्श करूँ
मैं कालिया तो न बन
पाई,
तुम कृष्ण गैरों के
बने रहे l
मैं अष्टसखी में बनी रही

बुद्धसेन से बुद्धूलाल

रामानुज अनुज

ऊँची तकदीर वाले बुद्धू होते हैं, सबके भाग्य में बुद्धूपन नहीं होता है। जिसके पास बुद्धि का भंडार होता है, वही बुद्धू हो सकता है, बुद्धिनारायण या बुद्धसेन हो सकता है। बुद्धि एक ऐसा शब्द है, जिसका प्रयोग हम प्रत्येक निर्णय पर करते हैं। बुद्धि एक महाशक्ति है जिसके सहारे व्यक्ति विवेकशील चिंतन कर सकता है और वातावरण के साथ तालमेल बनाकर अपना काम साध सकता है। बुद्धिशील व्यक्ति को बुद्धिमान कहते हैं। बुद्धिमान व्यक्ति की अगली तरक्की बुद्धूलाल में होती है। बुद्धूलाल हो जाने पर सरकारी नौकरी की तरह गफ़लत करने पर डिमोशन के चांस नहीं होते। कुछ भी कर लो, बुद्धूलाल, एक पायदान नीचे नहीं आ सकते हैं। एक पुराना प्रसंग है। बुद्धूसेन नाम का बुद्धजीवी रास्ता भटक गया। रात दिन जंगल-पहाड़ चढ़ते-उतरते हुए बुद्धि का ईंधन खत्म हो गया।

भटकाव होने पर बड़े-बड़े पण्डित ज्ञानी, ध्यानी तक बुद्धिहीन होते देखे गए हैं। भूखे-प्यासे दर-दर भटकने के कारण वह कमजोर हो गया, चलने में पाँव लड़खड़ाने लगे। फिर सिर चकराया और वह धड़ाम से जमीन पर गिरकर बेहोश हो गया। बकरियाँ लिए चरवाहे उसे गिरते हुए देखकर धाये। फिर मुर्दे की तरह उठाकर उसे अपने घर ले आए। गाँव वालों ने जड़ी-बूटी सुंघाकर उसका इलाज किया। तब भी उसे होश नहीं आया, तब किसी बुजुर्ग की सलाह पर उसे चमड़े का देसी जूता सुँघाया गया। जूते ने काम दिखाया, बुद्धूसेन को होश आ गया, किंतु एक बड़ा नुकसान जरूर हुआ कि उसकी बुद्धि फेल हो गई। वह अपना नाम पता तक भूल गया। गाँव वालों ने उसकी खूब सेवा

की। सुबह-शाम बकरी के दूध के साथ मक्के की रोटी खिलाई गयी। दो हफ्ते में बकरी का दूध रंग दिखाया, वह तंदुरुस्त हो गया। वैसी भी याद खोए व्यक्ति की सेहत जल्दी सुधरती है। अब वह पहलवान दिखता था। उसकी सेहत को देखकर गाँव ने मुखिया ने नागपंचमी के दिन दूसरे पहलवान के साथ बुद्धसेन की कुश्ती का ऐलान कर दिया गया। दूसरे दिन तय समय पर कुश्ती देखने के लिए गाँव भर के लोग इकट्ठा हुए।

भीड़ में अनुमान चलने लगा, कोई कहता, 'यह (बुद्धसेन) तो आज झूलन पहलवान का कचूमर निकाल के रख देगा। ' कोई कहता, 'हाँ भैया, ऐसा ही होना चाहिए, साला! बड़ी घमंडी हो गया है। ' 'घमंडी तो है ही, अत्याचार करने में नम्बरी है, साला खुद को दरोगा समझता है। दस लीटर दूध का पैसा डकार गया। माँगने पर लाठी भांजने लगता है। '

पहलवान अखाड़े में उतरा, बुद्धसेन को भी लाया गया। एक-दूसरे से दोनों ने हाथ मिलाया, आँखें मिलाई, हिम्मत मुस्कुराई, ताकत गुर्राई, फिर शुरू हुई हाथापाई। बुद्धसेन पहलवानी के नियमों से अपरिचित ऊपर से मेमोरी डिलीट, वे कुछ भी सोच नहीं पा रहा था। मुकाबला शुरू हुआ, पहलवान ताक में था कि कब यह गर्दन झुकाए तो पतख की तरह पकड़कर मरोड़ दूँ। बुद्धसेन अक्ल हीनता के वाबजूद डरा हुआ था। जबकि बे-अक्ल वाला बहुत निडर होता है। बैल पटरियों के बीच बैठकर जुगाली कर सकता है, पागल रानी तक को गाली दे सकता है, उसे मृत्यु-भय नहीं होता है। पहलवान घूमते हुए नजदीक हुआ, आँखें लाल कीं, बुद्धसेन को लगा, 'मेरा अब राम नाम सत्य निकट है, फिर वह जान बचाने का नया तरीका खोज निकाला। पूरी शक्ति से पहलवान को सामान की तरह उठाकर पाले के बाहर, भीड़ में उछाल दिया। पहलवान के साथ निश्चित ही दो-चार लोग और घायल हुए होंगे। बुद्धसेन की बुद्धि जरा सी डोली, उसे लगा, अब सभी मिलकर उसे मार डालेंगे, वह पूरी क्षमता से वन की तरफ दौड़ पड़ा, दौड़ता रहा जब तक दम ने साथ दिया।

वह कई दिनों तक इधर-उधर भटकते हुए, भाग्यवश घर का रास्ता पकड़कर घर आ गया। धन्यवाद, बुद्धसेन के घर वालो का जो इसे पहचान लिये, वरना कौन किसे पहचानता है। सबको अपनी बुद्धि के आगे दूसरी की बुद्धि फेल लगती है। बुद्धसेन के घर वाले भी कम बुद्धू नही थे, वे उसे पहचान लिए। गाँव में खबर फैली, सब उसे देखने आए। वे किसी को पहचान नहीं पा रहा था। यहाँ तक कि अपने माता-पिता-पत्नी व बच्चों को भी। याददाश्त जाने से सभी दुखी थे किंतु पत्नी संतोषी-माता वर्ग की थी। वह कहती, 'कोई बात नहीं---'लौट के बुद्धू घर को आए' यही बहुत है।

बुद्धसेन की तरह सभी भाग्यशाली नहीं होते, मेरा सहपाठी बुद्ध गनेश को बुद्धूपन का ऐसा रोग लगा कि वह घर छोड़कर साधु बन गया। घटना कुछ ऐसी घटी, वह शादी के तुरंत बाद ससुराल गया। वो भी होली में। सालियों ने उसे ऐसा बुद्धू बनाया की वह मुँह दिखाने के काबिल नहीं रहा। अब वह गली -गली में दाढ़ी बढ़ाये, फ़टी कमीज पहने हुये घूम रहा है। डॉक्टरों ने भी हाथ उठा रखें हैं। उनकी समझ मे बुद्धगणेश की बीमारी लाइलाज है। घर वालों ने उसे मरा समझ लिया उसकी पत्नी, बुद्ध गनेश को गोबर-गनेश मानकर दूसरा पति कर चुकी है।

बात बड़े अचरज की है, लेकिन बुद्धूपन जो कराए सब कम है। अभी कुछ साल पहले लाखों की तादाद में हिंदुस्तानी भक्त भरी बरसात में भाँग का शर्बत पीकर भगवान भोलेनाथ के दर्शन के लिये केदारनाथ गये थे, उनमें से अधिकांश की बुद्धि ऐसी फेल हुई कि अपना बना-बनाया घर भूल गये। आज तक लौट कर आये ही नहीं, धरती के नीचे घर बनाकर रहने लगे। जबरदस्त बस्ती होगी ---हाट, अस्पताल दुकानें सब होंगी---नियम कायदे बनाने-नसाने वाली सरकार भी होगी।

यह भूगर्भ शास्त्रियों का काम है कि उनकी बस्ती का पता लगायें और दुनिया को बताएं। देश के नक्से में भोपाल नाम का बड़ा नामी शहर है, राग भोपाली यहां की खास पहचान है, वहां के कुत्ते भी भोपाली राग में भूकते है, बिल्लियां म्याऊँ-म्याऊँ करती हैं। कुछ बूढ़े किस्म के फालतू लोग बताते है कि किसी कारखाने से रात में ऐसी गैस रिसी के अपनी जद में आये लोगों को बुद्धू बना गयी। बेचारे आज भी उस कारखाने का नाम पता खांसते हुये मिल जायेंगे, बड़ी अजीब खांसी है इनकी, ये तो खांस ही रहें है, इनकी संताने भी सुर लय, यति, गति से खांस रही है। जय हो राग भोपाली की।

भगवान जानें कब किसका माइंड फेल हो जाये, तकदीर की चकरघिन्नी में बड़े-बड़े पिसे हुये चेहरे एक तो लौट कर किसी को मुँह दिखाते ही नहीं, यदि साहस बटोर कर घर पहुँच ही गये तो उन्हें कोई पहचानने वाला नहीं, ऊँची तकदीर के लोग हैं, जिन्हें पहचान लिया जाता है---वरना फुर्सत किसे है, किसी को पहचानने की---जब सब के सब आईने के आगे खड़े हुये खुद को पहचानने में लगे हुये हों। सभी सन्देह के साये में जी रहे हैं, सुबह जगने पर हर एक आदमी पहला सवाल स्वयं से यही करता है---"क्या मैं जिंदा हूँ?"

हाँ। की हाँ सुनने के बाद ही वह जमीन पर पैर रखता है।

चलिये अब मुद्दे की बात पर आता हूँ। थोड़ा बहुत गली भटक जाना तो मानवीय स्वभाव है। जब बड़े-बड़े राजनेता, अभिनेता, फिलॉस्फर, सुर-साधक गायक, सन्त-महंत, दिन के उजाले में रास्ता भटक कर गड्ढे में आधा शरीर उलट देते है, तो चार छै किताब लिखने वाले लेखक की औकात ही क्या? क्षमा याचना की दरख्वास्त के साथ मुद्दे की बात पर बैरंग लौटता हूँ।

अपने देश मे तुकबंदियों की कमी नहीं है। अच्छे खासे मुहावरे को भूखे पण्डित की तरह बर्बाद कर दिये हैं---"लौट के बुद्धू घर को आये में तुक फिट कर दी---जान बची तो लाखों पाये। " अब मुहावरा नेताओं के कुर्ते की आस्तीन जैसा लम्बा हो गया है। राम जाने क्या-क्या छुपा होगा आस्तीन के चोपदार परत में---इस सम्बंध में सुनी सुनाई कहानी कहने का जी कुलबुला रहा है।

कहानी कहिये या गल्प कहिये, यहाँ न कहने वालों की कमी है, न सुनने वालों की कमी है, हर जगह बतख की तरह चोंच खोले ऐसे किस्सागो मिल जायेंगे की आटे की जगह चक्की को उड़ा देगें। बिजूकाओं को घुमा फिरा कर भूत बना देंगे। बहरहाल सच होने का यकीन तो नही फिर भी सुनाये देता हूँ --

एक प्यासा बैल पोखरनुमा तालाब में पानी पीने को गया, एक यंग ब्लड मेढ़क जो किनारे टहल रहा था उसे नागवार गुजरा, उसे लगा कि यह बैल इसी तरह जो रोज पानी पियेगा तो एक रोज तालाब सूख जायेगा और हम सब प्यासे मर जायेंगे, उसने टर्राना शुरू कर दिया, बैल भी आखिर बैल था, वह कब हार मानने वाला, उसे भी क्रोध आ गया। जोर जोर से गरजते हुये जमीन खुरचने लगा, यह देखकर वह मेढ़क डर कर, कांपने लगा। इसी हालत में वह अपनी बिरादरी के बीच जाकर पूरा बाकया कह सुनाया। सभी मेढ़क उसकी गलती पर उसे कोस रहे थे। उसकी प्रेमिका मेढकी ने तो यहाँ तक कह दिया कि इस मूर्ख से मुझे विआह नहीं करना है। बैल को ललकार कर इसने बहुत गलत किया है, अब बैल किसी को जिंदा नहीं छोड़ेगा। "जो हुआ सो हो हुआ, अब कोई बचाव का उपाय सोचना चाहिये। "

एक अत्यंत बूढ़े मेढ़क ने समझाइस दी---'जाओ, मगर इस बार पहले से टर्राना नहीं, हाई जम्प मारकर बैल की पीठ में पहले चढ़ने बाद जोर से टर्राना, हम लोग भी पानी के भीतर से टर्र टर्र करेंगे। जाओ जल्दी करो। बैल पानी मे घुसने न पाये अन्यथा सौ दो सौ मेढ़क खुर के नीचे दबकर मर जायेंगे। " उस मेढ़क ने वैसा ही किया जैसा करने को बोला गया था। वह बैल की पीठ में चढ़ा हुआ टर्रा रहा था---बाकी पानी के भीतर से। बैल डर के मारे पलटा फिर पूँछ उठाकर भाग गया। वह दोबारा पोखर तरफ नहीं जाएगा। इतने मेंढकों के एक साथ टर्राने से बैल तो क्या, सरकार डर जायेगी, राजा डर जाएगा। मेरी अक्ल कहती है, बुद्धूपन की बीमारी थोड़ी बहुत सब को लगती है---देखिये न चुनाव के समय मे कितने मेढ़क टर्र-टर्र करते है, कितने बैल सींग से जमीन खुरचकर दहाड़ते हैं। जनता बेचारी इस दोनो के बीच मे फँसकर बुद्धिआ जाती है और कभी बैल को तो कभी मेढ़क को अपना मुखिया बनाकर पाँच साल के लिये सर में सवार कर लेती है।

समीक्षार्थ पुस्तक भेजने का पता : 97, सुंदर ब्लॉक, शकरपुर विस्तार, नई दिल्ली-110092

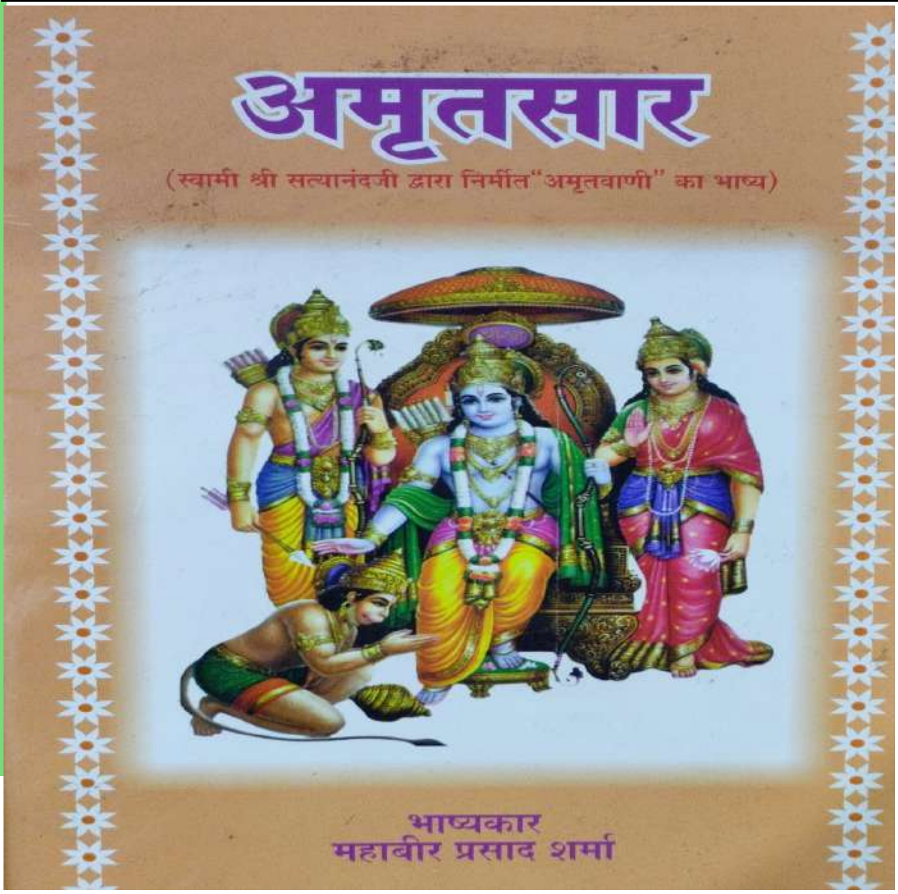

संस्कार जगाने वाली पुस्तक अमृतसार

समीक्षक: श्री कैलाश अग्रवाल "बेगाना"

पुस्तक का नाम : "अमृतसार" (लेखक (भाष्यकार) : श्री महावीर प्रसाद शर्मा, मूल रचना : "अमृतवाणी". मूल रचनाकार : स्वामी भी सत्यानंद जी

स्वामी सत्यानंद जी महाराज सच्चे रामभक थे। उन्होंने 'राम' नाम के माहात्मय के रूप में 'अमृतवाणी' का सृजन किया था। रामायण के सभी पात्रों के चरित्र अति सुन्दर एवं सराहनीय थे उनके गुणगान में अनेक रचनाएँ निकली किंतु केवल 'राम' नाम का गुणगान कर जीवन सफल करने के उद्देश्य से स्वामीजी ने जो अमृतवाणी गायी वह रामभक्तों के लिए रामबाण सिद्ध हुई। अमृतवाणी का पाठ करने वालों का जीवन बदल गया और उच्च संस्कारों से भर गया। स्वामी जी के अनुयायियों की संख्या बढ़ती चली गई क्योंकि इसके पाठ से तनावपूर्ण जीवन से मुक्ति एवं सच्ची शांति मिलने लगी। 'राम' शब्द में ही इतनी शक्ति है कि केवल इस एक शब्द को सच्चे हृदय से स्मरणकर निर्मल सुख शांति की प्राप्ति की जा सकती है। गद्यमय ९४ दोहों से सजी छोटी सी पुस्तिका 'अमृतवाणी' से बरसते अमृत को श्री महावीर प्रसाद जी के अपने हृदय में उतारकर इसके एक-एक शब्द का भावार्थ बताते हुए सरल शब्दों में इसका सार निकालकर पाठकों के समझ यह "अमृतसार" नामक पुस्तक प्रस्तुत की है जिसका पाठकर मनुष्य अधिक लाभान्वित हो सकता है। अर्थ जानकर किया गया पाठ निसंदेह लाभदायक होता है। इस "अमृतसार" की रचना के लिए महावीर प्रसाद जी के परिश्रम एवं योग्यता स्पष्ट परिलक्षित हो रही है। सभी रामभक्तों के लिए यह अमृतसार, पारसमणि सिद्ध हो रही है तथा पाठकों को आत्म साक्षात्कार करने में सहायक सिद्ध हो रही है।

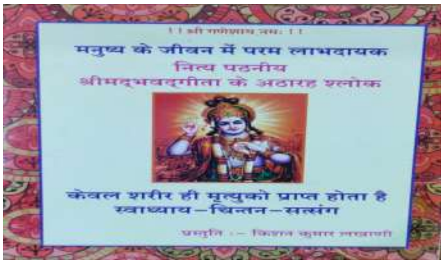

अमृतवाणी के इतने सुंदर भाष्य की जितनी प्रशंसा की जाए उतनी कम है। अमृतवानी की इतनी सटीक व्याख्या शायद अन्य कोई भाष्यकार नहीं कर पाता। इसका मुद्रण भी सराहनीय है। चित्रों का चयन-चित्रण, रंगों एवं कागज का चयन भी प्रशंसनीय है।

समीक्षा : जीवन में कर्त्तव्यपालन को प्रेरित करता एक संग्रहणीय संकलन प्रख्यात संस्कृतिविज्ञ, लेखक श्री युत् किशन कुमार लखाणी द्वारा प्रस्तुत श्रीमद्भगवद्गीता के अट्ठारह श्लोक जीवन में बहुउपयोगी पुस्तक है इसमें गीताजी के प्रत्येक अध्याय का एक सारगर्भित श्लोक लेकर 18 श्लोक का संकलन है। परम पूज्य स्वामी श्रीरामसुखदास जी महाराज का आशीर्वाद व लखाणीजी की प्रस्तुति भी अनुकरणीय व सारगर्भित है।

इस पुस्तक का मुख्य तथ्य एक ही है कि मनुष्य जीवन एक ऐसा दुर्लभ अवसर है जो हमें परमात्मा से मिला सकता है। इसके लिए प्रमुखतः ईश्वर में श्रद्धा, आत्म समर्पण व ईश भक्ति के साथ निष्काम भाव से अपने कर्तव्य का पालन करना है, यही हमारा कर्मयोग' बनायेगा। यह सभी बातें नियमित सत्संग-स्वाध्याय से ही समझ में आती हैं।

हमारा सौभाग्य है कि गीता जैसे गूढ़ रहस्य के सैकड़ों श्लोकों से युक्त महत्वपूर्ण अठारह श्लोक का प्रस्तुति करण व चयन प्रशंसा के योग्य है। श्रीयुत् लखाणी जी का सत्संग कार्य भी अनुकरणीय है। ईश्वर इन्हें इसी प्रकार शुभ कार्यों के लिए प्रेरित करता रहे।

समीक्षक

-राजकुमार घुवालेवाला 'भ्रमर राजस्थानी',

"परिवेश के बोलते प्रतिबिम्ब: कृति- तिनका-तिनका मन"

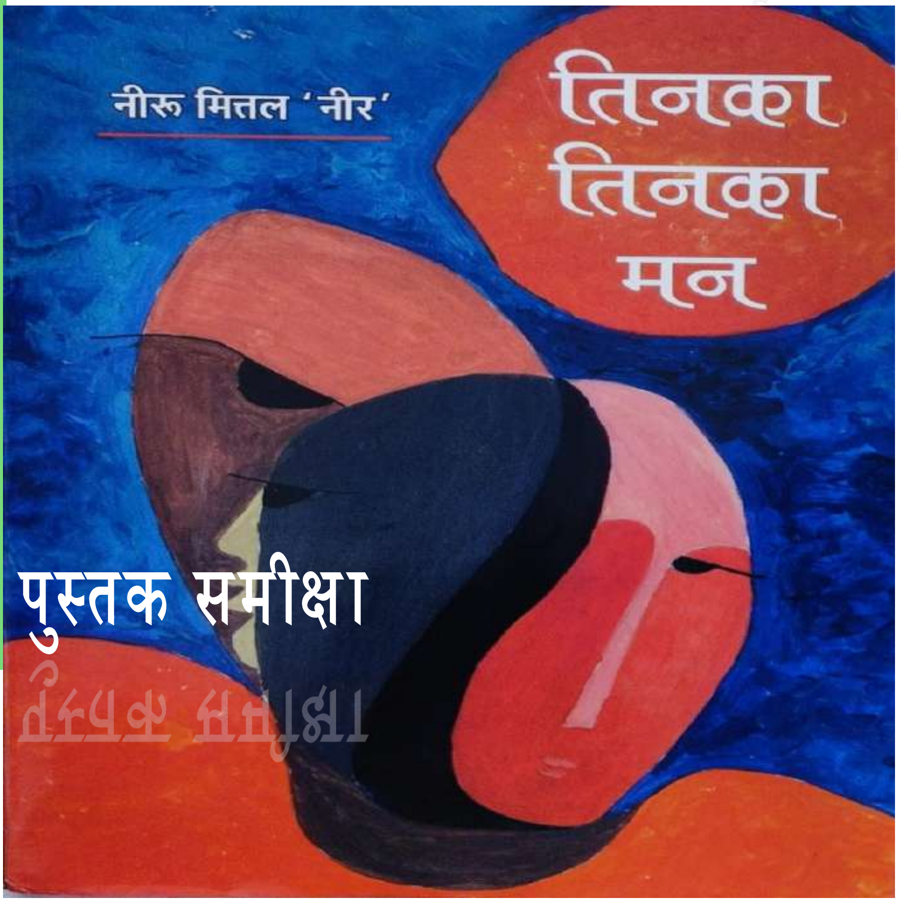

पुस्तक समीक्षा

पुस्तक समीक्षा

समीक्षक - डॉ.ज्ञानप्रकाश 'पीयूष'

पुस्तक का नाम : तिनका-तिनका मन
लेखक : नीरू मित्तल 'नीर'
विधा : लघुकथा
प्रकाशक : बोधि प्रकाशन, जयपुर
प्रथम संस्करण : 2022
पुस्तक मूल्य : ₹ 250/ -
पृष्ठ.120 (जिल्द सहित)

लघुकथाकार नीरू मित्तल 'नीर' की लघुकथा-संग्रह कृति 'तिनका-तिनका मन' पढ़ी। कृति की भूमिका लघुकथा के पुरोधा चर्चित साहित्यकार बलराम अग्रवाल और फ्लैप मैटर आदरणीया मुक्ता एवं उपन्यास के लब्ध -प्रतिष्ठित हस्ताक्षर लाजपतराय गर्ग द्वारा लिखा गया है।

संग्रह में कुल 101 लघुकथाएँ संगृहीत हैं जो भाव सौंदर्य एवं शिल्प सौष्ठव की दृष्टि से उत्कृष्ट हैं। ये लघुकथाएँ सकारात्मक सोच और आशावादी दृष्टिकोण से आप्लावित और सामाजिक यथार्थ के ताने-बाने से बुनी हुई हैं। ये लघुकथाएँ जीवन संघर्ष और मानवीय मूल्यों के बहु-आयामी हितों की पक्षधरता से अनुस्यूत हैं।

विषयों की विविधता के साथ शिल्प की प्रयोगधर्मिता और अभिव्यक्ति की धारदार प्रस्तुति सुधीजनों का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट करती है। इनमें युगबोध की सरसराहट एवं महानगरीय जीवन की अकुलाहट भी सुनाई पड़ती है और ये परिवेश की सच्चाई एवं चिंतन की गहराई से ओतप्रोत हैं।

आर्थिक दृष्टि से कमजोर, असहाय और विपन्न-जनों के प्रति संवेदना के स्वर भी इनमें साफ़ सुनाई पड़ते हैं तथा जवानी की दहलीज की ओर उन्मुख बहकते कदमों की आतुरता के प्रति चिंता के भाव और उनका उचित समाधान खोजते नजरिये भी इनमें नज़र आते हैं। परिस्थितियों की विषमता के बावजूद पारिवारिक जिम्मेदारी की विवेकपूर्ण दृष्टि भी इनमें स्पष्ट परिलक्षित होती है।

आलोच्य कृति की लघुकथाएँ लेखिका की रचना धर्मिता और सृजनात्मक क्षमता का सफल प्रतिनिधित्व करती हैं। सभी लघुकथाएँ जीवन की सच्चाइयों को शिद्दत से उजागर करती हुई विकृतियों का पर्दाफाश करती हैं। खासकर 'चार सवाल', 'यह कैसी आग', 'रोटी', 'पाँच साल की मजबूरी', 'एक माँ की मजबूरी', 'वायरल मौसी', 'अपनी-अपनी भूख', 'परिवार', 'दाना-पानी', 'जीवन का सच' व 'कितनी चीलें' आदि लघुकथाएँ तो पाठकवृन्द की चेतना को झकझोर देती हैं। उनके मन-मस्तिष्क पर गहरा प्रभाव डालती हैं और सोचने को उत्प्रेरित करती हैं।

इन लघुकथाओं का सौंदर्य-बोध संवादों की त्वरा, व्यंजना की वक्रता और मारक अंत की प्रभविष्णुता में सन्निहित है। भाषा सरल, सुबोध और प्रवाहमयी है तथा शैली में सरसता विद्यमान है। कृति का शीर्षक 'तिनका तिनका मन' सर्वथा सार्थक, समीचीन एवं गूढ़ार्थ व्यंजक है। प्रौढ़-परिपक्व और परिष्कृत कृति के लिए नीरू मित्तल 'नीर' बधाई की पात्र हैं। आशा है आगामी कृति इससे भी अधिक प्रौढ़-परिपक्व एवं परिष्कृत होगी। इन्हीं शुभकामनाओं के साथ।

डॉ धनंजय सिंह विशेषांक

धनंजय सिंह...

श्री जोशी जी से मेरी एक शर्त यह भी थी कि मेरी भेल की सैलरी प्रोटेक्ट की जाएगी।

उन्हों ने पैसे के ऊपर पत्रकारिता के महत्व को समझाने का प्रयास किया था तो मैंने प्रश्न कर दिया था कि जनसता से राकेश कोहरवाल और आलोक तोमर को क्यों रुखसत किया गया था? हिन्दी पत्रकारिता में चर्चित पत्रकारों की एक लंबी फहरिश्त है माधव कान्त मिश्रा (पूर्व में मेनका गांधी द्वारा निकाले जाने वाली पत्रिका सूर्या इंडिया के संपादक और फिर किसी साधु आश्रम के महामंडलेश्वर), शीलेश शर्मा (माया, राष्ट्रीय सहारा, दैनिक लोकमत), सुरेश चन्द्र सिन्हा (माया, नवभारत टाइम्स, नई दिल्ली), निशीथ जोशी (राष्ट्रीय सहारा).....

उन्हीं दिनों दिल्ली के एक शातिर अपराधी को गिरफ्तार किया गया था जो काल गर्ल रैकेट में पकड़ा गया था, उसकी डायरी में अखबार के तीन पत्रकारों के नाम मिले थे जो उसकी खबर न छापने की एवज़ में हफ्ता वसूलते थे।

मेरा कहने का आशय मात्र इतना है कि श्री त्रिलोकदीप अपने पूरे पत्रकारिता जीवन में शालीन नैतिक लेखन के पर्याय बने रहे।

यही कारण रहा कि श्री त्रिलोकदीप के सम्मान में पहला विशेषांक केन्द्रित किया गया।

मुझे यह बताते हुए हार्दिक प्रसन्नता हो रही है कि उनके 'सप्ताहिक दिनमान' के कार्यकाल पर केन्द्री पुस्तक "दिनमान~त्रिलोकदीप" को संपादित करने का अवसर मुझे प्राप्त हुआ है।

पुस्तक प्रकाशित हो गई है और शीघ्र ही पाठकों के लिए डिजिटल प्लेटफॉर्म पर बिक्री के लिए उपलब्ध हो जाएगी।

श्री सुरेन्द्र कुमार :

अब कुछ कुछ सुरेन्द्र सुकुमार जी को जानने लगा हूँ। कई-कई विरोधाभासों के बीच एक अजब सी कशिश लिए हुए उनका व्यक्तित्व है जिसको समझना उतना सरल न होगा, जितना कि मान लिया जाता है।

श्री सुरेन्द्र सुकुमार के बारे में मैं पहले ही लिख चुका हूँ, आपके स्मरण के लिए उसका पुनः उल्लेख कर रहा हूँ कि.....श्री सुरेंद्र सुकुमार को कुछ माह पहले, कई दिनों से फेसबुक पर पढ़ रहा था। कुछ हल्का-फुल्का रोचक था तो कुछ बहुत ही गंभीर। कुछ तो नित्तान्त सतही जिसे देखते ही भाग खड़े होने का मन करता। किन्तु, इन सब के बीच कोई एक ऐसा तन्तु भी था जो मुझे उनसे जुड़े रहने को मजबूर भी करता था। और वह तन्तु, था नहीं बल्कि है, उनका लेखन विधान, शिल्प।

सुरेन्द्र सुकुमार लिखते नियमित हैं। उन्हों ने गुजरे समय के अपने कवि सम्मेलनों का जिक्र किया तो मुझे सोचना पड़ा कि आखिर यह सुरेंद्र सुकुमार है कौन जिसे मैं सुन नहीं पाया था क्योंकि अस्सी के दशक में राजधानी के हर कवि सम्मेलन को रात–रात जाग कर सुना था पर उसमें तो कोई सुरेंद्र सुकुमार न था।

अस्सी का दौर हमारे स्कूल–कॉलेज का था और नव लेखन का भी।

1977 तक हम फुल पैंट कम ही पहनते थे। इसी साल दसवीं पास की थी। 1979 में बारहवीं पूरी की, फिर दिल्ली यूनिवर्सिटी।

मजाल है हमसे कोई कवि सम्मेलन बच जाय।

रामलीला मैदान पर गोपाल प्रसाद व्यास का कवि सम्मेलन हो या फिर दरियागंज की श्री महावीर वाटिका का आयोजन हम अपने दोस्तों के साथ इन आयोजनों में पूरी पूरी रात बैठे रहते।

वीरेंद्र मिश्र, बालकवि बैरागी, रवीन्द्र जैन, शैल चतुर्वेदी, हुल्लड़, काका हाथरसी, हरि ओम पवार, सोलंकी, सुरेन्द्र शर्मा, अशोक चक्रधर, नीरज, अवस्थी......एक फहरिश्त थी कवियों की, अब तो बस यादें हैं।

लेखन की शुरुआत हो चली थी।

लक्ष्मी नारायण लाल, जैनेंद्र जैन, भवानी प्रसाद मिश्र, यशपाल जैन, संतोषानंद के साक्षात्कार पर परिचर्चा नवभारत टाइम्स में प्रकाशित हो चुकी थी।

कवि संतोषानंद से घनिष्ठता बढ़ गई थी। गाहे ब गाहे उनके मिंटो रोड के सरकारी निवास पर जाना होता था।

वे दिल्ली सरकार के एक विद्यालय में अध्यापन करते थे और मिंटो रोड पर रहते थे।अपनी पत्नी को "राजू बेटा" कह कर पुकारते थे।

दिल्ली में जिस कवि सम्मेलन में वे जाते मैं उनके साथ रहता।

एक ऐसा ही आयोजन साप्ताहिक हिंदुस्तान का मंडी हाउस के एक सभागार में था।

वहां रोचक किस्सा हुआ।

आदरणीय नीरज जी कविता पाठ के लिए आए।

उनका एक शेर था जिसे वे हर कवि सम्मेलन में अवश्य पढ़ते थे।

इस आयोजन में भी उन्हों ने पढ़ा "न पीने का सलीका, न पिलाने का शऊर ऐसे भी लोग चले आए हैं मयखाने में"

हुआ यह कि अंतिम पंक्ति कहते– कहते वे संतोषानंद की तरफ घूम गए।

संतोषानंद को लगा कि उन्हों ने उनके ऊपर व्यंग्य किया है। वे वहीं झगड़ने लगे।

उन्हें बड़ी मुश्किल से मनाया जा सका।

कवि सम्मेलन फिर शुरू हुआ तो नीरज जी के बाद रमानाथ अवस्थी जी को बुलाया गया। उन्हों ने नीरज जी की सारी कविता को ही खारिज करते हुए कहा कि "हिंदी कवि सम्मेलन अब शुरू होता है।" उन्हों ने "चाहे मसान का हो चाहे मकान का हो धुएं का रंग एक है।" गीत पढ़ा।

यहीं से मुझे मंचीय कवियों की गुटबाजी का पता चला।

ऐसा ही एक आयोजन दूरदर्शन के गोल्डन जुबली का भी था।

कवि सम्मेलन का संचालन गीतकार वीरेंद्र मिश्र कर रहे थे और आयोजन की अध्यक्षता हरिवंश राय बच्चन जी कर रहे थे।

कवि सम्मेलन के संचालक वीरेंद्र मिश्र जी ने अपने लंबे और उबाऊ गीत "नदी के बंध कटेंगे तो नदी रोएगी।" को पढ़ा और माइक बच्चन जी को दे दिया। बच्चन जी भी ऊब गए थे उन्हों ने झट कार्यक्रम समाप्त होने की घोषणा कर दी, लोग अपनी सीटों से उठने लगे। मुझ से न रहा गया। मैं अगली सीट पर ही था, मैंने ऊंचे स्वर में कहा कि जब तक कवि सम्मेलन के अध्यक्ष कविता नहीं सुनाएंगे कार्यक्रम संपन्न नहीं हो सकता। कार्यक्रम का दूरदर्शन पर सीधा प्रसारण चल रहा था, कैमरा मेरे ऊपर फोकस था।

लोग सीटों पर ठहर गए।

बच्चन जी ने फिर माइक ले लिया तो मेरा हौसला बढ़ा।

मैं ने कहा बिना मधुशाला के पाठ के कवि सम्मेलन समाप्त नहीं होगा।

बच्चन जी मुस्कुराए और कहा "मुझ से मधुशाला सुननी होती तो 1933 में सुनते।"

मैं ने तुरंत उत्तर दिया "इसमें मेरा क्या दोष, तब मैं पैदा ही नहीं हुआ था।" बहुत जोर का ठहाका लगा कर फिर उन्हों ने सस्वर मधुशाला का पाठ किया।

हां तो मैं कह रहा था कि मैं सुरेंद्र सुकुमार कवि से अनभिज्ञ रह गया था।

फिर एक दिन उनके धर्मवीर भारती और कमलेश्वर पर संक्षिप्त संस्मरण पढ़े तो जिज्ञासा और बढ़ी कि यह सुरेंद्र कुमार कौन है?

इसी जिज्ञासा में मैंने कादम्बिनी के पूर्व मित्र कवि धनंजय सिंह से बात की तो उन्हों ने हंस कर उनके बारे में बताया। राम अरोरा और विनोद क्वात्रा से भी चर्चा की। विनोद क्वात्रा जी ने बताया कि वह तो "हमारे एटा जिले का ही है और फक्कड़ तबीयत इंसान है। इसकी एक कहानी सारिका में छपी थी। कहानी का नाम अगिहाने है और यह कहानी बहुत चर्चित हुई थी।"

इतना सुनने के बाद सुरेंद्र सुकुमार में मेरी जिज्ञासा और बढ़ गई।

मैंने सुरेंद्र सुकुमार से फोन नंबर मांगा और बात की। पता चला कि वे अलीगढ़ रहते हैं।

अब सुरेंद्र से मिलने की मेरी बेचैनी और बढ़ गई।

मैंने तुरंत 22 फरवरी का दिल्ली से अलीगढ़ का लखनऊ शताब्दी का टिकट कटाया और उन्हें बताया कि में 22 फरवरी की प्रातः अलीगढ़ पहुंच रहा हूं।

उन्हों ने कहा आएं, मैं घर पर ही रहता हूं।

यह सब हो ही चुका था कि एक सुबह सारिका वाले कथाकार रमेश बत्रा जी की पत्नी जया का फोन आया, उनसे जिक्र किया कि अलीगढ़ सुरेंद्र सुकुमार से मिलने जा रहा हूं।

वे जिद्द करने लगीं कि वे भी अलीगढ़ चलेंगी।

"मैं भी सुरेंद्र से मिलूंगी। उसने मुझ से कहा था कि उसकी अब तक इक्यावन प्रेमिकाएं हो चुकी हैं। वो हमारे यहां लारेंस रोड वाले घर भी आया करता था। और रमेश ने मुझे जिंदगी का पहला झापड़ भी उसकी वजह से ही मारा था। मैं झन्ना कर रह गई थी।" जया ने यह भी बताया कि सुरेंद्र की एक बेटी है जो गुरुग्राम में रहती है।

टिकट इत्यादि के चलते जया का मेरे साथ अलीगढ़ जाना संभव न हो पाया पर उनसे मिली जानकारी ने आग में घी का काम किया।

अब मैं इस सुरेंद्र सुकुमार से हर हालत में मिलना चाहता था।

फिर फरवरी में एक दिन ऐसा आया कि मैं सुबह-सुबह नई डिल्ले से शताब्दी ट्रेन पकड़ कर अलीगढ़ पहुँच गया।

चूंकि, सुरेन्द्र जी को बता कर यह यात्रा कर रहा था सो ट्रेन में सफर के दौरान कई बार उनका फोन मेरे पास आया

उस दिन शताब्दी कुछ देर से, लगभग सवा नौ बजे सुबह उसने मुझे अलीगढ़ स्टेशन पर उतारा।

सुरेन्द्र सुकुमार अलीगढ़ का अपना पुराना आवास बेच कर अब ओज़ोन सिटी के रेसिडेंशियल कॉलोनी में शिफ्ट कर गए हैं। ओज़ोन सिटी, अलीगढ़ रेलवे स्टेशन से लगभग 7 किलो मीटर दूर है।

स्टेशन से बाहर आते ही मुझे चाइनीज़ बैटरी रिक्शा मिल गया। उसने दो सौ रुपए में मुझे वहाँ पहुंचाने की बात की किन्तु, गंतव्य पर पहुँच कर ढाई सौ रुपये लेकर माना।

जाड़े की उस सुबह सुरेन्द्र सुकुमार अपने मकान के बाहर ही टहलते हुए मिल गए।

यह मेरी उनसे पहली मुलाक़ात थी, सो फेसबुक पर उनकी फोटो ही पहचान सिद्ध करने में सहायक हुई।

अब हम उनके कमरे में थे। यह तीन कमरे का नीचे का फ्लैट है। जो कि अकेले सुकुमार के लिए पर्याप्त है।

उनकी पत्नी सुधा का देहावसान कुछ समय पहले हो चुका है। उनकी एक ही पुत्री हैं जो अपने पति के साथ गुरुग्राम में रहती हैं।

नौकर चाय बना कर दे गया और हमारा बातचीत का सिलसिला शुरू हो गया। मैं अपने साथ एक छोटा ट्रॉली बैग ले गया था।

हमारे यहाँ, पूर्वी उत्तर प्रदेश में रिवाज है, श्रद्धेय के यहाँ पहली बार जा रहे हैं तो.....सो मैं, दिल्ली से मिठाई लेकर पहुंचा था। सुकुमार ने मुझे पहले ही बता दिया था कि उन्हें मिठाई से गुरेज नहीं है।

सुरेन्द्र सुकुमार की चाल सहज और सामान्य नहीं थी, उन्हों ने स्वयं बताया कि कुछ दिनों पहले उन्हें दायीं तरफ पक्षाघात पड़ा था।

अब वे अपना अधिकांश काम बाएँ हाथ से ही करते हैं।

यहाँ तक कि फेसबुक पर भी केवल अंगूठे से ही टाइप करते हैं।

हम ड्राइंग रूम से निकल कर दूसरे कमरे में आ गए।

यहाँ बड़ी सी इस्पाती अलमारी में उनकी पुरानी पुस्तकें इत्यादि पड़ी थीं।

सुरेन्द्र अधिक समय बैठ नहीं सकते हैं सो, वे बिस्तर पर लेट गए।

मैं उन्हें पुरानी पुस्तकों का बंडल पकड़ाता जाता और उनमें से वे कुछ को चिहनितककार अलग रखते जाते।

काफी समय लगा विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में छपी उनकी कहानियाँ अब एकत्रित हो गई थीं।

इसी दरम्यान उन्हों ने नौकर को खाना बनाने को कह दिया था।

उड़द की दाल, आलू-गोभी की सब्जी। लाजवाब।

मेरे दिल्ली चलाने से पहले उन्हों ने पूछ लिया था।

'कुछ लेते हो?' मैंने इंकार किया।

'अच्छा तो नॉन-वेज बनवाएँ?' मैंने उससे भी इंकार किया तो यही खाना उन्हों ने भी मजबूरी में खाया।

सुरेन्द्र 69 वर्ष के हो गए हैं।

रोज नॉन-वेज और शाम को तीन-चार पैग अच्छी शराब आज भी उनकी रुचि में सर्वोपरि है।

उनके अनुसार रात को सात-साढ़े सात भोजन करने के बाद तीन पैग लेकर वे सो जाते हैं। उनकी सुबह साढ़े तीन-चार बजे हो जाती है।

दोपहर का भोजन करने के बाद एक बार फिर हम उनकी पुरानी रचनाओं में उलझ गए।

उनकी सारी प्रकाशित कृतियों को जो कि धर्मयुग, सारिका, हंस, रविवार इत्यादि में थीं मैंने सहेज कर ट्रॉली बैग में रख लिया। और लगभग ढाई बजे उनका नौकर मुझे मोटर साइकिल से ओज़ोन सिटी के बाहर तक छोड़ आए।

अलीगढ़ से दिल्ली का ट्रेन आरक्षण मैंने नहीं करवाया था और सोचा था बस से वापस आ जाऊंगा, यही मेरी भूल सिद्ध हुई।

खैर, उस रात नौ बजे कष्टकारी बस यात्रा के बाद मैं दिल्ली पहुंचा।

इस धर्म यात्रा की वापसी के बाद से श्री सुरेन्द्र सुकुमार से मेरा संबंध अब प्रतिदिन का हो गया है। प्रातः साढ़े तीन बजे ही उनका शुभकामना संदेश मुझे प्राप्त हो जाता है। इस क्रम में सर्व श्री त्रिलोकदीप जी, डॉ धनंजय सिंह जी, श्रीयुत श्री राम अरोड़ा जी भी शामिल हैं।

फेसबुक पर उनके आलेखों/स्मृतियों को पढ़ना उन्हें एक स्थान पर संकलित करना अब रुचि का ही विषय नहीं रह गया है बल्कि एक पवित्र आश्वासन से बंधी ज़िम्मेदारी भी बन गया है।

सुरेन्द्र जी की तमाम प्रकाशित कहानियों को तीन संकलनों में संपादित करने का जिम्मा है मेरे ऊपर।

इस दिशा में काम शुरू हो गया है। उनकी कुल जमा 38 कहानियों में से 35 कहानियाँ प्राप्त

हो गई हैं। जो नहीं मिली हैं उनमें चुटकी भर सुख, कोका बुआ और छोटी मछली बड़ी मछली हैं।

इन्हें तलाशने का प्रयास जारी है।

इधर, मई अंतिम सप्ताह में सुरेंद्र सुकुमार जी से फोन पर बात हो रही थी तो उन्हों ने आग्रहपूर्वक कहा 'आ क्यों नहीं जाते?'

उनके इस आग्रह को टालने का साहस न हुआ।

दस दिन बाद, 4 जून का ट्रेन से टिकट उपलब्ध हुआ।

जाने के लिए, नीलांचल एक्सप्रेस से और वापसी उसी दिन कानपुर–आनंदविहार एक्सप्रेस से।

3 जून का दोपहर उन्हों ने फोन कर के आने का कार्यक्रम पूछा तो मैंने 4 जून को आने की बात बता दी।

सुरेंद्र जी से बात करने के एक घंटे बाद रेल विभाग से सूचना आई कि ओडिशा में ट्रेन दुर्घटना के चलते, 4 जून की नीलांचल निरस्त कर दी गई है।

अब, अलीगढ़ से आनंदविहार का रिजर्वेशन तो था पर दिल्ली से जाने का आरक्षण नहीं था।

तुरंत 'तत्काल' के विकल्प को देखते हुए, सीमांचल एक्सप्रेस का रिजर्वेशन कराया।

सुबह घर से निकला तो दिल्ली में रिमझिम बरसात थी।

ट्रेन निश्चित समय 8.10 पर चल पड़ी।

ट्रेन में बैठते ही रेलवे से एसएमएस मिला कि नीलांचल बहाल कर दी गई है, पर अब क्या फायदा होता।

अलीगढ़ की मेरी यात्रा प्रारम्भ हो चुकी थी।

10.10 पर मैं अलीगढ़ था।

वहीं रेलवे का फिर एसएमएस मिला कि नीलांचल आनंदविहार से अपराहन 12.00 बजे चलेगी।

मैंने स्टेशन से ओज़ोन सिटी केलिए बैट्री रिक्शा किया।

वह 150 रुपये पर सहमत हुआ, यह बात अलग है कि दो सौ देने के बाद उसने मुझे 20 रुपये ही वापस किए। यह रिक्शा पिछली बार से सस्ता पड़ा।

10.50 पर मैं उनके साथ मौजूद था। यात्रा के दौरान सुकुमार जी दो बार मेरी लोकेशन ले चुके थे।

मुझे पता नहीं है कि मैंने आप को पहले बताया है अथवा नहीं, सुरेन्द्र सुकुमार बहु प्रतिभा के धनी हैं। उत्तम कथाकार जिनकी हर कहानी सारिका, धर्मयुग, रविवार पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रही।

उत्तम, व्यंग्य के स्थापित मंचीय कवि।

उत्तम आरएसएस कार्यकर्ता, उत्तम चरम वाम पंथी यहाँ तक की नक्सल समर्थक, उत्तम सनातनी, पंच मकारी, उत्तम ओशोवादी, ऋषि परंपरा में संतों की सोहबत में उत्तम सत्य के शोधार्थी, चिलम, गाँजा, अफीम, मद्य तमाम हलाहल को कंठ में पहुँचा कर अमृत में ढाल देने वाले, और इस वय में वास्को डिगामा की तरह प्रेम की तलाश में निकल पड़ने वाले सुकुमार में जीवन के प्रति उत्कट मोह है।

हालांकि, कुछ समय पहले उनपर दायीं तरफ पक्षाघात का हमला हुआ था किन्तु उसको धता बताते हुए अभी भी उनका स्वच्छंद जीवन जारी है।

अभी उनकी आयु मात्र 69 वर्ष की ही है किन्तु अभिलाशाएँ किशोरावस्था की दहलीज पर कसमसाती हैं।

मुलाक़ात बहुत आत्मीय रही। उनका, चरण स्पर्श करके अभिनंदन किया।

उनके बहुत सारे पुराने चित्रों को मोबाइल पर लिया।

उन्हों ने अपने घर पर काम करने वाले अनुज को बुला लिया, उसने बहुत अच्छी चाय बनाई।

हम फिर बातचीत में उलझ गए।

एक बजे के लगभग उन्हों ने दोपहर का खाना बनाने केलिए फिर अनुज को फोन लगाया। वह अपने घर गया ही नहीं था, बगल के कमरे में ही सो रहा था। उठ कर आया तो सुरेन्द्र जी ने उसे खाना बनाने केलिए कहा।

धुली हुई उरद की दाल और बैंगन का भर्ता उसपर (हथपोई) जिसे पश्चिमी उत्तर प्रदेश में पानी रोटी कहते हैं, अनुज ने बनाई।

बहुत ही स्वादिष्ट भोजन के उपरांत हम फिर बातचीत में लग गए।

मैंने उन्हें अपना उपन्यास मौत का सन्नाटा प्रदान किया।

सौभाग्य प्रकाशन से गत माह प्रकाशित उपन्यास 'मुआवजा' - लेखक श्री रवीन्द्र कान्त त्यागी, कथा संग्रह 'मेरा कोना' लेखिका सुश्री इन्दु सिन्हा 'इन्दु', कविता संग्रह 'जीवन उल्लास' कवयित्री सुश्री डॉक्टर सत्या सिंह की प्रतियाँ भी उन्हें पढ़ने के लिए प्रदान कीं।

सुरेंद्र सुकुमार के समस्त कथा संसार को तीन खंडों तथा अनुभवों की शृंखला आत्मकथ्य शैली में सौभाग्य प्रकाशन शीघ्र पाठकों तक ले कर आएगा। कुछ कहानियाँ टाइप हो गई हैं, कुछ पर काम चल रहा है।

इसी दरम्यान उनकी एक कहाँ 'पागल' और मिली है।

सुरेन्द्र जी के कथा और गद्य साहित्य का संकलन चल ही रहा था कि एक दिन उन्होंने कहा, क्यों नहीं तुम मेरा पद्य भी छाप देते?

मेरे और हिन्दी जगत के पाठकों के लिए तो यह हर्ष और प्रसन्नता भरा सुखद निर्देश ही था।

इस क्षेत्र में भी काम शुरू हो गया है। सुरेन्द्र जी अब अपनी काव्य रचनाओं को संकलित कर समय-समय पर भेज रहे हैं जिसका प्रकाशन भी शीघ्र ही होगा।

श्री सुरेन्द्र सुकुमार दीर्घजीवी हों, स्वस्थ रहें ऐसी शुभकामना है।

डॉ धनंजय सिंह :

डॉ धनंजय सिंह जी से एक तरफा परिचय तो बहुत पुराना है। दूरदर्शन में उनके काव्य पाठ ने मुग्ध कर लिया था। पर व्यक्तिगत परिचय माया पत्रिका के दिल्ली कार्यालय में आने के बाद हुआ।

उन दिनों माया, मनोहर कहानियाँ, मनोरमा और प्रोब इंडिया का कार्यालय रोहित हाउस, टोल्स्तोय मार्ग पर हुआ करता था। हम लोग अक्सर चाय पीने, समोसे खाने या तो हिंदुस्तान टाइम्स की कैंटीन में जाते थे या फिर जहां आज कल अन्तरिक्ष हाउस का रिवोलविंग रेस्तरां है, यह प्लॉट खाली पड़ा था जिस पर एक लोकप्रिय ढाबा बना हुआ था, वहाँ जाया करते थे।

साप्ताहिक हिंदुस्तान के लिए बदस्तूर लिख रहा था, संपादिका शीला झुनझुनवाला इस युवक से बहुत प्रभावित थीं। वहाँ की लाइब्रेरी के उपयोग के लिए उन्हों ने एक चिट्ठी गब्बर सिंह रावत से टाइप करवा कर मुझे दे दी थी।

साप्ताहिक हिंदुस्तान में मैं सीधे शीला जी के कमरे में ही जाता था। बाहर निकलने पर हिमांशु जोशी जी, शुभा वर्मा जी से नमस्ते होती थे, शायद मयूरी भारद्वाज साप्ताहिक हिंदुस्तान या कादंबिनी में हुआ करती थीं। एक सुरेश तिवारी भी थे प्रूफ रीडर।

कादंबिनी जाते थे तो चंद्रिकेश जी, डॉ धनजय सिंह जी और सुरेश नीरव जी के दर्शन हुआ करते थे।

दैनिक हिंदुस्तान में श्री विजय किशोर मानव, दिनेश तिवारी और विश्राम वाचस्पति का साथ रहता था।

इनके अतिरिक्त हिंदुस्तान टाइम्स जर्नलिस्ट एसोसिएशन के पदाधिकारी सिन्हा (फोटो जर्नलिस्ट), श्री मुद्गल (प्रसार विभाग) और चाँद जोशी जी का सान्निध्य मिलता था। क्रिएटिव आई नाम से फोटो फीचर एजेंसी चलाने वाले चावला जी और उनके सुपुत्र राजीव तथा आगे चलकर मेरे सहयोगी बने और इंडियन एक्स्प्रेस के फोटो एडिटर रहे रवि बत्रा से भी मुलाक़ात होती थी। एक और फोटोग्राफर सुनील सिन्हा भी थे।

हिंदुस्तान टाइम्स बिल्डिंग जाने का मतलब होता था कि देश भर के लब्ध-प्रतिष्ठ रचनाकारों से आप को रू-ब-रू होने का अवसर मिल जाता था। डॉ लक्ष्मी नारायण लाल, अमृता प्रीतम, संतोषानन्द, इनसे अतिरिक्त मेरी मुलाक़ात और बाद में मित्रता यशस्वी कथाकार रंजन ज़ैदी से यहीं हुई।

माया पत्रिका के दिल्ली कार्यालय से जुड़ने से पहले, **1983** के दौरान मैंने थोड़े समय के लिए मैंने स्वतंत्र लेखन या फ्री लांसिंग भी की थी। उसी दौरान मैं दिल्ली विश्वविद्यालय से एमए भी कर रहा था।

अपने आलेख देने के लिए और संपादकों से मिलने के लिए पत्र-पत्रिकाओं के कार्यालयों में आना-जाना होता था।

इसी दौरान कई नामवर, नामीचीन, धुरंधर व्यक्तित्वों से मिलना उनसे संवाद का अवसर प्राप्त होता था।

उस काल के कुछ नाम जो स्मृति पटल पर अंकित हैं आपसे साझा कर रहा हूँ। शायद आपकी स्मृतियों में भी ज्वार-भाटा आ जाए।

यह वह दौर था जब इलेक्ट्रोनिक मीडिया था ही नहीं। माया उन दिनों की प्रबल समाचार पत्रिका हुआ करती थी। उसमें प्रकाशित हर रपट को सभी राजनीतिज्ञ बड़े गौर से पढ़ा करते थे। इंडिया टुडे का केवल अङ्ग्रेज़ी संस्करण ही प्रकाशित हुआ करता था।

हिन्दी समाचार पत्रिकाओं में ले-दे कर साप्ताहिक दिनमान, माया, रविवार, सूर्या इंडिया और भू-भारती ही थीं। बिक्री के

हिसाब से माया सर्वाधिक (3 लाख से अधिक प्रतियाँ) , फिर रविवार और दिनमान का नंबर आया करता था।

माया में दिल्ली कार्यालय प्रमुख स्वर्गीय भूपेन्द्र कुमार स्नेही (अब किसी दिवंगत के नाम के पूर्व स्वर्गीय नहीं लिखूंगा क्योंकि अधिकांश नाम उसी श्रेणी में चले गए हैं) हुआ करते थे। राय गणेश चन्द्र, सुरेश चन्द्र सिन्हा, शीलेश शर्मा, राम अरोरा फिर मैं। मेरे बाद तीन युवतियों की और नियुक्ति हुई थी। जिनमें से एक, प्रदीप पंत की रिश्तेदार कोई अनीता पांडे थीं। दूसरी खूबसूरत युयावती जैस्मिन सूरी थी जो दूरदर्शन के दूसरे चैनल ‘दिल्ली मेट्रो’ में विनोद दुआ के साथ एंकरिंग कर रही थी। जाने किस व्यक्तिगत कारणों से जैस्मिन को आत्म हत्या का कदम उठा पड़ गया था। तीसरी युवती सुविख्यात पत्रकार सर्जना शर्मा थीं। वात्सल्यमयी उमा पंत मित्रा प्रकाशन की महिलाओं की पत्रिका ‘मनोरमा’ को दिल्ली से देखा करती थीं। यहीं पर दिनमान के राम सेवक सिंह यादव की चुलबुली पत्नी सुश्री नीलम सिंह भी आया करती थीं। वो मुझे बहुत प्यार और स्नेह से देखा करती थीं। और सब से ऊंचे स्वर में कहा करती थीं कि इस लड़के का विवाह मैं करवाऊँगी। मैं फिल्म नहीं देखा करता था, अंतर्मुखी था, लड़कियों से बात तक नहीं किया करता था। एक बार भूपेंद्र कुमार स्नेही ने मुझे अपने केबिन में बुलाया। सिगरेट सुलगा कर अपनी मध्यमा उंगली के नीचे फंसा ली और केबिन के साथ लगी खिड़की पर पैर ऊंचा कर के रख लिया और बोले ‘सुधेन्दु! तुम आरएसएस से हो?’ मैंने कहा नहीं। ‘तो हिन्दू महा सभा से हो?’ उन्हों ने किसी हिन्दी फिल्म के खलनायक की भांति पूछा। मैंने उत्तर दिया कि, नहीं मैं हिन्दू महासभा से भी नहीं हूँ। पर मैं आश्चर्य में था कि भूपेंद्र जी यह सब पूछ क्यों रहे हैं। उन्हों ने सस्पेंस ज़्यादा देर नहीं रहने दिया खुद ही बोले, तुम्हारी हिन्दी इतनी शुद्ध क्यों है? मैंने छूटते ही कहा, क्योंकि मैं इलाहाबाद से हूँ और मैंने हिन्दी साहित्य ग्यारह-बारह साल से ही पढ़ डाला है और अभी भी पढ़ ही रहा हूँ। फिर एक अजब सा प्रश्न उन्हों ने मुझ से किया जिसका जवाब मैं आज तक नहीं सोच पाया हूँ, उनका प्रश्न था ‘तुम्हारी कोई गर्ल फ्रेंड नहीं है? तुम्हारा इस ऑफिस में कोई फोन नहीं आता है? तुम किसी लड़की से बात नहीं करते हो?’ उनके इस प्रश्न पर मैं निरुत्तर था। अनीता पांडे, जैस्मिन सूरी, सर्जना से ऑफिस के दौरान मैंने शायद कभी बात ही नहीं की थी।

माया में ही मेरा परिचय डॉ शेरजंग गर्ग, ब्रज राज तिवारी ‘अधीर’ जी से हुआ। माया में आने वालों में सुधीर सक्सेना और प्रदीप पंत भी थे। डॉ धनंजय जी से मेरा स्नेहवत आत्मीय परिचय राम अरोरा जी के साथ हुआ था। उस दौरान का संबंध आज तक बना हुआ है यह ईश्वर का प्रसाद है। भेल में जब कभी हिन्दी आयोजनों का अवसर प्राप्त हुआ धनंजय जी उसमें बराबर निमंत्रित होते रहे और शामिल भी होते रहे। धनंजय जी मितभाषी किन्तु धीर-गंभीर व्यक्तित्व का नाम है। नवगीतकार के रूप में आज हिन्दी साहित्य में उनकी विशिष्ट पहचान है। ‘अमर भारती’ साहित्यिक संस्था के तहत आज भी वे नवोदित रचनाकारों के मध्य मार्ग दर्शन के लिए न केवल उपलब्ध ही हैं बल्कि नवोदित प्रतिभाओं की रचनाओं, शिल्प और विन्यास पर उनकी निगाह बनी रहती है।

डॉ धनंजय सिंह ने गाजियाबाद में अपना दशकों पुराना आवास बदल लिया है। नए घर में गृह-प्रवेश की उन्हें अशेष शुभकामनाएँ।

संपर्क भाषा भारती परिवार उन्हें यश और कीर्ति मिले यह शुभकामना संप्रेषित करता है....

किसी भी अवांछित त्रुटि के लिए कृपया क्षमा कीजिएगा।

अनुपम गीतों के रचनाकार डॉ– धनंजय सिंह

प्रवीण कुमार

यह बात करीब तीन दशक पुरानी है। मैं सेठ मुकुंद लाल इंटर कॉलेज में बारहवीं का छात्र् था। विद्यालय में एक शिक्षक थे श्री ब्रजेश भट्ट। भट्ट साहब गणित पढ़ाते थे और मैं जीव विज्ञान का छात्र् था। यानी वह मुझे नहीं पढ़ाते थे।

एक दिन विद्यालय के एक सांस्।तिक कार्यक्रम में मैंने भट्ट साहब को गीत गाते हुए सुना। मुझे उनका गीत सुनकर एक सुखद अहसास हुआ। उस दिन मुझे मालूम चला कि भट्ट साहब एक अच्छे गीतकार हैं।

बस, उस दिन के बाद मेरे मन में न जाने क्या हलचल हुई, मैं भी अपनी डायरी में अपने जज्बात को उकेरने लगा। इसी दौरान विद्यालय में एक कविता प्रतियोगिता का आयोजन हुआ। भट्ट साहब निर्णायक मंडल के सदस्य थे। मैंने यूँ ही अपनी डायरी से कुछ सुना दिया। प्रतियोगिता के अंत में जब परिणाम की घोषणा की गई तो मेरे आश्चर्य का ठिकाना न रहा। मुझे प्रथम स्थान प्रदान किया गया। भट्ट साहब ने मेरी पीठ

थपथपाई। इस वाकये के बाद मेरी कविता व भट्ट साहब में दिलचस्पी बढ़ने लगी। अब मैं अपना लिखा उन्हें दिखाने लगा। वह संशोधन करने के साथ–साथ मेरा उत्साह बढ़ाते।

अगले साल मैंने महानंद मिशन कॉलेज में प्रवेश ले लिया। यहाँ भी मैं पढ़ाई तो जीव विज्ञान की ही कर रहा था लेकिन मेरी रुचि सांस्।तिक–साहित्यिक कार्यक्रमों में बढ़ रही थी। धीरे–धीरे मैं उनमें भागीदारी करने लगा।

एक दिन जब मैं अपनी कुछ नई कविताओं के संपादन के लिए भट्ट साहब से मिला तो कविताएँ पढ़ने के बाद वह मुस्कुराने लगे और बोले–अब तुम्हें मुझ से बेहतर गुरुओं की जरूरत है। मैं कुछ नहीं समझ पा रहा था, क्योंकि उनके अलावा मैं किसी और को नहीं जानता–पहचानता था। उन्होंने तुरंत अपना स्कूटर बाहर निकाला और मुझे साथ लेकर डॉ– धनंजय सिंह के विवेकानंद नगर स्थित घर पर ले गए। वहाँ उन्होंने डॉ– धनंजय सिंह व उनकी धर्म पत्नी श्रीमती मधु सिंह से मेरा

परिचय कराते हुए कहा–यह लड़का कुछ लिखता–पढ़ता है। इसे आप के मार्गदर्शन की आवश्यकता है। मैं विनत भाव से तीनों को देख–सुन रहा था। डॉ– धनंजय सिंह ने बड़े स्नेह से मुझे देखा और बोले यह तो बहुत अच्छी बात है। उन्होंने मेरी एक–दो कविताएँ पढ़ीं और बोले–मौलिक भाव हैं। मधु जी ने बड़े आत्मीय भाव से चाय पिलाई। बस, वह दिन था और आज का दिन है—— ढ़ाई दशक से धनंजय जी व मधु जी का स्नेह–आशीर्वाद अनवरत रूप से मुझे मिल रहा है। स्नेह–आशीष की इस यात्र में कई खास लोगों से मिलने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। इधर कॉलेज में कला–साहित्य में दिलचस्पी रखने वाले छात्र–छात्रओं ने 'नवोदित साहित्य मंच' के नाम से एक संस्था का गठन कर रखा था। अपने दोस्तों के सुझाव पर मैं भी उक्त मंच का सदस्य बन गया। कुछ ही समय बाद मुझे मंच का अध्यक्ष बना दिया गया। 'नवोदित साहित्य मंच' की गतिविधियों में अपना सहयोग एवं मार्गदर्शन प्रदान करते हुए डॉ– धनंजय ने मुझे प्रख्यात गीतकार डॉ– श्याम निर्मम व समीक्षक डॉ– बृजनाथ गर्ग से भी मिलवाया। इस यात्र में कई खूबसूरत पड़ाव भी आए। साल 2004 में मेरा दूसरा कविता–संग्रह 'गिरती हैं दीवारें' प्रकाशित हुआ। उसकी भूमिका लिखने के लिए मैंने धनंजय जी से निवेदन किया। बड़े सहज भाव से उन्होंने मेरे कच्चे–पक्के संग्रह की भूमिका लिखते हुए मेरा मार्गदर्शन किया। अब मैं प्रख्यात गीतकार डॉ– कुँअर बेचैन जी से भी मिलने–जुलने लगा था। उन्होंने भी मेरे कविता संग्रह के लिए अपनी संक्षिप्त टिप्पणी लिखी। डॉ– धनंजय ने मुझे अपने गीत संग्रह 'पलाश दहके हैं' की एक प्रति भी भेंट की। उनके गीत संग्रह को पढ़कर मैं अभिभूत रह गया। इतने मधुर, इतने मोहक गीत। उनके कई गीत मेरी जबान पर चढ़ गए। जैसे उनका कालजयी गीत–हमने कलियाँ गुलाब की रोपी थीं, पर गमलों में उग आयी नागफनीध्पूजन से तो इनकार नहीं था पर, अपने घर की मंदिर से नहीं बनी। मैं अक्सर उनके गीत गुनगुनाता। मेरे दोस्त कई बार पूछते यह किसका गीत गा रहे हो। तब मैं उन्हें धनंजय जी के बारे में बताता। वह भी उनके गीत गुनगुनाने लगते।

समय अपनी रफ्तार से गुजर रहा था। इधर मैं अपने व्यावसायिक जीवन में बहुत व्यस्त हो गया। ऐसे ही एक दशक कब गुजर गया पता ही नहीं चला। वर्ष 2014 से मैंने फिर से साहित्यिक गोष्ठियों में आना–जाना शुरू किया। वर्ष 2014 के दौरान मुझे डॉ धनंजय सिंह जी का फोन आया। उन्होंने बताया कि उनकी संस्था 'अमर भारती साहित्य संस्कृति संस्थान' का प्रथम वार्षिक समारोह है। मैं इस समारोह में शामिल हुआ। मुझे अच्छा लगा। फिर मैं यदा–कदा संस्थान की मासिक गोष्ठियों में जाने लगा। मई 2016 के दौरान मुझे डॉ– धनंजय का फोन आया और उन्होंने मुझ से मिलने की इच्छा जाहिर की। अदालती काम–काज निपटा कर मैं उनके घर पहुँचा। उन्होंने बातचीत के दौरान बताया कि उनकी संस्था में कार्यकारिणी का पुनर्गठन किया जाना है और वह चाहते हैं कि महासचिव के पद का उत्तरदायित्व मैं वहन करूँ। यह प्रस्ताव मेरे लिए अप्रत्याशित था। लेकिन मैंने इसे उनका आशीर्वाद मानकर स्वीकार कर लिया। इसके बाद तो उनका घर मेरा दूसरा घर जैसा हो गया। मैं तो अक्सर

उनके यहाँ आता जाता ही हूँ मेरी पत्नी व बच्चे भी कई बार आए–गए हैं। बच्चों को उनकी वाटिका बहुत भाती है। वाटिका में खिले विभिन्न फूल तो उन्हें अच्छे लगते ही हैं लेकिन उन्हें खास तौर पर उनकी अंगूर की बेल पसंद है। उस बेल पर जब अंगूर पक जाते हैं तब वह उनके घर जाने के लिए कुछ ज्यादा ही उत्सुक रहते हैं। साल 2017 में उनका दूसरा गीत संग्रह 'दिन क्यों बीत गये' प्रकाशित हुआ। अमर भारती साहित्य संस्॥ति संस्थान के तीसरे वार्षिक समारोह में इसका विमोचन हुआ। इस गीत संग्रह का एक–एक गीत उनके समकालीन गीतकारों के बीच उनकी श्रेष्ठता को साबित करता है। इस संग्रह के पहले गीत का मुखड़ा कवि मन के तटस्थ भाव को इस तरह जाहिर करता है– कौन किसे क्या समझा पाया, लिख–लिख गीत नयेध्दिन क्यों बीत गये। करीब डेढ़ दशक बाद मेरा तीसरा कविता संग्रह 'बुतों के शहर में' प्रकाशित हुआ। एक बार फिर डॉ धनंजय जी ने मेरे कविता संग्रह की भूमिका प्रस्तुत की। इस तरह पिछले सात सालों से नियमित रूप से उनसे मिलना–जुलना, सुनना –सुनाना, तमाम साहित्यिक–सामाजिक विषयों पर विमर्श जारी है। ईश्वर करे यह सिलसिला यूँ ही चलता रहे। अंत में उनके एक गीत के मुखड़े से मैं अपनी बात को विराम देना चाहूँगा। दरअसल यह गीत और ऐसे कई गीत डॉ– धनंजय जी के व्यक्तित्व व्यक्तित्वकी एक मुकम्मल तस्वीर पेश करते हैं–

पाठ कभी दुनियादारी का
हमें नहीं आया
हमने केवल जिया वही
जो अपने मन भाया।
ऋण–धन
गुणा–भाग की भाषा
जग ने समझायी
किंतु
जटिलता उसकी
मन में पैठ नहीं पायी।

महासचिव
अमर भारती साहित्य संस्कृति संस्थान,

काव्य–रथ का सव्यसाची : धनंजय सिंह

–ब्रजेश भट्ट

"

अपारे काव्य संसारे कविरेक: प्रजापति:।
यथार में रोचते विश्व तथेद परिवर्तते। ।
" (ध्वन्या लोक, 33द्योत)

इस अपार संसार में कवि–प्रजापति के समान है वह जैसा चाहता है, वैसे ही जगत को बना डालता है। यआचार्य आनंद वर्धनद्ध

"कवि पैदा होते हैं, बनाएँ नहीं जाते" इस उक्ति पर धनंजय सिंह अक्षरश: खरे और सही उतरते हैं। इनके अन्दर जन्म से ही कला यकविताद्ध के गुण रहे, जिनको घर के सांस्कृतिक, साहित्यिक वातावरण ने संस्कारित कर गतिमान काव्योन्मुखी किया।

धनंजय सिंह का जन्म उ–प्र– के जिला–बुलंदशहर यखुर्जाद्ध के अन्तर्गत ग्राम अरनिया में ठाकुर अमर सिंह यपिताद्ध और कुँवर सुखलाल यताऊद्ध के यहाँ हुआ। पिता, अमर स्वामी आर्य समाज के प्रवर्तकों और उन्नायकों में रहे। स्वामी जी वैदिक–साहित्य के उद्भट विद्वान थे। आप शास्त्रर्थ मार्तंड कहलाते थे। आप अनेक–भावनाओं में निष्णात थे। जो इनके अनगिनत लिखित ग्रन्थों में मौजूद है। 'होनहार विरबान के होत चीकने पात' को चरितार्थ स्वरूप प्रदान करते हुए धनंजय सिंह ने भी हिन्दी और अंग्रेजी भाषाओं का सतत अध्ययन और मनन किया जो उनके साहित्यिक अवदान में स्पष्ट परिलक्षित है।

आप एक कवि होने के साथ–साथ एक निश्छल समीक्षक, संपादक और अनुवादक रहे हैं। आपने अपने गीत संग्रहों के अलावा अन्य कवि–कवयित्रियों के अनेक कविता संग्रह संपादित किए हैं।

साहित्यिक क्षेत्र् में, विशेष रूप से गीत–गजल विधा बहुत छोटी उम्र से ही उनकी, कवि होने की पहचान बन गई। वैसे तो आपके अनेक गीत रसिक जनों की जुबां पर हैं, एक पहचान (सिग्नेचर) गीत–

"हमने कलमें गुलाब–की रोपी थी,
पर गमलों में उग आयी नागफनी। "

आपका एक गीत चलचित्र् यमूवीद्ध में भी काफी सराहा गया'

'सीटियाँ देने लगी है रात,
अब डर लग रहा है। '

सबसे प्रसन्नता की बात यह है, कि आप 3ध्4 शताब्दी अर्थात् पिछहत्तर वर्ष पूर्ण करने जा रहे हैं, आज तक भी रचना शीलता की सक्रियता, साधना बनी हुई है। मेरी भाई धनंजय सिंह चैहान को मार्कण्डेय आयु की कामनाओं के साथ। शुभमस्तु।

धनंजय सिंह के गीतों में भाव एवं शिल्प का संगम

– डॉ– योगेन्द्र नाथ शर्मा 'अरुण'

गीत–विधा युगों से काव्यप्रेमियों के हृदयों का हार बनी हुई है! लोकसाहित्य तो जीवन के प्रत्येक हर्ष और विषाद की अभिव्यक्ति का माध्यम गीतों को ही बनाता आया है! संस्।ाृत साहित्य से लेकर हिंदी साहित्य तक और भारतीय भाषाओं में सर्वत्र् गीतों का वर्चस्व रहा है। सच यह है कि गीत हमारी आत्मा को स्पर्श करता है और हमें सुख और दु:ख में जीने की प्रेरणा देता है!

वर्तमान में गीत कुछ गुम सा जरूर हो गया है, लेकिन उसकी गूँज यदाकदा हमें सुनाई देती रहती है! हिंदी में गीतकारों की पूरी पीढी ऐसी हुई है, जिसने काव्य–मंचों पर धूम मचाते हुए गीत को जन–जन के हृदय में प्रतिष्ठित करा दिया है! स्वर्गीय हरिवंश राय बच्चन, रामधारी सिंह "दिनकर", शिव मंगल सिंह "सुमन", स्वर्गीय गोपाल दास "नीरज", रमानाथ अवस्थी, रामावतार त्यागी, मधुर शास्त्री जैसे रस–सिद्ध गीतकारों में एक नई पीढी भी खूब चमकी है और इस पीढी ने भी हिंदी–गीत को लोकप्रियता की ऊंचाइयों पर पहुँचाया है! इनमें कुंअर बेचैन, संतोषनंद, राजेंद्र राजन और धनंजय सिंह जैसे समर्थ गीतकारों का नाम गर्व के साथ लिया जा सकता है!

मुझे गर्व है कि मैं धनंजय सिंह की गीत–साधना का साक्षी और प्रशंसक रहा हूँ, इसलिए मैं अधिकारपूर्वक कह सकता हूँ कि धनंजय सिंह की गीत–साधना स्वयं में जहाँ पूर्णत: निर्दोष और पवित्र् रही है, वहीं उन के गीतों में भाव और शिल्प का अनूठा संगम भी विद्यमान रहा है! गीतकार डॉ– धनंजय सिंह का लोकप्रिय गीत–संकलन "दिन क्यों बीत गये" उनके ऐसे मनभावन गीतों का एक रम्य सा गुलदस्ता कहा जा सकता है, जिसका प्रत्येक गीत–पुष्प अपनी अलग और मोहक सुगंध से महकता हुआ लगता है! इस संकलन की भूमिका में प्रो हरिमोहन ने लिखा है– "यह गीत संग्रह धनंजय सिंह के गीतों का मूल स्वर मुखर करता है, जिसमें कवि के आत्मोत्सर्ग और सामाजिक चेतना एवं कल्याण की कामना है, कवि कर्म की सार्थकता पर प्रश्न चिन्ह है, जो आत्म मंथन के लिए प्रेरित करता है! आधुनिकता और इधर राहू की तरह

मनुष्यता, मानवीय सम्बन्ध और संवेदनाओं की ग्रसती जा रही उत्तर आधुनिकता के बीच भटकते संवेदनशील मनुष्य की पीड़ा है। छटपटाहट और बेचैनी है!"

आज जब डॉ– धनंजय के गीतों को पढ़कर मुझे कुछ लिखने का मन हुआ तो लगा कि धनंजय के गीतों में व्याप्त और सर्वत्र् मुखर संवेदनाओंं के साथ ही उनके शिल्प पर कुछ लिखूं, तो मुझे आत्मसंतोष भी मिलेगा और में गीतों के साथ न्याय भी कर सकूंगा! "दिन क्यों बीत गए" गीत–संकलन का एक गीत है ''आओ मिल बैठें, बतियाएँ", जो संवेदनाओं की अभिव्यक्ति की दृष्टि से मुझे बेहद प्यारा लगता रहा है। आज के युग की भागमभाग में हर आदमी ही जैसे अपने आप में एक 'अजनबीपन' पाले हुए घूम रहा है, उसे अपने आसपास का ज्ञान तो क्या हो, शायद खुद का भी पता ठीक से नहीं है! ऐसे में धनंजय का स्वर गूंजता है और हमारे अजनबीपन को चुनौती सी देता लगता है–

"आओ
मिल बैठें, बतियाएँ!
हो सकता है
शब्द न बोलें
बातों को
मन ही मन तोलें
आओ
भावों की चाबी से
कुंठा का
हर ताला खोलें'' (पृ—38)

यहाँ, जो सहज सा निमंत्रण आपको 'आओ' शब्द में मिल रहा है, उसी के साथ गीतकार 'भावों की चाबी सेध्कुंठा काध्हर ताला खोलें' की जो आश्वस्ति देता है, वह आपके मन की सारी दुविधाओं को जैसे खत्म कर देती है। कुछ ऐसा ही लगा है मुझे धनंजय के गीत "गणित नहीं आया" से गुजरते हुए, जहाँ गीतकार बड़े ही विश्वास के साथ आपको एक दृढ़ आश्वासन दे रहा है –

"दु:ख को
गहरी नींद सुलाकर
हर्ष जगाएँगे
भैरव–राग
बंद कर
आसावरी गुंजाएंगे" (पृ—35)

यहाँ तो धनंजय जैसे संगीत के संसार से दो प्रतीक चुनकर आपको आपकी सारी दुविधाओं से ही मुक्ति दिलाने का आयोजन कर देते हैं। "दु:ख को सुलाकर" हर्ष जगाना तो कोई नयी बात नहीं लगती, लेकिन "भैरव राग" को बंद करके "आसावरी" गुंजाना अपने आप में सचमुच बहुत बड़ी बात है! यही आश्वस्ति मुझे गीतकार धनंजय के गीतों की सबसे बड़ी पहचान लगती रही है! गीतों का प्राण होती है "प्रणय–चेतना", जिसे गीतकार धनंजय सिंह ने बड़े ही सलीके और मधुरता के साथ अपने गीतों में यथा स्थान मुखरित किया है! यह भी उनके कोमल भावों की सहज अभिव्यक्ति ही है, जो पाठकों को बाँधे रखती है! गीतकार धनंजय का एक बड़ा ही प्यारा गीत है "ढ़ाई आखर नाम तुम्हारा ले लिया", जिसमे प्रणय की कोमलतम भावना प्रतीकों में ढ़लकर जैसे साकार हो उठती है–

"तितली के
दो पंख हिले

फूटे सरगम के बोल
ज्यों वाणी के
शब्द–शब्द में
डाली मिसरी घोल" यपृ—64द्ध

पाठक सचमुच मंत्रमुग्ध या सोचने लगता है कि "तितली के दो पंख हिले" और "ज्यों वाणी के शब्द–शब्द में डाली मिसरी घोल" की आलंकारिकता में डूबें या प्रणय की कोमलता का लोकोत्तर आनंद अनुभव करें! गीतकार धनंजय सिंह को मैं "शब्दों का जादूगर" कहूँ तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी, क्योंकि उनके गीतों में भाषा की सजीवता के साथ ही जो मधुरता और मारक क्षमता सर्वत्र् विद्यमान रहती है, वह उनके 'मानवीकरण' और 'ध्वन्यात्मकता' के सौन्दर्य के साथ मिलकर पाठकों और श्रोताओं को अभिमंत्रित सा कर देती है! गीतकार का एक लोकप्रिय गीत है "वातायन हँस उठे", जिसमें उन के शब्दों का चयन ही वस्तुत: मानवीकरण और ध्वन्यात्मकता को भी जन्म देता हुआ सा लगता है, जो निश्चय ही अत्यंत विरल कार्य है! जरा देखिए–

"भँवरे
गाने लगे झूमकर
कलियाँ इठलायीं
पीकर
मधु–मकरंद
तितलियाँ मन–मन बौरायीं" यपृ—23द्ध

इस गीत में प्रकृति ही जैसे मदमस्त हुई सी झूम उठी हो, इसीलिए "भँवरे गाने लगे झूमकर" तो बहका कैसे न होता कि "कलियाँ इठलायीं" सी लगती ? "मधु–मकरंद" का श्लेष तो गीतकार धनंजय के जीवन का अमृत ही है! गीतकार ने प्रकृति को प्रतीकों से ऐसे सजाया है कि पाठक और श्रोता इनमें स्वयं को खोया हुआ सा अनुभव करता है! ऐसे दृश्यों की चित्रत्मकता निस्संदेह हृदय को बरबस मोह लेती हे और फिर 'वाह' के सिवा दूसरा कोई शब्द ही नहीं निकलता–

"खिली कुमुदिनी ने
सौरभ के
अंक–पत्र् बाँटे
सिहरन जगी
रोम–कूपों में
उग आए काँटे"

प्रणय भावना का ऐसा प्रतीकात्मक और आलंकारिक चित्रण, जो स्वयं में अनूठी चित्रत्मकता को लिए हुए चलता हो, सचमुच दुर्लभ ही है! एक बार फिर मुझे इस गीत–संकलन की भूमिका में डॉ हरिमोहन के शब्दों को ही उदधृत करना पड़ेगा, जहाँ वे कहते हैं– "धनंजय के गीतों में कोमल उपमानों की छटा निराली होती है! मन की सघनतम अनुभूतियाँ इस अनछुई कोमलता को अत्यंत सार्थक बना जाती है!" (पृष्ठ–7)

अन्त में मैं तो यही कह सकता हूँ कि गीत और नवगीत को एक साथ जीने वाले प्रिय गीतकार डॉ– धनंजय सिंह के गीतों में भावों और शिल्प का जो अनूठा गठजोड़ हुआ है, वही उनके गीतों की सार्वधिक लोकप्रियता की आधारभूमि भी बन गया है! मैं गीतों के इस अनुपम शिल्पी को हृदय से शुभ कामनाएँ देता हूँ!

पूर्व प्राचार्य एवं अध्यक्ष, हिंदी विभाग

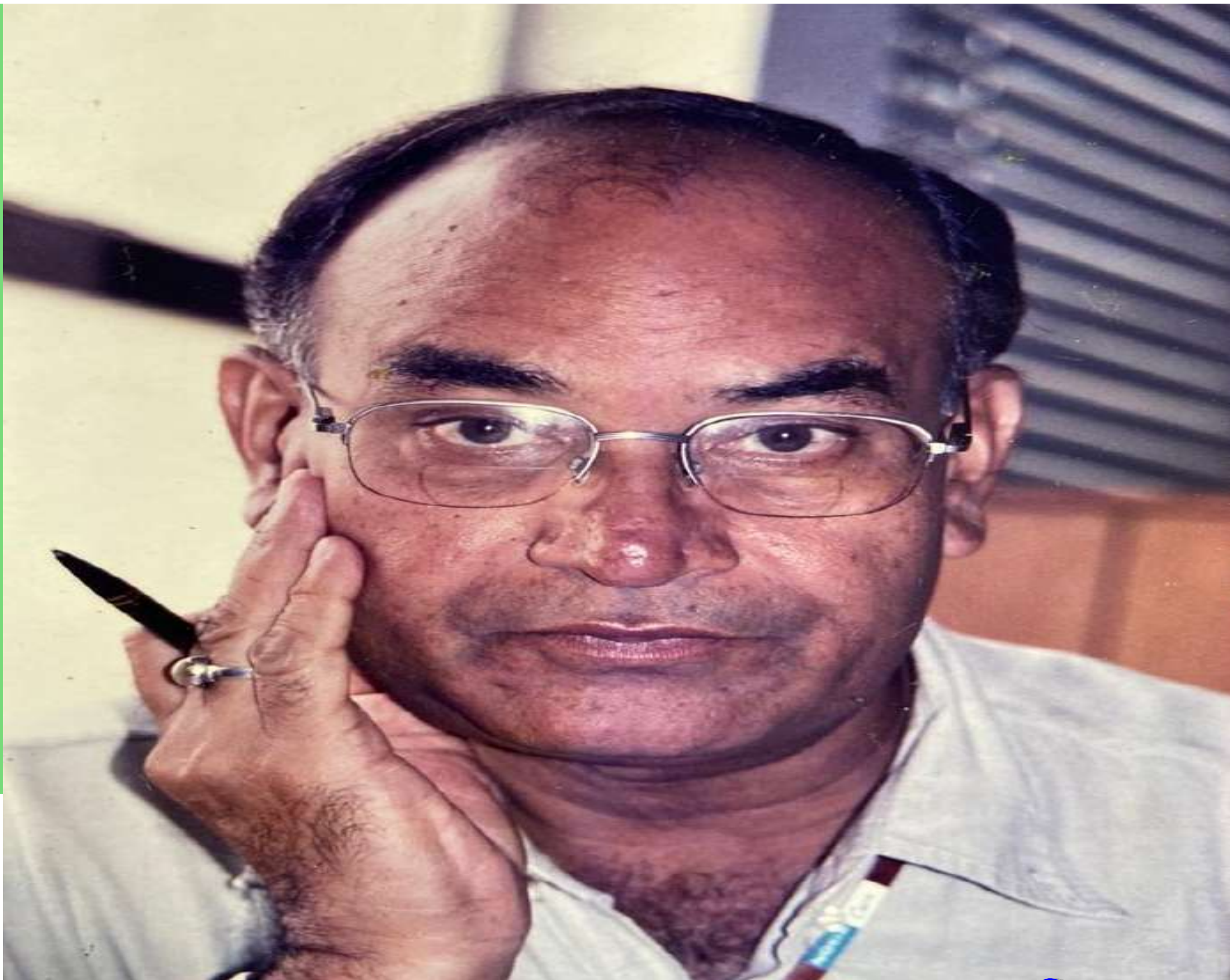

कंटक पथ पर एक बटोही

—संध्या सिंह

कुछ वर्षों के अंतराल में जितना धनंजय सिंह जी के बारे में जाना उससे यह विदित हुआ कि उनका जीवन अत्यधिक संघर्षमय रहा। संघर्ष और सफलताओं के बीच विडंबनाएं अधिकतर अपनी उपस्थिति दर्ज करती रहीं। स्वाभिमान, आर्थिक अभाव, शारीरिक व्याधियों और अपने लेखन से जूझते हुए आज जिस पड़ाव पर धनंजय जी हैं वह उनकी अदम्य जिजीविषा की सौगात है। उनका जुझारू जीवन नकारात्मकताओं पर सकारात्मकताओं की एक प्रेरक कहानी है।

आदरणीय धनंजय जी से मेरा परिचय बहुत पुराना नहीं। पारिवारिक रिश्ते के बावजूद मैंने उन्हे साहित्य के क्षेत्र् मे कदम रखने के बाद ही जाना। लेकिन किसी को जानने के लिए आवश्यक नहीं कि लंबे समय तक मित्रता रहे। कभी कभी साहित्यिक संवाद, परिचर्चा और असहमतियों पर खुल कर बातचीत किसी के व्यक्तित्व को समझने में तुलानात्मक रूप से अधिक सहायक होती है।

धनंजय जी न केवल एक प्रतिष्ठित पत्रिका के एक जिम्मेदार साहित्यिक पद पर रहे अपितु स्वयं भी निरंतर सृजनरत रहे। मगर इसके बावजूद किसी अहम की भावना से ग्रस्त नहीं दिखे। उनका सबसे बड़ा बड़प्पन ये है कि नवोदित रचनाकार से सहज संवाद स्थापित करते हैं। साथ ही आत्मीय होने के बावजूद रचना के शिल्प संबन्धित नियमों में कोई समझौता नहीं करते। वहाँ मैंने उन्हें कई बार कठोर होते पाया। रचना धर्मिता को लेकर कितना विनम्र होना है और कितना कठोर एवं कहाँ विनम्र होना है और कहाँ कठोर इसमें धनंजय जी बहुत अनुशासित व्यक्ति हैं।

एक और विशेष गुण जो उन्हे औरों से अलग रखता है वो है आतिथ्य में खुला हृदय। कोई

गाँव से आया जरूरतमंद हो या मित्रा के दायरे से कोई विपत्ति में हो मैंने उन्हे सदा दूसरे के लिए मदद हेतु तत्पर देखा। उनके घर भोजन के समय कोई अतिथि बिना खाना खाये विदा नहीं होता। ऐसे बाजारवाद के समय में इतना भावनात्मक होना सुखद आश्चर्य से भर देता है। उनके बारे में एक बात और मुझे स्मरण होती है कि एक बार अभिव्यक्ति के वार्षिक कार्यक्रम में वो निमंत्रित थे। कार्यक्रम दसवीं मंजिल पर था। अचानक जा कर मालूम हुआ कि लिफ्ट खराब है। जहां कुछ लोग उनसे कम उम्र के भी वापस लौट गए वहीं धनंजय जी बिना चेहरे पर शिकन लाये दसवें माले तक सीढ़ियों से गए। हिन्दी के प्रति ये समर्पण और आयोजक के प्रति ये प्रतिबद्धता आज के समय में दुर्लभ है।

जहां तक सिद्धान्त और खुद्दारी का प्रश्न है। धनंजय जी ने कभी समझौता नहीं किया। भले ही आर्थिक हानि हो, अजीविका का प्रश्न हो या फिर भवनात्मक दबाव हो, उन्होने हमेशा अपने उसूलों को महत्व दिया। सेवानिवृत्ति से एक वर्ष पहले कादम्बिनी में अपने पद से त्यागपत्र् देना इसी जीवन शैली का उदाहरण है।

मुझे याद आता है जब भी मैं उनके आवास पर गई, कई बार उनके घर गाँव आए हुए लोग मिले जो नौकरी की तलाश में, या मुकदमे के कारण उनके घर एक एक महीना वास करते थे। उनकी पत्नी से बात करने पर मालूम हुआ कि जब भी कवि सम्मेलन होता था अक्सर कवि दोस्तगण रात–रात भर वहीं रुकते थे। घर छोटा होने के बावजूद सब यहीं खाना खाते थे और जमीन पर गद्दे बिछा कर सोते थे। इतना खुला हृदय इस बाजारवाद में दुर्लभ है।

मुझे याद आता है जब भी मैं उनके आवास पर गई, कई बार उनके घर गाँव आए हुए लोग मिले जो नौकरी की तलाश में, या मुकदमे के कारण उनके घर एक एक महीना वास करते थे। उनकी पत्नी से बात करने पर मालूम हुआ कि जब भी कवि सम्मेलन होता था अक्सर कवि दोस्तगण रात–रात भर वहीं रुकते थे। घर छोटा होने के बावजूद सब यहीं खाना खाते थे और जमीन पर गद्दे बिछा कर सोते थे। इतना खुला हृदय इस बाजारवाद में दुर्लभ है। बहुत सारे उदाहरण इधर उधर से सुनने में आए कि धनंजय जी ने बुरे समय में अपनी आर्थिक एवं शरीरिक सामर्थ्य से बाहर जा कर भी लोगों की सहायता की।

धनंजय जी को मैंने जहां बेहद मिलनसार, ठहाका लगा कर हंसने वाले बेहद विनोद प्रिय व्यक्ति के रूप में देखा वहीं मैंने गीत एवं छन्द मे शिल्पगत त्रुटि होने या गलत बिम्ब प्रयोग करने पर उन्हे कठोर होते भी देखा। त्रुटियों की पुनरावृत्ति पर उनका क्रोध एक सख्त और

अनुशासित मार्गदर्शक की तरह मैंने कई बार देखा। ये व्यवहार भी उनकी हिन्दी के प्रति प्रतिबद्धता को पुष्ट करता है। धनंजय जी से वार्ता सदैव ज्ञानवर्धक रहती है। पौराणिक किस्सों से ले कर संस्||त के श्लोक तक, और हमारे प्रतिष्ठित कवियों के गीत और गजल उन्हें कंठस्थ हैं। ये कहना अतिशयोक्ति नहीं कि धनंजय जी अपने आप में चलता फिरता पुस्तकालय हैं। किसी भी विषय पर जब कोई चर्चा छिड़ती है तो धीरे धीरे उनका अनुभव, उनका अध्ययन, उनका ज्ञान बहुत सहज ढंग से बाहर आता है। वे कभी सामने वाले पर नाहक अपने ज्ञान को ले कर अतिक्रमण नहीं करते। बातचीत में मशगूल लोग स्वयं आहिस्ता आहिस्ता इस ज्ञान गंगा में तैरने लगते हैं। यही गरिमा उन्हें विशेष बनाती है।

उनके ||तित्व पर कुछ लिखे बिना ये लेख अधूरा है। क्योंकि किसी रचनाकार का रचना संसार भी उसके व्यक्तित्व का ही एक हिस्सा है।

"कृतित्व"

डॉ– धनंजय सिंह जी प्रतिष्ठित कादंबिनी पत्रिका के मुख्य कॉपी संपादक रहे इस नाते उन्हें जीवन का अधिकांश समय दूसरों की रचनाएँ पढ़ने और चयन करने में बिताना पड़ा, जिससे उनका रचनाकर्म प्रभावित हुआ और वो जीवन में बहुत अधिक नहीं लिख पाए लेकिन जितना लिखा वो उच्चस्तरीय लिखा। यानि उनके लेखन में क्वांटिटी बेशक कम रही मगर क्वालिटी की बात करें तो उनकी रचनाएँ हर कसौटी पर खरी उतरीं।

उनके दो संग्रह प्रकाशित हुए हैं

पहले संग्रह "पलाश दहके हैं" में उन्होंने गीत नवगीत के अलावा अपने संग्रह में कुछ गजलों और छंदमुक्त कविताओं को भी स्थान दिया।

दूसरा संग्रह "दिन क्यों बीत गए" ताजी हवा और सौंधी खुशबू के लिए भिन्न भिन्न रंगों के गीतों का गुलदस्ता है। ऐसे गीत जो पाठक से संवाद करते हैं उससे गुफ्तगू करते हैं।

जब धनंजय जी गजल के माध्यम में ये कहते हैं–

"धुंधमय आकाश का मौसम है मेरे देश में
मौत से सहवास का मौसम है मेरे देश में"

तो उनके तेवर दुष्यंत की याद दिलाते हैं

या फिर

अब तो सड़कों पर उठा कर फन चला करते हैं सांप
सारी गलियाँ साफ हैं कितना भला करते हैं सांप"

उनकी कलम में देश के हालात पर फिक्र दिखायी देती है। एक जिम्मेदार नागरिक का चिंतन शब्दों के पीछे से झांकता है। उनके गीतों की बात करें तो अठारह वर्ष की उम्र से धनंजय सिंह जी की गीतों की यात्र आरंभ हुई। उस समय में भावना की चादर पर सितारों की तरह टाँके गये शब्द विस्मित करते हैं।

स्वप्न की झील में तैरता
ये हृदय का सुकोमल कमल
एक रूमानी तिलिस्म गढ़ता प्रतीत होता है।

उम्र के साथ उनके गीतों में जमीनी समस्यायें, झूठ पर खडी राजनीति और मुफलिसी का दर्द प्रतिबिंबित होने लगा। सत्ता के षड्यंत्र् का क्षोभ कितने प्रभावी शब्दों में स्फुटित हुआ है देखिये ये अनुपम उदाहरण–

"सुबह सुबह
नील कमल ताल पर
उतर गये चीलों के झंड
प्रवचन की मुद्रा में
श्वेत बगुल आ बैठे
मस्तक पर धार कर त्रिपुंड"

एक कवि अंधकार के खिलाफ रोशनी की

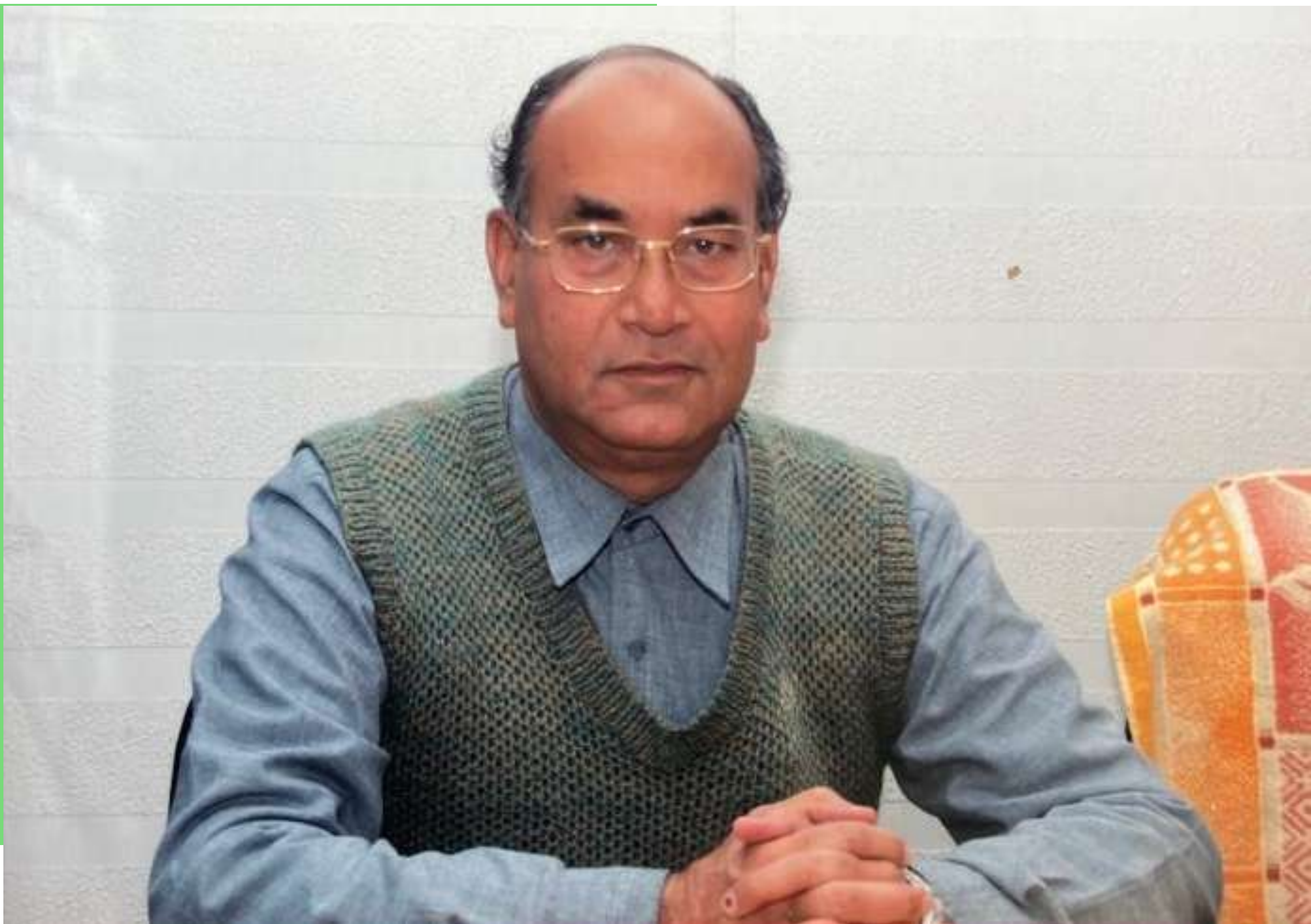

मत चूकै चौहान

योगेंदत्त शर्मा

अपने मित्र् धनंजय सिंह के बारे में कुछ कहना अपनी ही जिन्दगी की आधी सदी के कालखंड के इतिहास का सिंहावलोकन करने जैसा है। अक्सर लोगों पर यह आरोप लगा दिया जाता है कि वे दूसरे व्यक्ति की चर्चा करते हुए उसके बारे में कम, अपने बारे में ज्यादा लिखते हैं। लेकिन मेरी मजबूरी यह है कि मित्रें की चर्चा करते हुए अपनी चर्चा को उससे अलग नहीं कर पाता और अपनी बात करते हुए मित्रें की चर्चा करने से खुद को रोक नहीं सकता। बहरहाल——

धनंजय सिंह से पहली मुलाकात मेरठ शटल में हुई थी। सुबह आफिस जाते समय। खादी का कुर्ता–पजामा पहने, आंखों पर चश्मा चढ़ाये वह रेल–डिब्बे के पायदान पर बैठे कोई पत्रिका पढ़ रहे थे, शायद ‘दिनमान’। मैं गैलरी में खड़ा था। पत्रिका देखने की उत्सुकता लिये मैं पायदान पर उनके बराबर जाकर बैठ गया। यहीं से बातचीत का सिलसिला शुरू हुआ और धीरे–धीरे बढ़ता चला गया। तब वह धनंजय ‘बटोही’ हुआ करते थे। फिर यह रोज का क्रम बन गया। गाजियाबाद स्टेशन पर हम मिलते, ट्रेन में पायदान पर बैठकर गप्पें लड़ाते, एक साथ तिलक ब्रिज पर उतरते और अपने–अपने ऑफिस चले जाते। मेरा आफिस ए–जी–सी–आर– बिल्डिंग में था और वह यू–जी–सी– बिल्डिंग के पीछे विद्युत आपूर्ति सदन में काम करते थे। शाम को भी तिलक ब्रिज से साथ बैठते और ट्रेन से उतरकर अपने–अपने घर लौट जाते।

हमारा परिचय धीरे–धीरे घनिष्ठता में बदलता गया। वह मेरे लिए ‘चैहान साहब’ हो गये और मैं उनके लिए ‘पंडित जी’। हम एक–दूसरे के घर आने–जाने लगे। वह पहले मोहल्ला हरदेव सहाय में रहते थे, फिर आर्य नगर और उसके बाद कुछ समय शाहदरा रहकर वापस गाजियाबाद के विवेकानंद नगर वाले आवास में स्थायी रूप से आ बसे। इस बीच उनका विवाह भी हो गया। मैं पहले शहर के बीचों बीच चैपला मंदिर के पास रहता था और सन 1981 में परिवार के साथ कवि नगर आकर रहने लगा।

रहे हम कहीं भी हों, हमारा मिलन–स्थल ट्रेन ही रही। जिन दिनों वह शाहदरा रहते थे, तब हम गाजियाबाद से शाम को साढ़े चार बजे चलकर तिलक ब्रिज, नई दिल्ली से घूमकर

दिल्ली, शाहदरा होकर वापस गाजियाबाद आने वाली सर्कुलर ट्रेन पर तिलक ब्रिज से सवार होकर शाहदरा तक की यात्र में हमसफर होते। इसमें हम गप्पबाजी से लेकर साहित्य–सर्जन तक कुछ भी कर लिया करते थे। 'कादंबिनी' पत्रिका द्‌्वारा आयोजित अखिल भारतीय गीत–प्रतियोगिता में पुरस्‌ात मेरा गीत 'गीत नहीं बोयेंगे' और 'अंतहीन' फिल्म में सम्मिलित उनका चर्चित गीत 'सीटियां देने लगी है रात' उसी दौर की रचनाएं हैं। बल्कि जिस समय वह इस गीत की रचना कर रहे थे, उसी समय मैं भी एक गजल 'किसी मकड़ी के उलझते हुए जालों की तरहध्जिन्दगी हो गई अनबूझ सवालों की तरह' लिख रहा था, जो कुछ ही दोनों बाद 'सारिका' में प्रकाशित हुई। इन दोनों ही रचनाओं में उस समय का बहुचर्चित 'चसनाला'–संदर्भ आया था।

रेल के सफर में पहले हम दोनों की महफिल जमी। बाद में श्याम निर्मम भी शामिल हो गये। इसके बाद तो और हमसफर मिलते गये और कारवां बनता गया। कुछ–कुछ दिनों के लिए कुमार अनुपम और किसलय वंद्योपाध्याय भी हमसफर रहे। इनके साथ ही साथ आदरणीय गोपाल ॥ष्ण कौल जी, पं– दुर्गा प्रसाद शुक्ल और चित्र्कार भुवनेश ट्रेन में और उससे उतरकर नई दिल्ली के कनाट प्लेस से लेकर गाजियाबाद के घंटाघर के क्षेत्र् में चाट–पकौड़ी और जलेबी–समोसों की प्लेटों को धन्य करते रहे। अफसोस! आज इनमें से कोई भी हमारे साथ नहीं रह गया है।

ट्रेन में हमारी–धनंजय सिंह, मैं और श्याम निर्मम की–तिकड़ी काफी मशहूर थी। हम लोग बहुत मस्ती करते थे। कुमार अनुपम हमारे साथ जुड़े, तो चैकड़ी बन गई। एक बार–मुझे अच्छी तरह याद है, उस दिन शनिवार था और तारीख थी 16 दिसंबर 1978। शाम को चारों मिले, तो अचानक कार्यक्रम बना कि उर्दू घर के निकट ऐवाने गालिब में उस्ताद रसा पर केन्द्रित समारोह में शामिल हुआ जाये। बस, फिर क्या था! कार्यक्रम में शामिल हुए और उसमें ऐसे रमे कि वक्त का पता ही नहीं चला। अचानक घड़ी पर नजर गई, तो हड़बड़ाकर बस पकड़ने के लिए लपके। बस से उतरकर स्टेशन की ओर भागे। वहां पहुंचे, धक् से रह गये। गाजियाबाद के लिए आखिरी ट्रेन जा चुकी थी। अब क्या किया जाये ? ऐसी रात में कहां जायें ? बहुत बड़ी समस्या सामने थी। हम सब परेशान हो रहे थे।

परेशानी का हल निकाला धनंजय सिंह ने–"चलो, तीमारपुर चलते हैं।

वहां मधु (भाभी जी) की मौसी रहती हैं। रात को रूककर सुबह घर लौट जायेंगे। "

कौड़िया पुल पार करके कश्मीरी गेट से होते हुए कुछ देर बस की राह देखी। वह भी नहीं मिली, तो पैदल चलने का निर्णय लिया और राजपुर रोड होते हुए, जंगल और पहाड़ी के रास्ते से ठंडी चांदनी रात में आवारगी का आनंद उठाते हुए गंतव्य पर पहुंचकर दरवाजा खटखटाया। ससुराल का मामला था, इसलिए यथासंभव खातिरदारी भी हुई और सोने का अच्छा ठिकाना भी मिल गया।

सुबह नाश्ता करके बस पकड़कर तिलक ब्रिज

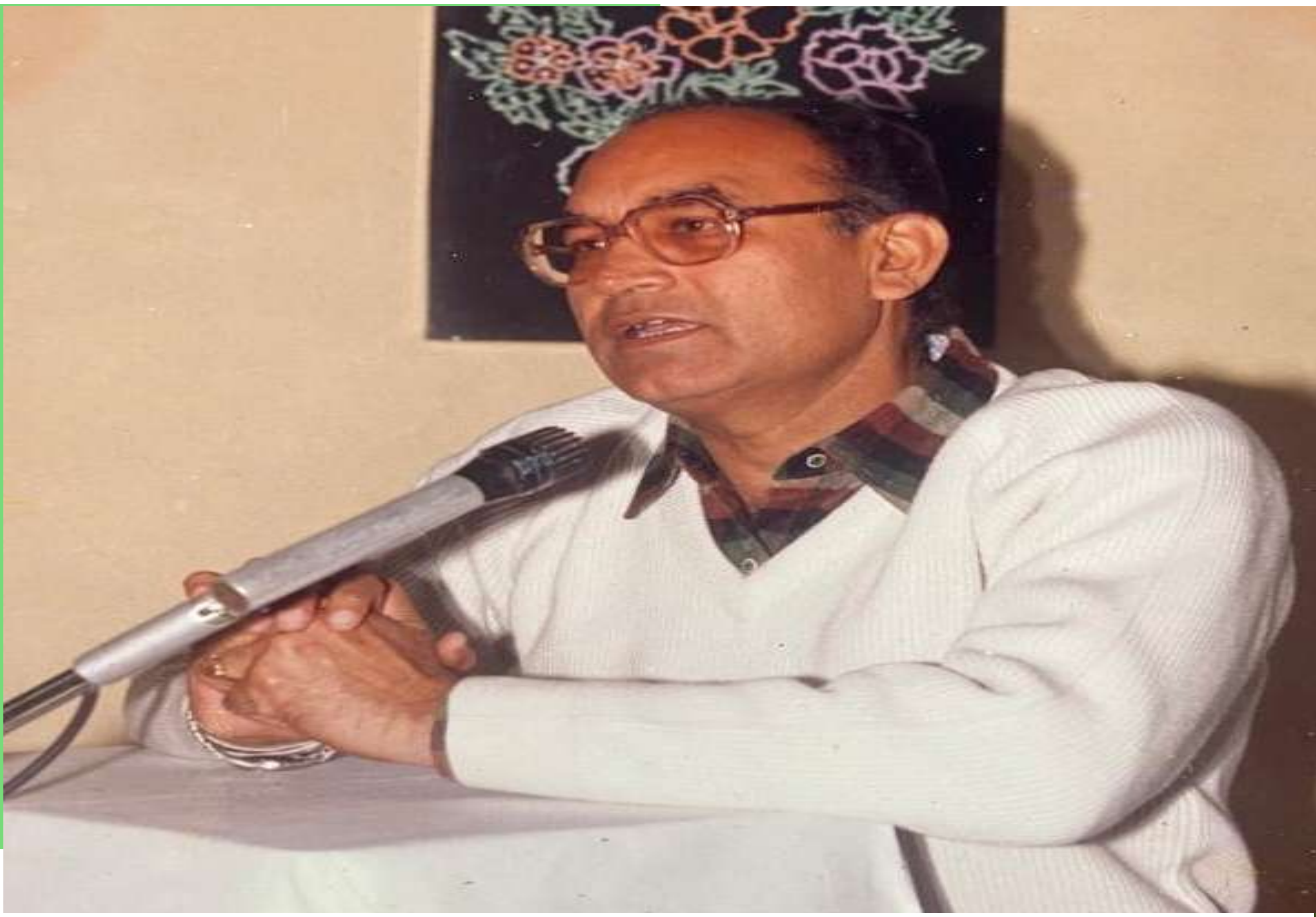

आये और गाजियाबाद वाली गाड़ी में सवार हुए। मेरे मन में ऊहापोह चल रही थी कि घर वाले परेशान हो रहे होंगे।

उन दिनों टेलीफोन की व्यवस्था भी नहीं थी। मन में सवाल चल रहा था कि पिताजी पूछेंगे कि रात को कहां रहे, तो क्या जवाब दूंगा! अचानक एक पंक्ति कौंधी और गजल बननी शुरू हो गई: 'सुबह–सुबह सूरज ने पूछा, कहां गुजारी रात मियां कैसे कहते, वीराने में कटी हमारी रात मियां!' साथियों को सुनाई, तो सब उछल पड़े। 'अंतहीन' फिल्म में इस गजल को भी शामिल करने की बात चली थी, पर सिरे नहीं चढ़ी। खैर!

हम लोगों की मस्ती और आवारगी कविता अथवा काव्य–संदर्भों के इर्द–गिर्द ही रहती थी। आदरणीय भारत भूषण और किशन सरोज धनंजय सिंह के ही नहीं, हम सबके प्रिय कवि रहे और आज भी हैं। इन दोनों के न जाने कितने ही गीत हमने धनंजय सिंह के मधुर स्वर में ट्रेन के अलावा गलियों, चैराहों और अंतरंग गोष्ठियों में सुने हैं। शहर में हमारी तिकड़ी में ब्रजेश भट्ट भी शामिल हो जाते थे और तिकड़ी को चैकड़ी बना देते थे। हम लोगों के एक और प्रिय कवि रहे हैं—— प्रेम शर्मा। हृदय के अंतस्तल से निकलती अनहद गूंज में लिपटे उनके गीत सुनना एक अलौकिक अनुभव हुआ करता था। ऐसा लगता था जैसे कोई फकीर किसी सूने तलाब की सीढ़ियों पर बैठा अकेले में इकतारा लेकर बेहद उदास कर देने वाला राग अलाप रहा हो। एक बार मैंने उन्हें होली वाले दिन कवि नगर में रेलवे लाइन के पास दोनों हाथ उठाये, एक पेड़ की डालियां पकड़कर 'तू न जिया, न मरा' और 'हम जानें या राम' गीत गाते हुए सुना। उस दिन धनंजय सिंह ने भी अपना गीत 'दिन क्यों बीत गये' सुनाया था। उस समय हम तीन ही वहां मौजूद थे। वह दृश्य आज भी मेरी आंखों के सामने कौंध जाता है। — एकाध बार कुबेर दत्त और सोमेश्वर भी ऐसे अवसरों पर हमारे साथ रहे।

उस दौर में गीत–कविताओं को लेकर हम लोगों की दीवानगी चरम पर थी। वरिष्ठ रचनाकारों की रचनाएं सुनने–सुनाने और अपनी लिखी नई रचनाएं सुनाने का अजीब उत्साह और उन्माद था। इसमें अधिक सक्रिय और जीवंत भूमिका हमारे मित्र धनंजय सिंह की होती थी। गीतों की अंतरंग गोष्ठियां हों या सार्वजनिक समारोह, धनंजय सिंह उनमें अक्सर ही अग्रणी रहते थे। नेतृत्व की कामना ही नहीं, क्षमता भी उनमें गजब की रही है। उनके व्यक्तित्व का निर्माण भी इसी तरह हुआ है। आकर्षक व्यक्तित्व के साथ–साथ प्रभावशाली अभिव्यक्ति–कौशल उनका एक अद्भुत गुण है, जो सहज ही किसी को भी अपने मोहपाश में बांध लेने में समर्थ है।

धनंजय सिंह से मैं पारिवारिक रूप से भी जुड़ा हूँ।

उनके पिताश्री अमर स्वामी जी के दर्शन तो एकाध बार ही कर सका, लेकिन उनकी माताजी का भरपूर स्नेह मुझे प्राप्त हुआ है। उनके बड़े भाई शत्रुंजय सिंह तो मेरे ऑफिस में ही थे, इसलिए उनसे भी मेरी मित्रता रही। धनंजय सिंह का व्यक्तित्व बहुस्तरीय और अनेकायामी है। एक स्तर पर वह अत्यंत

शिष्ट, सौम्य, शालीन और सुसंस्।ात हैं, तो दूसरे स्तर पर वह बड़े हंसोड़ और पुरमजाक तबीयत के मालिक हैं। जहां वह भद्र और विनम्र हैं, वहीं दूसरे स्तर पर वह किसी की भद्रा उतारने में भी प्रवीण हैं। 'अभिनंदन' हो या 'दीक्षांत समारोह', उन्हें सबमें महारत हासिल हैं। संस्।ात साहित्य के वह मर्मज्ञ हैं, तो लोक संस्।ाति के अपभ्रंश साहित्य में भी उनकी गहरी पैठ है। किस्से–कहानियों का उनके पास अद्भुत भंडार है। उनके पास बहुत –से महारथियों की जन्मकुंडलियां मौजूद रहती हैं, जिन्हें जब–तब वक्त–जरूरत बांच देने में वह कोई कोताही नहीं बरतते। वैसे यह यारों के यार हैं। दोस्तों से घिरे रहने के शौकीन, बेहद मस्तमौला धनंजय सिंह में गजब का चुलबुलापन भी है। शब्दों को तोड़ –मरोड़कर वह उनका कचूमर निकालने में भी सिद्धहस्त हैं। किसी भी साहित्यिक अथवा फिल्मी गीत में एकाध शब्द इधर–उधर करके उसके समूचे भाव–संदर्भों को कहीं से कहीं पहुंचा देने की कला में भी वह बेजोड़ हैं।

जैसे सिंह सामान्यत: तब तक शांत ही रहता है, जब तक उसे भूख न लगे या कोई उसकी पूंछ पर पांव न रखे। कुछ वैसा ही हाल हमारे मित्र् ठाकुर धनंजय सिंह का भी है। आप उन्हें अत्यंत शिष्ट, विनम्र और मधुरभाषी पायेंगे, बशर्ते आप उनके धैर्य की परीक्षा न लें।

ठकुरसुहाती के शौकीन ठाकुर धनंंजय सिंह कहते तो अक्सर यह रहे हैं कि 'ठा' तो कब की चली गई, अब तो बस 'कुर–कुर' ही बाकी बची है, लेकिन पाया यह गया है कि प्रसंग या संदर्भ कोई भी हो, रखते वह अपनी 'ठा' को ही सर्वोपारि हैं।

अपने एक गीत में धनंजय सिंह ने अपने नाम का बड़ा ही कुशल और अचूक उपयोग किया है। पंक्तियां हैं–

'खुद ही अज्ञातवास ओढ़कर
धनंजय वृहन्नला हुआ
मछली फिर तेल पर टंगी है
धनुष पड़ा किन्तु अनछुआ
कौन इस स्वयंवर को जीते ?'

नाम–साम्य का चमत्कार गीत में भले ही हो, पर यह स्थितिजन्य विडंबना अपने मित्र् धनंजय सिंह के किरदार से कहीं मेल नहीं खाती। स्वयंवर कैसा भी हो, ऐसा हो नहीं सकता कि धनुष अनछुआ पड़ा रह जाये याकि धनंजय की एकाग्र दृष्टि मछली से कहीं इधर–उधर हो। और जहां तक अज्ञातवास का प्रश्न है, तो यह स्पष्ट समझ लेना चाहिए कि वह उसने ओढ़ा अवश्य है, अंगीकार बिल्कुल नहीं किया है। वृहन्नला के वेश में वह प्रथमत:, अनिवार्यत: और अंतत: है धनंजय ही। स्वयंवर तो उसे ही जीतना है। कोई किसी भ्रम में न रहे। और हां, धनंजय सिंह ने खुद भी यह ऐलान किया हुआ है:

'झुक गया आज गांडीव, तो
फिर धनंजय धनंजय नहीं
आप्त पुरुषों का इतिहास–भर
पढ़ते जीने से क्या फायदा!'

दरअसल इस धनुर्धारी के भीतर एक चंद्रवरदाई सदैव विद्यमान रहता है, जो उसे निरंतर प्रेरित करता रहता है कि संभावनाओं का क्षितिज व्यापक और विशाल है, धनुष उठा और लक्ष्य–संधान कर–मत चूकै चैहान! खैर, यह तो हुआ विनोद। मित्र् के साथ इतना तो चलता ही है। अब आयें मुख्य विषय पर।

धनंजय सिंह पचहत्तरवें बरस में प्रवेश कर रहे हैं। बुजुर्ग हो रहे हैं। मैं जानता हूँ कि अज्ञातवास की तरह बुजुर्गियत ओढ़ने में भी उन्हें असहजता अनुभव हो रही होगी, पर क्या किया जा सकता है! इस मौके पर उन्हें शतंजीवी होने की शुभकामनाएं देते हुए मैं यह कामना भी अवश्य करना चाहूँगा कि उनका

एक चिर सहयात्री : धनंजयसिंह

–कुबेरदत्त

मेरे जीवन में अनेक लोग आये। चले गये। कुछ का संग–साथ मिला, कुछ को जानने–पहचानने का भी अवसर नहीं मिला। कई ऐसे भी मिले, जो गाहे–ब–गाहे मिलते रहते हैं। पर फिर भी नहीं लगता कि हम मिले। कुछ ऐसे भी हैं जो बरसों बाद भी मिलें, लगता है कि कभी बिछड़े ही नहीं थे। सन् 1980 तक भाई धनंजय सिंह से रोज नहीं तो हफ्ते में 3–4 मुलाकातें होती थीं। यद्यपि इनमें भी तब थोड़ी सी कमी आई, जब 1973 में मैं दूरदर्शन में प्रोड्यूसर हो गया। फिर भी सरकारी छुट्टियों में और रविवार के दिन तो बिला नागा हम मिलते थे उन दिनों धनंजयभाई सपत्नीक शाहदरा में किराये के मकान में रहते थे। मेरा तो खैर वहां अपना घर ही था। —— तो 1980 में धनंजय जब 'कादम्बिनी' में उप संपादक होकर आये तो मिलने–जुलने की फ्रीक्वेन्सी कम होने लगी। दोनों अपने–अपने क्षेत्र में कड़ी मेहनत कर अपनी जगह बना रहे थे। समय और श्रम दोनों जरूरी थे। सो मिलना–जुलना कम होता गया। पर जब भी मिले चाहे महीनों बाद, रिश्तों का टटकापन उपस्थित। यकीनन, धनंजयमुझे स्नेह करते हैं और यह स्नेह बढ़ता गया। मुझे भी उनसे बहुत कुछ जानने–सीखने का लाभ मिला। वे एक अच्छे शिक्षक भी हैं। बड़े भाई तो हैं ही। अपनी किस्म के खूबसूरत लगने वाले सहज रौबदाब में तो वे रहते ही रहे हैं मगर चैधराहट उन्होंने कभी नहीं दिखाई या चलाई।

हमारी मुलाकात गाजियाबाद में हुई थी। सन् रहा होगा 1970। मैं महानंद मिशन हरिजन कॉलिज से हिन्दी में एम– ए– कर रहा था। भाई धनंजयभी हिन्दी ही में एम– ए– कर रहे थे। कॉलिज में उनकी बड़ी साख थी। विभाग के सारे अध्यापक उनके सदगुणों का जिक करते थे। मैंने उनका नाम तो काफी सुन लिया था पर सामने से देखा नहीं था। वे सामने आये भी हों तो मैंने उन्हें पहचाना नहीं था। एक दिन हमारी कक्षा में हमारे शिक्षक डॉ– कुंअर बेचैन (जो जाने माने गीतकार–गजलकार हैं) ने एक प्रपत्र् पढ़कर सुनाया। यह एक निवेदन–पत्र् था जो भाई धनंजय सिंह ने लिखा था और जिसे जूनियर–सीनियर छात्रें की कक्षाओं में सबकी जानकारी के लिए भेजा गया था। निवेदन था कॉलेज से निकलने वाली हस्तलिखित पत्रिका में रचनाएं

भेजने के लिये। निवेदन सभी के लिए था, छात्रें के लिए भी, शिक्षकों के लिए भी था। डॉ– कुंअर बेचैन ने हमें बहुत ही प्रभावी ढंग से धनंजय सिंह के गीतों के बारे में बताया। उन्होंने कहा– उनके गीतों में उनकी अपनी शैली है, उनका अपना 'पन' है। एक बार उन्हें सुन लेने पर उनकी पंक्तियां देर तक दिमाग में गूंजती रहती हैं। यह सच साबित हुआ। उन्हीं दिनों मैंने उनके अपने मुंह से उनके दो गीत सुने थे, यानी अब से 36 वर्ष पूर्व। उन गीतों की अधिकांश पंक्तियां मुझे आज भी याद हैं

1– आज पहली बार मैंने
मौन की चादर बुनी है
काट दो यदि काट पाओं तार कोई।

2– हमने कलमें गुलाब की रोपी थीं
पर गमलों में उग आई नागफनी

धनंजयके ही जरिये मेरा परिचय गाजियाबाद के अन्य वरिष्ठ–कनिष्ठ कवियों–साहित्कारों से हुआ। ये थे– कथाकार से–रा– यात्री, गीतकार– प्रेम शर्मा, कवि–कथाकार सोमेश्वर, कवि–कथाकार–सम्पादक, किसलय बन्द्योपाध्याय, कथाकार सुदर्शन महाजन। बाद में तो परिचय का दायरा लगातार बढ़ता ही गया।

एक से बढ़कर एक व्यक्ति। हरेक की अपनी विशिष्टता। हमारे गुरुजन भी अप्रतिम थे। अपने अपने क्षेत्र् के विषेषज्ञ। आचार्य जे– सी– राय हमें तुलसी और रामचंन्द्र शुक्ल की आलोचना–परम्परा पढ़ाते थे। वे इतने सुंदर थे और उनका व्यक्तित्व इतना नयनाभिराम था कि हम विषय से हटकर उनकी शख्सियत में डूब जाते थे। वे जब रामचरित मानस पढ़ाते थे तो कई मार्मिक स्थलों का वर्णन करते वक्त भावुक हो उठते थे। आंखें ढ़लकने लगती थीं। मैं देखता था, कक्षा के कई लड़के–लड़कियां भी रो रहे हैं। मैं भी उनमें से एक होता।

इसी तरह कुंवर बेचैन जब रीतिकालीन रचनाएं पढ़ाते थे तो रोमानी हो जाते थे। कुछ लड़कियां सिर झुकाये लेक्चर सुनती थीं। डॉ– एल– बी– राम अनंत हमें कबीर पढ़ाते थे। कबीर जैसे बीहड़ कवि को इतने सरल ढंग से पढ़ाते थे कि हम उनके बार–बार मुरीद हो जाते। वे बहुत ही भले व्यक्ति थे। उनका स्वभाव हमें 'संत' का सा स्वभाव लगता था। ऐसे वातावरण में भाई धनंजयसे निकटता का अर्थ था– मेरे साहित्यिक पर्यावरण के निर्माण में एक बड़ी मदद। धनंजयके जरिये से ही मैं से–रा– यात्री और सोमेश्वर और किसलय, प्रेम शर्मा, सुदर्शन वगैरह से मिला था, जैसा कि मैंने बताया भी है। ——— तो कॉलिज की हस्तलिखित पत्रिका में रचना देने के वास्ते मैं कॉलेज के पुस्तकालय में धनंजयभाई से मिला। उनके व्यक्तित्व से प्रभावित हुआ। उन्होंने स्नेहपूर्वक मुझसे बात की।

बात करते–करते वे मुझे कॉलिज के बाहर एक चाय की थड़ी पर ले गये जहां हमने चाय पी। मैंने अपनी औनी–पौनी दो रचनाएं उन्हें सौंपी। वे उन्होंने एक फोल्डर में संभाल कर रख लीं। मैंने एक बात मार्क की थी कि जब मैं लायब्रेरी गया था तब किताबों के साथ–साथ एक बहुत पुरानी सी छतरी रखी थी, जिसे वे अपने फोल्डर और किताबों के साथ ही उठा लाये थे। एक हाथ से वे फोल्डर और किताबें

संभाले थे, दूसरा हाथ छतरी को टेक कर चलने में व्यस्त था।

हम चाय पी रहे थे कि हमारे पीछे, बायीं तरफ एक बड़ा सा हंसी का फव्वारा छूटा। भाई धनंजयने बताया था वे हैं जाने–माने कथाकार से–रा– यात्री। यात्री जी असामान्य रूप से लम्बे थे। बाल कुछ घुघराले से, लटें कुछ लच्छेदार सीं, कुछ–कुछ छलियाओं वाली। झक् सफेद, कलफ लगा कुरता पायजामा। यात्री जी ने सचमुच प्रभाव छोड़ा। उनकी आवाज में खनक थी। उनके साथ चश्मा लगाये सांवले से रंग के, दरम्याने कद के पतले से, कुछ–कुछ राकेश खन्ना के स्टाइल के बालों वाले एक सज्जन और थे। यात्री जी कह रहे थे– तो चाचा छतरी वाले क्या खबरें हैं ? एक बार फिर मेरा ध्यान धनंजयकी छतरी पर गया। वह छतरी इतनी घिसी–पिटी और इस्तेमाल में आ चुकी थी कि 'कबाड़' लग रही थी। लेकिन 'तो चाचा छतरी वाले' कहा गया है तो मैंने मान लिया कि वह छतरी उनके व्यक्तित्व का स्थायी आइटम है। यह था भी। इन 36 वर्षों में भाई धनंजयने अनेक छतरियां बदलीं कि लगता है जैसे उनके व्यक्तित्व पर उन छतरियों के स्थायी अक्स रह गये।

इसी बीच धनंजयने मेरा परिचय यात्री जी और सोमेश्वर से कराया। मेरा नाम बताया गया– कुबेरदत्त शर्मा रसिक। जी हां मैं यही था उन दिनों। यात्री जी चैंके– यार ये क्या हुआ रसिक। किस युग में रह रहे हो ? "किसने रखा ये उपनाम ?" इसके पहले कि मैं उन्हें बताता कि "मेरे कवि पिता चाहीराम 'सरस' ने हायर सेकेण्ड्री के दिनों में पहली बार मेरी कविताएं सुनकर यूं ही, शायद हंसी –मजाक में ही, मुझे 'रसिक' उपनाम दे दिया था जिसे पिता का आशीष समझकर मैंने अपने साथ चिपका लिया था। " मगर मेरे जवाब देने से पहले ही धनंजयबोल पड़े: 'आप भी तो सेवाराम यरस्तोगी या बंसल या ऐसा ही कुछ जाति सूचक नाम थाद्ध —— हैं, यात्री तो बाद में जुड़ा। ' ठीक है यार, मेरा नाम बिगड़ गया तो भी क्या नयी पीढ़ी अपने नाम के साथ ये सब क्यों चिपकाये? फिर मेरी तरफ मुखातिब होकर वे बोले– 'काटो यार', पिता को भी काटो, छोड़ो 'रसिक', आज से तुम केवल 'कुबेर दत्त' हो। और यह सच है कि मैं बिना किसी उपनाम के महज अपने नाम के साथ जिया। जो यश–अपयश मिला, इसी नाम को मिला। इसके पीछे आदरणीय यात्री जी का आदेश था। मैंने उनसे बहुत कुछ सीखा। वह मेरे जीवन में फलित भी हुआ। वह कहानी फिर कभी।

मैंने देखा– पान की गिलोरी दबाये यात्री जी अपने शिष्यों के साथ उठ लिये और कुछ इस अंदाज में चले गये कि 'यारो आप लोग जमे रहो। मैं चला किसी मुहिम पर। '

यात्री जी गये तो हमने देखा, उसी दिशा से एक दरम्याने कद के, मगर गठे बदन के, चेहरे पर चेचक के दाग लिये, पैंट–शर्ट पहने, कुछ घने बालों वाले, चश्मा चढ़ाये एक सज्जन हमारी तरफ बढ़ रहे थे। यात्री जी के जाने और नये व्यक्ति के आने के कुछ ही क्षण के अंतराल में धनंजयमेरा परिचय उस व्यक्ति से करा चुके थे जिसका नाम सोमेश्वर था। कवि–कथाकार, सोमेश्वर। —— तो यात्री जी की दिशा से जो व्यक्ति आये–सबने उन्हें गुरुजी कहकर प्रणाम किया। ये थे मशहूर गीतकार, प्रेम शर्मा। मैंने उनके गीत 'धर्मयुग' और ज्ञानोदय में पढ़ रखे थे। मुझे वे कतई नये ढंग के गीत लगे थे। मेरा परिचय भी करा दिया गया था। —— तो गुरु जी ने लगभग आदेश दिया– 'यहां से उठो यार, वहीं चलते हैं। मैं 'वहीं' का मतलब नहीं समझ पाया। हम लोग गुरु जी' प्रेम शर्मा के साथ शहर की गलियों, मुहल्लों, सड़कों को पार करते हुए अंततः एक 'सुनसान' में पहुंच गये। बस्तियां काफी दूर–दूर नजर आ रही थीं। शाम हो रही थी। बस्तियों में बिजली के लटू जलने लगे थे। दूर रेल लाइन से कभी –कभी किसी गाड़ी के गुजरने की आवाज आती थी। हमने देखा– वहां दो पुराने पेड़ थे और एक पुराना कुआं था। मैंने अनुमान लगाया यहां या तो खेती होती है या होती रही होगी पर लगता है– नयी बस्तियों के लिये प्लॉट कट रहे हैं। बहरहाल हम चारों– मैं, धनंजय, सोमेश्वर और गुरु जी, सबने अपने बैठने की जगह चुन ली। गुरु जी और

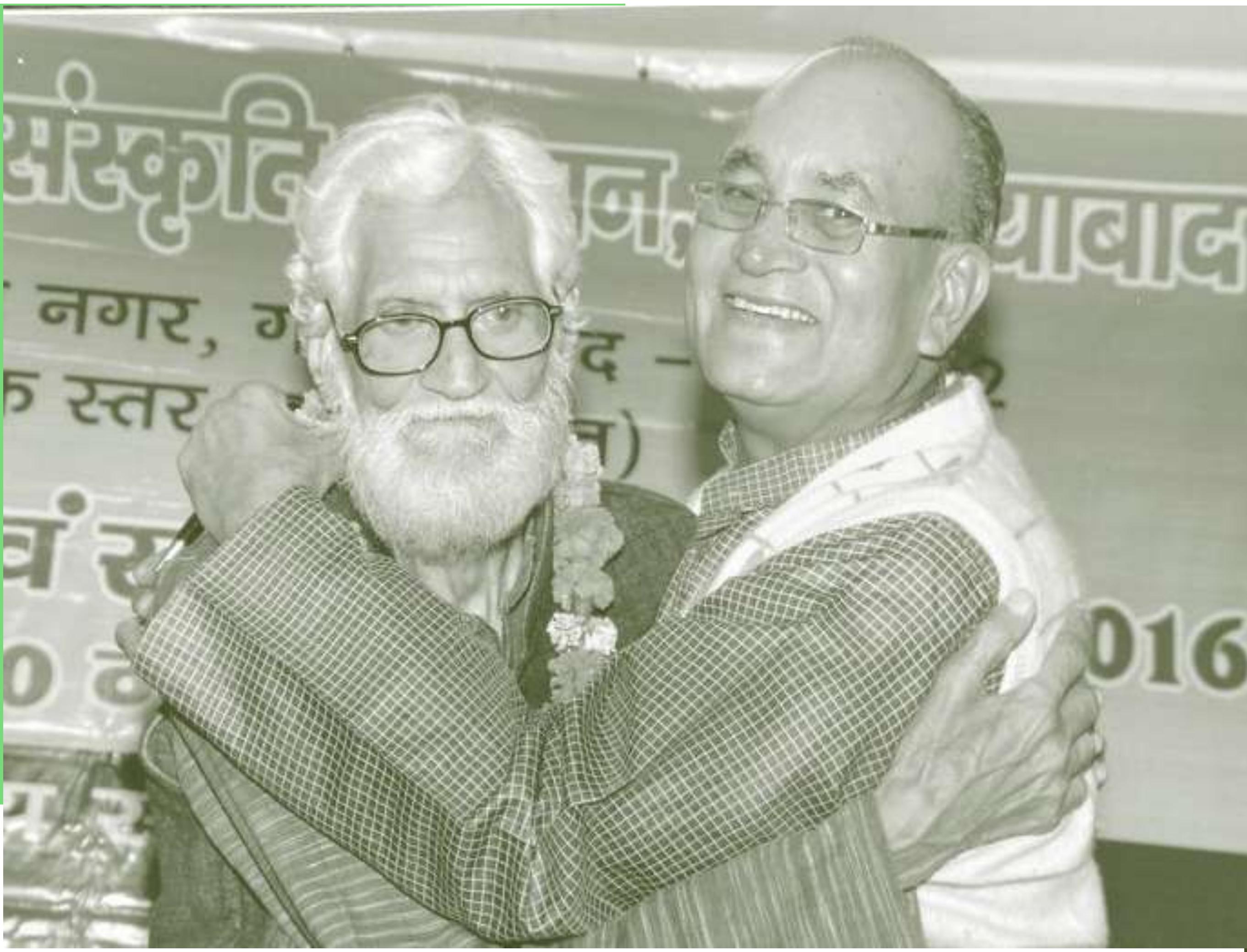

धनंजयकुएं की जगत पर बैठे। मैं और सोमेश्वर वहीं पड़े दो बड़े–बड़े पत्थरों पर। पूरा वातावरण कुछ–कुछ रहस्यमय सा लग रहा था। निपट शांति थी। मैंने देखा– गुरु जी हथेली पर कुछ मल रहे थे। फिर उन्होंने उसकी एक गोली सी बनाई। मुंह में लिया निगल गये। कंधे से लटके थैले से पानी की कांच की बोतल निकाली। दो–चार चूंट पिये। मुझे लगा– भीतर जो पदार्थ गले में, यदि अटका खड़ा था तो वह, यह जा, वह जा हो गया होगा। फिर गुरु जी ने बड़े इत्मीनान से एक सिगरेट सुलगाई। दो–चार कश लगाने के बाद वे मुझसे मुखतिब हुए। पूछने लगे– क्या करता हूं। धनंजयने बात को लपका और मेरा जो थोड़ा–बहुत परिचय था, दे दिया। धनंजयने ये भी जोड़ा था– गीत वगैरह लिखते हैं। गुरु जी ने सिगरेट का धुआं छोड़ते हुए लगभग आदेश भरे लहजे में कहा– 'कुबेर हमें भी तो कुछ सुनाओ। '

उनके कहने में एक कशिश, एक कौंध, एक चुम्बक। एक पकड़। मैंने महसूस किया– मेरी पूरी देह चार्ज हो गई। मै गा रहा था:

चेहरों की भाषा में तुम कह न सकोगे अपनी बात...

मैंने दो ही छंद गाये और चुप हो गया। गुरु जी प्रेम शर्मा अपनी जगह से उठे और उन्होंने मेरा माथा चूम लिया। जीवन भर मैंने महसूस किया– मेरे माथे पर गुरु जी का चुंबन एक ऐसी चेतना धारा है जो माथे से शुरू होकर मेरी नाभि तक, सुषुम्ना तक जाती है। इसके बाद भाई धनंजय सिंह ने अपना गीत सुनाया।

गुरु जी आंखें बंद किये सुनते रहे। धनंजयरुके तो उन्होंने आंखें खोलीं। मुझे वे कुछ–कुछ लाल दिखाई दीं। वे उस हलके अंधेरे में चमक रही थीं। वे उठे और उंगली का इशारा कर लघुशंका के लिये चले गये।

इस बीच मैंने धनंजयसे पूछ लिया वह गोली क्या बला थी, जिसे पानी से नीचे उतारा था। धनंजयने कहा– 'भांग'। सुनकर मैंने थूक निगला। गुरु जी के लौटने के पहले। सोमेश्वर ने हाथ खड़े कर दिये थे कि उसके पास कोई गीत उपलब्ध्नहीं है। गुरु जी लौट चुके थे। सबने उनसे आग्रह किया कि वे अपनी रचना सुनाएं। और तब मैंने पहली बार उन्हें सुना। वे तन्मय होकर गा रहे थे। गीत क्या था। लगा था– शब्द, स्वर, संगीत सबने पूरी कायनात को कवि की रचना में बदल दिया है। गुरु जी के वे शब्द मेरे लिये ऐसे थे जैसे चारों दिशाओं में आग भड़क उठी थी और उसमें से नन्हे–नन्हे इंद्रधनुष निकलकर हवा में उड़ कर चारों दिशाओं में बल्कि दसों दिशाओं में फैल रहे थे और वे अश्रुपूरित थे। मैंने ऐसा गीत पहली बार सुना था। मैंने मन ही मन भाई धनंजय सिंह को धन्यवाद दिया जिनकी बदौलत मैं एक अनूठे

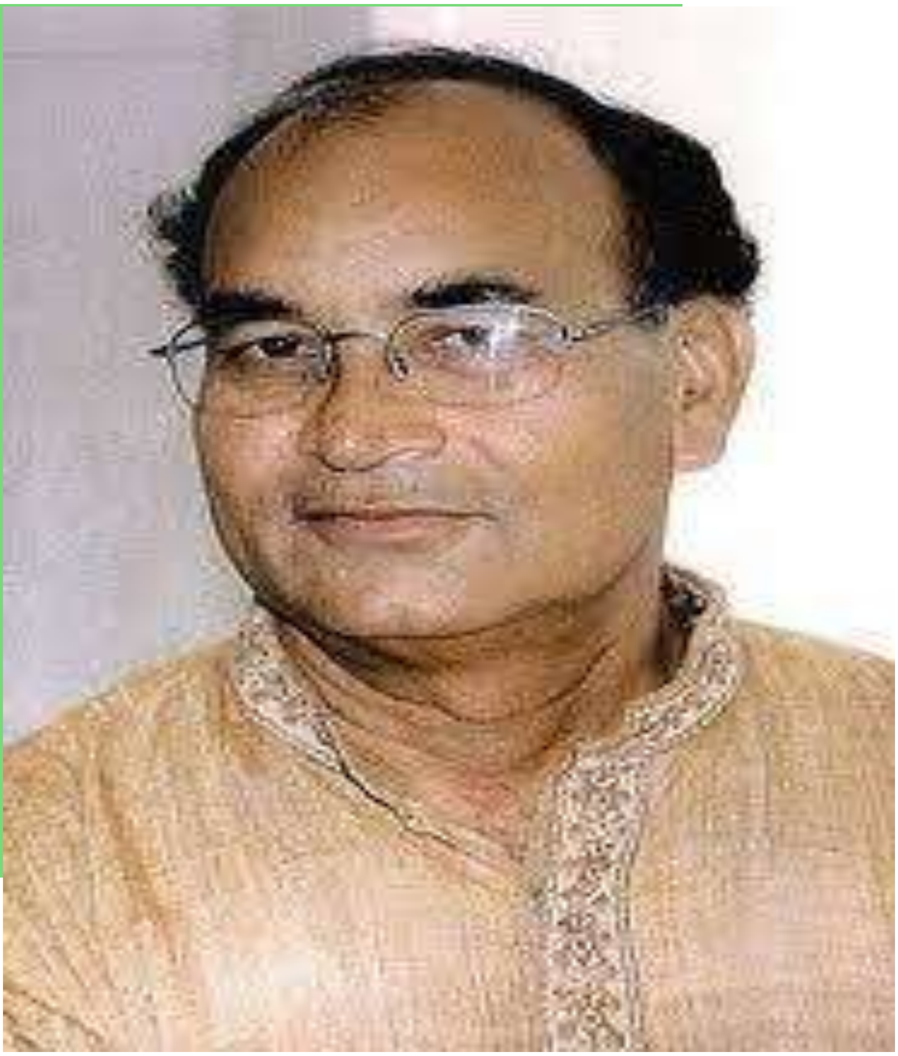

गीतकार से मिला और प्यारे गुरु जी से। वह शाम हमेशा मेरे जहन में ताजा रही। उस शाम ने हम चारों को मुझे, धनजंय भाई, सोमेश्वर और 'गुरु जी' को सूत्रबद्ध कर दिया था।

धनंजयभाई से खूब बनने लगी। वे मुझसे बड़े थे, बड़े हैं लेकिन कभी भी उन्होंने अपनी उम्र मेरे ऊपर नहीं लादी। वे हमेशा ही दोस्त बने रहे। लेकिन ऐसा भी नहीं कि उन्होंने कभी 'बड़े भाई साहब' होने के अधिकार का इस्तेमाल न किया हो। जब कभी उन्हें लगा कि वे दृढ़ता से कोई बात समझाना चाह रहे हैं तो हमने उनकी दृढ़ता का मान रखा।

एक बार हम सोमेश्वर के घर पर इकट्ठा हुए। माता–पिता किसी पारिवारिक समारोह में शिरकत करने के लिये शहर के बाहर गये हुए थे। —— तो घर पर हमारा कब्जा था। तरल गरल गोष्ठी का आयोजन हुआ। नशा पहले गुलाबी हुआ, फिर लाल, फिर महरून। भाई सोमेश्वर ने न जाने क्या कह दिया कि अचानक 'चाचा छतरीवाले' को गुस्सा आ गया। उन्होंने सोमेश्वर के गाल पर तड़ातड़ दो थप्पड़ जड़ दिये। मगर सोमेश्वर पूछता ही रह गया कि उसका दोष क्या था' मुझे भी ठीक से याद नहीं पड़ता कि सोमेश्वर ने ऐसी कौन सी कच्ची बात कह दी थी कि चाचा बेकाबू हो गये। —— बहरहाल यह खुद चाचा को भी लगा कि उन्हें कन्फयूजन हुआ था और मुगालते में ही उन्होंने सोमेश्वर की पिटाई कर दी थी। उन्हें इतना अफसोस हुआ कि वे काफी देर रोते रहे। कॉलिज से एम–ए– करने के बाद धनंजय सिंह ने काफी पापड़ बेले। योग्य होने के बावजूद उन्हें सही नौकरी नहीं मिली। उन्होंने कई छोटी–मोटी नौकरियां की और वे दिल्ली के डेसू में क्लर्क हो गये। एम–ए– के दौरान एकाधबार, एम–ए– के बाद बेरोजगारी के दिनों में अनेक बार डेसू– दफ्तर जाना हुआ और मुझे अच्छा ही लगा यह देखकर कि भाई धनंजय सिंह अपने दफ्तर में खासे लोकप्रिय हैं। एक बार मैं उन्हें रेडियों के 'युवावाणी' चैनल के दफ्तर ले गया। वहां मैं पहले ही से जाया करता था। प्रोड्यूसर थीं कमला शास्त्री। वे युवा प्रसारकों को आगे लाने के लिए मशहूर थीं। उन्होंने धनंजयभाई को पंजाबी की मशहूर कवयित्री अमृता प्रीतम से इंटरव्यू करने की जिम्मेदारी सौंपी। इंटरव्यू हुआ और बहुत ही अच्छा। उसके बाद तो धनंजयभाई ने युवावाणी में कई कार्यक्रम किये।

एम–ए– के बाद मैंने और सोमेश्वर ने नई दिल्ली के 'भारतीय विद्या भवन' में पत्रकारिता के डिप्लोमा कोर्स में दाखिला ले लिया। डिप्लोमा करने के एक साल के दौरान मैंने, सोमेश्वर ने और धनंजयभाई ने दिल्ली की कई कवि गोष्ठियों में शिरकत की। ये मंचीय किस्म की गोष्ठियां थीं। धनंजयभाई ने इसी बीच कवि सम्मेलनों में जाना शुरू कर दिया था और वे वहां जम रहे थे। बाद में कुछेक बार मुझे भी वे दिल्ली के बाहर के कवि सम्मेलनों में ले गये। और बहुत जल्दी मुझे अपने लिये पता चल गया कि ये मंच मेरे लिये नहीं है क्योंकि इनके लटके–झटके मैं कभी सीख नहीं पाऊंगा। अलबत्ता पिछले 35–36 वर्षों से धनंजयभाई मंचों पर जाते हैं और बिना किन्हीं लटकों–झटकों के, केवल अपनी कविता के बलबूते पर वे मंच पर जमे रहे हैं। 1971–72 के दरम्यान मैं भी नौकरी के चक्करों में भटकता था। कई छोटी–छोटी नौकरियां की थी लेकिन अंततः 1973 में दूरदर्शन, दिल्ली में प्रोड्यूसर हो गया। अपने बैच का में सबसे कम उम्र का प्रोड्यूसर था। मुझे दूरदर्शन जैसे कई नये माध्यम में अपनी जगह बनानी थी। मुझे कड़ी मेहनत करनी पड़ी और यकीनन मैंने अपनी जगह बनाई। मेरे परिचय का दायरा बढ़ा। साहित्यकारों, सम्पादकों, पत्रकारों से मेलजोल बढ़ा। तभी डेसू को अलविदा कहकर 1980 में भाई धनजंय सिंह हिन्दुस्तान टाइम्स बिल्डिंग में आ गये। 'कादम्बिनी' के उपसंपादक हो कर। पिछले 26 वर्षों में 'कादम्बिनी' ने जितना विशद, आकर्षक, महत्वपूर्ण काम

किया। निश्चित रूप में उसमें भाई धनंजय सिंह का भी अवदान होगा।

कुछ लोग अक्सर कहते आये हैं कि धनंजय सिंह की सोच में ठकुरैती है। पर मैं कहूं, मुझे तो ऐसा तो कभी कुछ नहीं लगा। वे जातिवाद, वर्गवाद के सख्त खिलाफ हैं। उनके जीवन और व्यहार में भी मुझे कहीं कोई 'ठाकुर' नजर नहीं आया। जीवन में नहीं, व्यवहार में नहीं, सोच में नही तो उनके सृजन में भी कहां से आयेगा। धनंजय सिंह एक मध्यवर्गीय परिवार से आते हैं और उनका पूरा जीवन भी सादगी भरा ही रहा है। कड़ी मेहनत करके, थोड़ी बहुत बचत कर, कर्ज लेकर गाजियाबाद में उन्होंने अपना जो मकान बनवाया वह भी किसी 'ठाकुर की हवेली' नहीं एक कवि का 'मितवाघर' है। अन्य प्रदेशों के कविगण जब भी दिल्ली आते है। तो सुविधा के लिए उन्हीं के घर ठहरते हैं। वे अपने दोस्तों के बीच सदाबहार बने रहते हैं। अनेक बार कई गंभीर बीमारियों से जूझे लेकिन हर बार व्याधियों को पछाड़ कर वे अपने देह–धर्म को निभाने में कामियाब रहे। जीवन साथी के रूप में उन्हें जों संगिनी मिली वे भी उन जैसी ही। उनके घर में जो अच्छा है, सुंदर है, महकता हुआ है, वह दोनों की भागीदारी और परस्पर आदर के कारण है। उन्होंने एक नये जमाने के पुत्र् को, नये जमाने की जरूरतों के मुताबिक पाला–पोसा। उसमें गणतांत्रि‍क सोच के संस्कार पोषित किये। अपने रहन, सहन, सोच, विचार में

धनंजय सिंह एक खुले जनतांत्रिक व्यक्ति व रचनाकार के रूप में सर्व विदित हैं।

वे छपे भी, मंचों पर भी गये। लेकिन उन्होंने अपने गीतों को कभी भी श्रेणीबद्ध नहीं किया। अपनी शर्तों पर ही उन्होंने मंचों पर शिरकत की और वे गीतकार बने रहे, 'मंचीय' नहीं बने। उनके गीत, 'साहित्य' का महत्वपूर्ण हिस्सा हैं। कई शोधार्थियों के लिए वे गीत, महत्वपूर्ण संदर्भ सामग्री हैं। वे छात्रें, शिक्षकों, साथ ही गीतकारों, संपादकों और आम रसिकजनों के बीच समान रूप से स्वी॥त–समादृत हैं।

यूं तो किसी रचनाकार का मूल्यांकन कभी भी 'एकबारगी' में सम्पन्न नहीं होता। और उसका कालखंड भी सुनिश्चित नहीं है लेकिन फिर भी उनके गीतों, गजलों और गद्य–कविताओं में ऐसे अनेक तत्व हैं जिनसे उनके काव्य–कार्य की विशिष्टताएं स्पष्ट होती हैं– मसलन उनके गीत, इस रूप में 'नवगीत' है कि वे चंदनगंधी, कस्तूरी, रेशमी, शरबती, फागुनी, बासंती, रसवन्ती जिन्दगी के सुकोमल अक्स नहीं बनाते, बल्कि वहा, 'टूटता हुआ आदमी', 'नागफनी', 'मरघट', 'सूनी पगडंडी', 'भ्रम', 'मौन की चादर', 'मझधार', 'पदचाप', 'लाल–हरी बत्तियां', 'विलाप', 'पोखर', 'गड्ढे', 'छाले', 'चीते जैसी घात', 'बियाबान', 'बालू का कहवा', 'कांटे', 'संध्या', 'अज्ञातवास', 'कालवूळट', 'युद्ध भूमि', 'युयुत्सु पीढ़ी', 'बृहन्नला', 'आग', 'डर', 'आघात', 'संपेरा', 'घड़ियाल', 'टूटती टहनियां', 'अजनबीपन', 'नीले सियार', 'चप्पू', 'उल्काएं', 'त्रसदी', जंगल, मरुथल, सिहरन, स्याह, डूबे जहाज। 'सन्नाटे', 'पत्थर की नाव', 'बालू के टीले', 'चीलों के झुंड', 'हैवानियत', 'ढ़लान', 'जख्म', 'अंधा कुआं', 'दीवार', 'लिजलिजे पेट का गोश्त', 'ऐंठती अंतड़ियां', 'थकान', 'पगलाया वर्तमान', 'आंतें', और 'तिर्यक रेखायें' ज्यादा हैं। आज की जिन्दगी में सुखद कम दुखद ज्यादा है। अधिकांश लोग अन्याय और दमन के शिकार हैं। सुख, सुविधा, मौके, आराम, तरक्की ये सब मलाईदार तबके लिये हैं। अधिसंख्य जनता दुखी है। परेशान हाल है। मजबूर किसान पीड़ित हैं। किसान आत्महत्यायें कर रहे हैं। लड़कियां औरतें बलात्कार की शिकार हैं। धनंजयके यहां खयाली प्रसन्नताओं के न तो बिम्ब हैं, न छायाएं। वहां नग्न यथार्थ है और नग्न यथार्थ, बदरुहा, अश्लील और त्रासदीपूर्ण है। कुछ नमूने देखिये:

हमने तो अनुभव के हाथ
बेच दिये हैं मीठे सपने

छालों को
छीलेंगे तेरे
सपनों के महलों के खंडहर
चमड़े के टुकड़े बिन प्यासा है
आंगन–चैबारे का नल
हमने कलमें
गुलाब की रोपी थीं
पर गमलों में उग आयी नागफनी
सम्बन्धों से हम
जुड़े रहे यों ही
ज्यों जुड़ी वृक्ष से हो टूटी टहनी
तुमने दिनमानों के साथ साथ
बदली हैं केवल तारीखें
पर बदली घड़ियों का व्याकरण
हम किस महाजन से सीखें
ऊंचे ऊंचे
सार्थक मनोबल
बैठ गये हैं माला जपने
छप छप करती नाव हो गई
बालू का कछुवा
दूर किनारे पर जा बैठा
बंसीधर मछुआ

सीटियां देने लगी है रात
अब डर लग रहा है
एक सूरज का बदन काला हुआ
ताप किरणों का जमा पाला हुआ
हर शहर में एक चसनाला हुआ
पूंछे उपलब्धियांहुई
खेलते हुए सांप–सीढ़ी
मंत्रि–निस्तब्धसो गई
युद्ध भूमि में युयुत्सु पीढ़ी
टूटता जब आदमी है
कंठ में रुंघती नहीं तब चीख
कौन समझे
जिन्दगी का चाव
इस निर्मम सदी में
उड़ गये ऐसे दिगन्तों को
पक्षियों के पर नहीं लौटे
पुष्प मालाएं बनी तक्षक
तितलियों का कौन हो रक्षक
तैरायें
कब तलक कहो
पानी में पत्थर की नाव
बालू के टीलों पर
सपनों के महलों का
रोकें हम कैसे बिखराव
सुबह सुबह
नील कमल ताल पर
उतर गये चीलों के झुंड
प्रवचन की मुद्रा में
श्वेत बकुल आ बैठे
मस्तक पर धारकर त्रिपुंड
कितनी पगडंडियों को लील गईं
कैसी साजिश पे तुल गईं सड़कें
——अंधों को पीट पीट कर गूंगे बना दिया
मर्दानगी वहां से कहां तक पहुंच गई
ख्वाब मखमल के संजोये थे कई
उड़ गया सब का मगर रेशा–रुआं
मुझसे नहीं
इस सहमे वातावरण से पूछो
और ठहरे हुए समय से पूछो
यात्र और ठहराव के बीच
अवकाश की
असंभाव्य स्थितियां खोजना
अथवा
पिछली खिड़की से झांकते
हुए अरण्य के
दुरन्त विस्तार में भटकना
इन
समान्तर रेखाओं को
काटने वाली तिर्यक रेखा
आखिर कहां है ?

जीवन, भारतीय जीवन, परिवेश, समाज में माना कि अंधेरा ज्यादा है मगर उजाला नदारद हो, उम्मीद गायब हो, आशा बिला गई हो, संभावनाएं शून्य हो गई हों, ऐसा भी नहीं है। धनंजयकी ऐसी रचनाएं भी हैं जिनमें उम्मीद का उजियारा है, जैसे:

मन पर घिरा आंधियों वाला
मौसम बीत गया
इंन्द्रधनुष रचती किरणों का
फूटा गीत नया
आज फिर बरबस खिले हैं
फूल सरसों के
प्यार का फूल तो खिल गया
तुम इसे रूप, रस गंद्धदो
शब्द तो मिल गये गीत को
तुम इसे ताल, स्वर, छंद दो

डॉ– धनंजयसिंह व्यक्तित्व और कृतित्व

डॉ– रमेश कुमार भदौरिया

श्रद्धेय डॉ– धनंजय सिंह से मेरा प्रथम परिचय वर्ष 1973 में गाजियाबाद में एक काव्य समारोह में अकस्मात् ही हुआ। समारोह परिसर में एक स्थान पर खड़े कुछ स्थानीय परिचित कवि मित्रें से मैं कविताध्गीतों के स्तर में हो रही गिरावट पर चर्चा कर रहा था, तभी वहॉं डॉ– धनंजय सिंह आये और जारी चर्चा को चुपचाप खड़े होकर सुनने लगे। मैं उन्हें जानता नहीं था। वहॉं खड़े सभी लोगों ने उनसे सादर अभिवादन किया तो मेरी उन्हें जानने की जिज्ञासा हुई। समारोह प्रारम्भ होने में अभी देर थी। चर्चा इस विषय पर चल रही थी कि कविता लिखने वालों की संख्या तो बेहतहाशा बढ़ी है पर कविता के आधारभूत तत्वों का ज्ञान रखने वाले दो चार ही हैं। साथ ही पुराने स्थापित गीतकारोंध्कवियों का उचित मार्गदर्शन प्राप्त न होने के कारण स्तरीय गीत व कविताएं बहुत कम प्रकाश में आ रही हैं। मैं भी यही धारणा रखता था। कुछ देर शांति से चर्चा सुनते रहने के बाद डॉ – धनंजय सिंह बोले कि पहले शहर में काव्य सम्बन्धी परिचर्चाएं हुआ करती थीं पर मंचीय प्रशंसा की ललक पाले हुए अधिकांश नवोदित युवा कवि अपनी कविता की आलोचना या समालोचना सुनना ही नहीं चाहते और यदि कोई जानकार कवि उनकी कविता में सुधार सुझाता है तो अत्यधिकबुरा मानते हैं और कभी कभी तो सुझाव देने वाले का निरादर भी करने लगते हैं। उन्होंने, कविता के स्तर को गिराने सम्बन्धी अन्य और कई कारण बताए – जैसे – मंचों पर चुटकुलों या फूहड़ व द्विअर्थी शब्दावली का स्थान पाना तथा आयोजकों को विभिन्न निहित स्वार्थों व निम्न स्तरीय तथाकथित कवियों को शामिल करना आदि।

मैं, डॉ– धनंजय सिंह की तर्कपूर्ण बातचीत व शान्त, सौम्य एवं निर–अहंकार व्यक्तित्व से बहुत प्रभावित हुआ और उनसे अपने व उनके परिचय का आदान प्रदान किया। मैंने उनसे कभी मिलने की इच्छा भी प्रकट की जिसे उन्होंने बड़े सत्कार भाव से स्वीकार कर लिया और फिर एक दिन फोन करके मैं उनके आवास पर पहुंच गया तथा मेरे आग्रह पर उन्होंने अपने चार पॉंच गीतध्कविनाएं सुनाई। कविताओं के स्तर से मैं अभिभूत था। सच में मैंने इतने स्तरीय गीत इससे पूर्व सुने ही नहीं

थे। उन्होंने मुझसे भी मेरी एक दो रचनायें सुनी और मेरा उत्साहवर्धन किया। बाद में वे सभी गीत मैंने उनकी पुस्तक ''दिन क्यों बीत गए'' में बार–बार पढ़े। कुछ दिनों बाद उन्होंने मुझे अपनी संस्था ''अमर भारती साहित्य संस्कृति संस्थान'' का सदस्य बना लिया।

डॉ– धनंजय सिंह की कविताओं की समीक्षा करने का साहस करना मेरे जैसे अल्पज्ञानी के लिए धृष्टता ही नहीं एक अपराद्धहोगा। पर यहाँ मैं उनके कुछ गीतों को पढ़कर मुझे जो अनुभूति हुई उसकी तथा उनके व्यक्तित्व के बारे में कुछ चर्चा करना चाहूँगा।

प्रथम मैंने यह पाया कि प्रकट रूप से उनका व्यक्तित्व आक्रामक नहीं है तथा अपनी बात शांत व सौम्य भाव से कहते हैं, परंतु किसी तथ्य पर अपनी असहमति भी स्वर से नहीं शब्दों की दृढ़ता से व्यक्त करते हैं। वे कभी अपनी बातचीत में भ्रमित यब्वदनिमकद्ध प्रतीत नहीं होते और अपनी धारणाओं के प्रति स्पष्ट व विश्वस्त रहते हुए भी अपनी किसी भूल या त्रुटि को तुरंत स्वीकार कर लेने में किंचित भी विलम्ब नहीं करते हैं।

वे एक लम्बे समय तक ''कादम्बिनी'' जैसी प्रतिष्ठित साहित्यिक पत्रिका के मुख्य कार्यकारी सम्पादक के रूप में कार्यरत रहते हुए अनेक समकालीन नामी गिरामी साहित्यकारों– कवियों–लेखकों तथा सम्पादकों के सम्पर्क में रहे हैं तथा उनके पास अद्भुत साहित्यिक संस्मरणों का भंडार है। वे रूस, इथियोपिया, केन्या, जर्मनी, आस्ट्रिया आदि लगभग 25 देशों की साहित्यिक यात्रएं कर चुके हैं और सम्मानित हो चुके हैं। अनेक शोद्धग्रंथों में उनकी रचनाएं उद्धत हुई हैं। वे सौ से अधिक पुस्तकों का प्रकाशन ध् सम्पादन वे कर चुके हैं। उनका लेखन बहुआयामी है। कविता, कहानी, समीक्षा, लेख, भेंट वार्ताएं, संस्मरण, अनुवाद आदि अनेक विधाओं में उनकी लेखनी चली है। उन्होंने ओमपुरी व रोहिणी हटंगड़ी अभिनीत तथा दिनेश लखनपाल द्वारा निर्देशित फिल्म ''अन्तहीन'' में गीत लेखन किया है और डॉक्यूमेंट्री फिल्म ''चलो गॉव की ओर'' यअंग्रेजी मेंद्ध में पटकथा लेखन किया है। उनके स्तरीय गीतों की दो पुस्तकों ''पलाश दहके हैं'' तथा ''दिन क्यों बीत गए'' के अतिरिक्त लगभग 50 कविता संकलन का सम्पादन उन्होंने किया है। एक दोहा संग्रह, तथा दो कहानी संग्रह प्रकाशनाधीन हैं। परंतु इस सबके बावजूद उनके व्यवहार व बातचीत में कभी भी चेहरा दिखाऊ आत्मश्लाघा की प्रवृत्ति लेशमात्र् भी परिलक्षित नहीं होती है।

जहाँ तक उनकी कविताओं ध् गीतों की विषय वस्तु तथा काव्यात्मकता के स्तर का प्रश्न है तो मैंने उनकी पुस्तकों में अंकित लगभग सभी गीत पढ़े हैं, जिनमें कुछ बातें मैंने उभयनिष्ठ पाई हैं। उनके अधिकांश गीतों में दीन–दुखियों व शोषितों–पीड़ितों की संवेदनाएं व्यक्त हुई हैं। प्रकृति के उपादानों का भरपूर उल्लेख उनके गीतों में हुआ है।

जहाँ वे प्रकृति के उपादानों का व्यक्तिकरण करते हैं, वहाँ अद्भुत आनंद का सृजन होता है। देखें ये पंक्तियाँ –

''चैबारे पर दीपक धरकर बैठ गई संध्या'' या

''वृक्ष देख डाल का विलाप, लज्जा से गड़े रह गए'' या

''वातायन हँस उठे किरण ऑगन में मुस्काई,
धरती छूने हर सिंगार की डाली झुक आई'' या

''खिली कुमुदिनी ने सौरभ के अंकपत्र् बॉटे,
सिहरन जगी रोमकूपों में उग आये कॉटे''

ऐसे ही अनेक उदाहरण उनकी कविताओं में उपलब्धहैं।

कहते हैं कि जब साधना अपने उन्नत स्तरों पर पहुंचने लगती हैं तो जीव मात्र् के लिए प्रेम और करुणा का भाव उत्पन्न होता है तथा शोषितों–पीड़ितों की पीड़ा उसकी अभिव्यक्ति का मूल विषय बन जाती है। ये पंक्तियॉं देखें –

तुम मेरी आवाज सुनो तो उत्तर देना।
मरूथल मरूथल कस्तूरी मृग घूम रहा हो।
प्यासे अधरों को जिव्हा से चूम रहा हो।
दे पाओ तो उसको शीतल निर्झर देना। तुम मेरी आवाज ————————
नीड़ ऑंधियों के झोंकों से उजड़ गया हो।
पंखहीन बच्चा बुलबुल से बिछड़ गया हो।
अगर हो सके तो उसको नूतन घर देना। तुम मेरी आवाज ——————

शोषण की व्यथा की एक और अभिव्यक्ति देखें –

सुबह सुबह नील कमल ताल पर, उतर गये चीलों के झुण्ड।
अभी–अभी नावें ने खोले थे पाल मगर, बह निकली दक्षिणी हवाएं।
रह रहकर भयावना अट्टहास करती हैं, खोल रही यक्षिणी जटाएं। ।
रक्त मांस लज्जा की, ज्वलन गंद्ध उगल रहे।
धूमायित ज्वाल भरे कुण्ड। उतर गये चीलों के झुण्ड। ।

जहॉं तक डॉ– धनंजय सिंह की रचनाओं के काव्य सौष्ठव का प्रश्न है तो अपने अल्प ज्ञान के आधार पर मैंने यह अनुभव किया है कि उनके लेखन में कहीं भी जल्दबाजी या हड़बड़ी नहीं है। शब्द जर्बदस्ती ठूँसे नहीं जाते बल्कि कथ्य व भाव के साथ एक रस होते हुए बहते हैं। तुकांतों का बहुत सहज, भावानुकूल और श्रेष्ठ प्रयोग होता है। अक्सर अनेक कवियों की रचनाओं में किन्हीं विशेष तुकांतों के लिए कथ्य असहज रूप से ठूँस दिया जाता है। पर डॉ– साहब की किसी भी रचना में कहीं भी ऐसा एक भी उदाहरण नहीं मिलता। कुछ तुकांत तो ऐसे हैं जैसे कि व्यक्त किए जा रहे भाव के लिए ही बने हों। जैसे –

हमने कलमें गुलाब की रोपी थीं। पर गमलों में उग आयी नागफनी।
सौंगधों में अनुबंद्ध रहे बॅंधते, पर मन में कोई चुभती रही अनी।
————
सम्बन्धों से हम जुड़े रहे यों ही। ज्यों जुड़ी वृक्ष से हो टूटी टहनी।
————
पूजन से तो इनकार नहीं था पर। अपने घर की मंदिर से नहीं बनी।
सावन भादों के मेघों के जैसा। मन भर भर आया, पीड़ा हुई घनी।

उनकी काव्य चिंतन धारा में मानव जीवन के दर्शनों की गूढ़ रहस्यों ने भी स्थान पाया है। यथा– इन्द्रियों की आसक्ति से जुड़े भौतिक जगत के विषय जब इन्द्रियों के सम्पर्क में आते हैं तो इससे जनित मनोविकार, जीवन में विभिन्न प्रकार के दुखों से भर देते हैं। इस गहन दर्शन को अभिव्यक्त करती डॉ– धनंजय सिंह की यह कविता देखिए –

भाव विहग उड़ इधर उधर दुख दाने चुग आए।
मन में घनी वनस्पतियों के जंगल उग आए।
चीते जैसी घात लगाए कई कुटिलताएं।
मुग्द्धहिरन की आंखों का संवेदन समझाए।
किस किस बियावान के कर्जे जीवन भुगताए।
भाव विहग उड़——

मैं यह अनुभव करता हूँ कि जिन्होंने डॉ– धनंजय सिंह के गीतों को नहीं पढ़ा है, वे यदि एक बार पढ़ेंगे तो इस तथ्य से अवश्य परिचित होंगे कि श्रेष्ठ और स्तरीय गीत कैसे होते हैं।

दिनांक 29–10–2020 को डॉ– धनंजय सिंह ने अपनी वय के 75 वर्ष पूर्ण किए हैं और साहित्य जगत उनके जीवन यात्र का अमृत महोत्सव मना रहा है। उनकी जीवन सहचरी आदरणीय श्रीमती मधु सिंह जी, एक अति संस्कारी और विदुषी गृहिणी हैं। उनका व्यक्तित्व भी मैंने अत्यन्त सौम्य और सत्कार पूर्ण पाया है। मैं आप दोनों के दीर्घायु होने

हम सब- हैं कवि डा– धनंजय सिंह

–डॉ– अतुल शर्मा

हमारे पिता स्वतन्त्रता सेनानी और हिन्दी के प्रतिष्ठित कवि श्रीराम शर्मा प्रेम से संबन्धित पुस्तक का विमोचन समारोह देहरादून में आयोजित हुआ। कार्यक्रम से पहले की तैयारी में सब लगे थे लेकिन एक व्यक्ति ने बैनर उठाया और मंच के पीछे उसे लगाने लगे फिर कुछ युवाओं के साथ मेज पर रखी चीजों को व्यवस्थित करने लगे। कुछ देर बाद कुछ पत्रकार आए। उन्होंने मुझसे पूछा गाजियाबाद से कवि
धनंजय सिंह आ गए क्या ? हमने कहा बिल्कुल आ गए है उन्ही की अध्यक्षता में कार्यक्रम होना है। मैं हॉल के बाहर था उस पत्रकार को लेकर हॉल के अन्दर गया तो व्यवस्था में लगे भाई साहब के पास पहुंच कर बोला अरे भाई साहब ये सब काम हम लोग कर लेगें आप हमारे अतिथि है। जिस पर वे नाराज हो गये और कहा– "अतिथि कह कर मुझे पराया मत करो ये तो मेरे घर का काम है। " फिर मैने पत्रकार से मिलवाया–"यह है प्रतिष्ठित कवि कादम्बिनी पत्रिका से सम्बद्ध डॉ– धनंजय सिंह जी। " पत्रकार अचम्भे में पड़ गया। सोचने लगा कि इतना बड़ा नाम और इतना सरल।

ऐसे ही सरल सहज और गहरे व्यक्तित्व है डॉ – धनंजय सिंह। वो कभी किसी से गुणा, भाग करके नहीं मिलते है। हमेशा आत्मीय भाव से मिलते हैं। उन्होंने कविवर 'प्रेम' पर सशक्त उद्घोघोषण किया। जब चलने लगे तो मैं बहुत संकोच से उन्हें लिफाफा देने लगा। उन्होंने लिफाफा नहीं लिया और बोले अब तुम मुझे वास्तव में नाराज कर दोगे। यह संस्मरण मैं और मेरी बहनें कहानीकार रेखा शर्मा और कवयित्री रंजना शर्मा कभी नहीं भूलेंगे।

आज जब मंचीय कवि एडवांस परिश्रमिक लेकर मंच पर चुटकुले बिखेरते हैं। वहीं कवि धनंजय सिंह साहित्यिक गीतों के साथ काव्य मंचों पर परंपरा के विरुद्ध चलते हुए साहित्यिक गीतों की पताका फहराए हुए हैं और वे जितने अच्छे कवि हैं उतने ही सहज

व्यक्ति भी हैं।

यूं तो उनके सभी गीत उत्कृष्ट हैं पर एक गीत की पंक्ति अत्यधिक गुनगुनाने को मन करता है "हमने कलमें गुलाब की रोपी थी, पर गमलों में उग आई नागफनी। " यह विडम्बना राजनीति से सामाजिक स्थितियों तक फैली हैं।

डॉ– धनंजय सिंह का देहरादून से घनिष्ट आत्मीय रिश्ता रहा है। हम अजबपुर में रहते थे और वहीं उनकी पारिवारिक रिश्तेदार सुश्री ज्योति रावत रहती हैं वो और हमारी दीदी कवयित्री रंजना शर्मा कुछ समय तक एक स्वूळल में अध्यापन कार्य करती रहीं। धनंजयजी जब भी देहरादून आते तो वहीं ठहरते रहे हैं।

एक बार मैंने फोन पर उनसे उनके बचपन के संस्मरण मंगवाए। व्यस्तता होने के बावजूद उन्होंने सबसे जल्दी संस्मरण भेज दिया। दरअसल हम आजकल बड़ों से उनके बचपन के संस्मरण इकट्ठे कर रहे थे। उन्होंने अपने बचपन का जो चित्र् खींचा वह संवेदनशील तो था ही साथ ही एक समय का दस्तावेज भी बना। उन्होंने लिखा– "लगभग तीन साल का रहा हूँगा उससे पहले का तो मुझे याद नहीं। तब की एक स्मृति है। चेचक की महामारी फैली हुई थी। मुझे भी चेचक निकली थी। मुझे याद है कि कमरे में चारों तरफ नीम की टहनियाँ टंगी रहती थी। मेरा इतना बुरा हाल था कि करवट बदलने के लिए मुझे रूई के मोटे–मोटे फाहों से छुआ जाता था। मुँह, नाक, कान सारे बदन पर बडे–बडे फफोले पड़े हुए थे।

मैं खुजा न दूँ इसीलिऐ मेरे हाथों में रूई की थैलियाँ दस्ताने की तरह पहना दी जाती थी। " बचपन पर इतना संस्मरणात्मक रेखाचित्र् उद्वेलित करता है। डॉ–धनंजय सिंह का गद्य भी अदभुत है।

दिल्ली में भी उनसे मुलाकात होती रही। चाहे कादम्बिनी में या हमारे रिश्तेदार के गुलाबी बाग स्थित निवास पर। वे गाजियाबाद से वहाँ आए थे। वहीं नारायण दत्त पालीवाल यस्मृति शेषद्ध भी रहते थे। उस समय हिंदी अकादमी के सर्वेसर्वा थे। लेकिन उनका व्यवहार सहज और पारिवारिक था। डॉ– धनंजय सिंह रिश्तों को बहुत स्नेह से सहेजने वाले इन्सान हैं। फिर चाहे देहरादून स्थित सुभाष रोड वाले हमारे किराए के मकान में आए हों। डॉ– हरिमोहन और विजय किशोर 'मानव' के साथ या फिर महान गीत–यात्री वीरेंद्र मिश्र के पुत्र् के विवाह के दौरान दिल्ली में मुलाकात बेहद सहज और अपनत्व भरी रही। वहीं अन्य साहित्यकारों के साथ माहेश्वर तिवारी और शेर जंग गर्ग सहित कवि सोम ठाकुर से मिलना हुआ।

धनंजयजी सहित सभी हमारे पारिवारिक जन रहे हैं। पर मात्र् धनंजय सिंह ऐसे व्यक्ति मिले जिन्होंने हमें अपने घर चलने को कहा। वैसे दिल्ली में ऐसा अक्सर कम होता है।

बैकुण्ड चर्तुदशी मेला श्रीनगर यगढ़वालद्ध में उनके साथ मंच साझा करने और डॉ– हरिमोहन के सानिध्य में गढ़वाल विश्व विद्यालय परिसर हॉल में हमें बाला वन्दना जुगरान स्मृति सम्मान से नवाजा गया था। वहाँ उन्होंने मुझे जो कहा वह कभी नहीं भूल सकता कि– "प्यारे लोक से जुड़ो। " फिर अपनी चिरपरिचित मुस्कान बिखेरते हुए हम) षिकेष एक गाड़ी में चले आये रास्ते भर उन्होने तमाम वरिष्ठ रचनाकारों के संस्मरण ही नहीं बल्कि उनके गीतों की पंक्तियां तक सुनायी।

डॉ– धनंजय सिंह देश विदेश के साहित्यक आयोजनों में आमंत्रित किए जाते रहे हैं। पर वे हमारे देहरादून के हमारे उत्तराखंड के आत्मीय व्यक्तित्व हैं और ऐसा पूरे देश में यही माना जाता है कि हमारे सबके हैं।

पलाश दहके हैं पर एक प्रतिक्रिया

सतीश सागर

तुम्हें मुझसे
और मुझे तुमसे बातें करनी हैं
तो आओ
बीच से इस भीड को हटा दें

छंद मुक्त कविता की भी एक लय होती है। अमूमन आजकल ऐसा बहुत कुछ लिखा जा रहा है जो सब कुछ हो सकता है पर कविता नहीं हो पाता। उपयुक्त कविता का अंश पलाश दहके हैं डॉ– धनंजय सिंह के संग्रह में प्रकाशित हैं।

डॉ– धनंजय सिंह के संग्रह को पढ़ते हुए कई स्तरों से मुझे गुजरना पड़ा। क्योंकि एक लम्बे अरसे या साफ–साफ कहूं तो बचपन से ही उन्हें सुनताध्पढ़ताध्गुनता रहा हूँ।

उग आयी नागफनी रचना में वह अपनी पीडा को अपने तरीके से व्यक्त करते हैं। समझौतों को नकारते हैं और सहजता उसकी थाती है। उस पर उसे गर्व है। यहां फक्कडपन डॉ– धनंजय सिंह को महत्वपूर्ण बनाता है। बड़ा बनाता है।

मौन को चादर बुनी है में चैलेंज करता है रचनाकार कि अगर कोई काट सकता है मौन की चादर तो काटे। और जिंदगी को मीठा विष समझकर पीना और मुस्कराना इसलिए कि व्यक्ति कहीं मुश्किलों से घबरा ना जाए ''लौटना पड़ेगा फिर–फिर घर'' में रचनाकार को घर पूरी शिद्दत के साथ याद आता है। और वह घर लौटने की बात पुरजोर ढंग से कहता है। पूरी ईमानदारी के साथ कहता ही नहीं स्वीकारता भी है।

दिन क्यों बीत गए रचना इस संग्रह की श्रेष्ठ रचनाओं में से एक है। बिंबों के खूबसूरत प्रयोग से यह गीत बेहद सुन्दर बन पड़ा है।

''प्रहर दिवस मास वर्ष बीते'' एक अलग विषय वस्तु पर लिखा गया गीत है। पूछे उपलब्धियांहुई पंक्ति के माध्यम से रचनाकार बहुत कुछ ऐसा कह जाता है जो हमारे समक्ष घटित हो रहा है।

''अब डर लग रहा है'' रचना में सूरज, अश्वत्थामा इत्यादि के माध्यम से समाज में व्याप्त स्थितियों पर प्रहार करता है रचनाकार।

क्या सुनाऊं में कवि कहता है कि हां बहुत टूटी हुई है गीत की लय क्या सुनाऊं सच में सार्थक टिप्पणी की है रचनाकार ने। और कुछ टूटे न टूटे–हर लड़ाई आदमी को तोड़ती है। व्यक्ति चाहें इसे स्वीकार न करें परंतु होता ऐसा ही है। लड़ाई तोड़ती बहुत भीतर तक है। और यह भीतर का दुख रचनाकार ने स्वयं भोगा है। समझा है तो जाहिर है उसका यह कहना अर्थ तो प्रदान करेगा ही।

कक्षा से भटका हुआ उपग्रह हूं एक अलग

कन्टेंट का गीत है। यह निराशा का गीत ज्यादा है आशा का कम है। असलियत सही आदमी की सच्चाई भी है क्योंकि सही आदमी को कष्ट ज्यादा मिलते हैं। सुख कम मिल पाते है। हां क्योंकि वह व्यक्ति प्रपंची नहीं होता इसलिए उसमें आत्म संतोष बहुत होता है। यही कारण है कि यही बात डॉ– धनंजय सिंह को बड़ा रचनाकार घोषित करती है। हालांकि कवि हारता नहीं है। पूरी जिजीविषा से जुटा हुआ है अपनी तलाश में।

फिर सूख गयी मौसमी नदी एक सशक्त रचना बन पड़ी है। हो गया दक्षिण स्वंय ही वाम में स्पष्टता नहीं है। यहां अस्पष्टता मेरे हिसाब से रचना को कमजोर करती है।

ज्यों डूबे जहाज का पंछी यादों की रचना है। कवि ने स्मृति में बहुत कुछ संजोया है वहीं उकेरा है उसने शब्दों के माध्यम से। उतर गये चीलों के झुंड एक सार्थक रचना है।

डाली–डाली पलाश दहके हैं पर—— एक श्रेष्ठ गीत है इस संग्रह का। कोयल का स्वर पिंजरे में बंदी है। कोयल के माध्यम से रचनाकार अपने तरीके से आज की व्यवस्था की बात करता है और शिष्ट तरीके से विरोद्धभी दर्ज करता है। इसके लिए डॉ– धनंजय बधाई के पात्र् हैं।

आ न सकूँगा में रचनाकार अपनी विवशता प्रकट करता है। यह विवशताउसकी ईमानदारी है।

चंदन वन महकने लगा एक सही प्रेम गीत की तस्वीर प्रस्तुत करता है।

गजलें थोक के हिसाब से लिखी जा रही हैं। लेकिन कितना प्रभावित करती हैं यह एक अलग मुद्दा है। असलियत में फैशन का असर लेखन पर भी पड़ा है। भीतर से कितना कुछ आता है इसकी परवाह ना करके मार्किट की चिंता ज्यादा रहती है। इसी मार्किट ने रचनाकारों को हास्यास्पद और फूहड ज्यादा बनाया है या कुछ ने अपने लिखे को ही मील का पत्थर घोषित कर दिया है। डॉ– धनंजय सिंह हमेशा अपने स्टाईल से जीत रहे हैं। लिखते रहे हैं बहुत की अपेक्षा न करके वे कम और बेहतर की तलाश में रहे हैं। इसी लिए वे भीड़ से अलग दिखाई भी देते हैं।

'डायरी के किसी पृष्ठ पर' एक ऐसी रचना है जो समाज में व्याप्त स्थितियों पर कटाक्ष तो करती ही है साथ में मानवीय संबंधों की भी पड़ताल करती है।

• अब तो सड़कों पर गजल व्यवस्था को बेनकाब करती है। यह गजल ऐसी है जिसे हर युग में सम्मान की दृष्टि से देखा जाएगा। समझा जाएगा।

धुंधमय आकाश का मौसम रचना देश की स्थितियों को उजागर करती है। अपने देश की हालत पर रचनाकार बेहद त्र्स्त है और वह महसूस करता है आखिर यह सब क्यों कर होता रहेगा।

छा गई चुप्पी में चुप्पी के माध्यम से रचनाकार बहुत कुछ समझा जाता है:

थरथराऐ जो आसुँओं के होंठ
तबसरा कुछ सुना गई चुप्पी।

क्या कहिए गजल से में उत्तना प्रभावित नहीं हुआ जितना होना चाहिए। शायद मुझमें कुछ कमी हो।

झर गये पत्ते एक सशक्त गजल जो कि बेहद प्रभावित करती है और पाठक अभिभूत होता

है। धुल गयीं सड़कें रचना में सड़कों के माध्यम से खासे तरीके से रचनाकार ने अपनी बात को उभार कर प्रस्तुत किया है। जब बात चल पड़ी रचना इस संग्रह की श्रेष्ठ गजल है।

अंधों को पीट–पीट कर गूंगे बना दिया
मर्दानगी कहां से कहां तक पहुंच गयी।

बेहतर ढंग से चरित्र् को गढ़ा है रचनाकार ने। एक रोशनदान था– दुष्यंत कुमार के निधन पर लिखी गजल है और सच में ईमानदारी से लिखी गई है। शुरू से आखिर तक पढ़कर पाठक सिर्फ़ प्रभावित ही नहीं होता बल्कि सोचने–समझने पर मजबूर भी होता है। धनंजयजी इस गजलके लिए बधाई के पात्र् है। डॉ– धनंजय सिंह के गीत व गजलें तो सुनी हैं परंतु छंदमुक्त कविताएं छुट पुट ही सुनने व पढ़ने को मिली लेकिन संग्रह में छंद मुक्त कविताएं पढ़कर सच में मैं चमत्।।त सा हुआ। क्योंकि छंद मुक्त कविताओं के नाम पर बहुत कुछ घालमेल सा चल रहा है। क्योंकि मेरा मानना यह है कि जब हम कविता शब्द बोलते हैं तो कविता के साथ लय का होना बहुत ही आवश्यक है क्योंकि लयहीन कविता कविता नहीं होती। छंद मुक्त कविताओं की भी लय होती है सवाल उसको समझ और पकड़ पाने का है। इन कविताओं को पढ़कर सुखद अनुभूति हुई।

अनायास नहीं में व्यवस्था की भयावहता को अच्छे तरीके से उकेरा गया है। और व्यक्ति सोचने पर मजबूर होता है। बद है नीली झील का हिलना एक बेहतर विषय वस्तु पर लिखी रचना है। कवि ने सही रूप से निर्वाह किया है। रास्ता इधर से है रचना आज की विसंगतियों पर कटाक्ष है। समानान्तर साथ–साथ इस संग्रह की श्रेष्ठ कविता है सच में इस कविता के लिए बधाई। समन्द्र तक की यात्र नहीं में कवि कहता हैनहीं— नहीं— में कोई

तीरथ यात्री नहीं हूं न ही मुझे करना है
पवित्र् जल से आचमन या स्नान
पर
मुझे भागना भी नहीं है नदी से दूर कहीं।

भीतर तक कुरेदती चली जाती है यह कविता। आत्म निर्वासन रोजमर्रा की स्थितियों का रोजनामचा है।

सहधर्म 1 व सहधर्म 2 में कवि का व्यंग्य अच्छे तरीके से मुखर हुआ है। तथाकथित क्रांति का विगुल बजा दिया, जब कवि कहता है कितनी सटीक टिप्पणी है आज के हालातों पर। सब कुछ जो हआ है या हो रहा है वह सब तथाकथित ही तो है। और यह तथाकथित ही हमें हास्यास्पद होने की ओर ले जाता है।

सूर्यास्त व दायित्व छोटी कविताएं हैं लेकिन इन कविताओं का कैनवास काफी बड़ा है। कवि ने इसे बखूबी निबाहा है। बड़ी बात है।

वंदे मातरम में कवि राष्ट्रीय नीतियों की बात पुरजोर ढंग से करता है। अंत में आते–आते, कितने महान हो गए हैं हम एक बेवाक समीक्षा है।

चेहरे पथराया अहसास रचनाएं भी अपना प्रभाव छोड़ने में सक्षम सही हैं।

याद एक गुनगुनाती हुई खुशबू की स्व– मीना कुमारी पर लिखी गई कविता श्रेष्ठ है। कवि बेहद प्रभावित रहा है मीना जी से तभी तो वे सही–सही लिख पाये हैं।

असलियत में पलाश दहके हैं संग्रह की कविताएं आस्था की कविताएं हैं। ये कविताएं जीवन के प्रति समस्या पैदा नहीं करतीं। इन कविताओं को गुनकर, पाठक एक भीतरी जुड़ाव महसूस करता है। भोगे हुए यथार्थ की तो वे कविताएं हैं ही साथ में ये ऊर्जा भी प्रदान करती चलती हैं।

अजनबी संदर्भों के बीच से गुजरते हुए कविता उतना प्रभाव नहीं छोड़ पाती जितना अन्य कविताएं छोड़ती हैं। यक्ष प्रश्न कविता का कैनवास बहुत विराट है। कति ने उसे कम शब्दों को रखकर विराम दे दिया है। छोटी कविताएं निश्चित रूप से प्रभाव छोड़ती हैं लेकिन कभी–कभी ऐसा भी होता है कि अगर हम पूर्णता की ओर कविता को न ले जाकर लघुकर देते हैं तो वहां कविता की एक तरह से हम हत्या कर देते है यह स्थिति त्रसद है। इस स्थिति से बचना चाहिए। यक्ष प्रश्न को पढ़कर मैंने महसूस किया शायद यही एक लम्बी कविता है कवि ने सही निर्वाह किया है इसमें।

किस उंचाई से
तलहटी में झांकते हैं पहाड़
झांकते भी हैं या नहीं
या यों ही तने रह जाते हैं आसमान ताकते

सच ही लिखा है, कवि ने। ऐसी सशक्त रचना के लिए डॉ– सिंह बधाई के पात्र् हैं। सूरज का खून और गीली धरती मुक्ति संघर्ष के पश्चात बंगला देश के उदय पर लिखी रचना है। अमूमन इस तरह की कविताएं बहुत ज्यादा प्रभाव नहीं छोड़ पाती क्योंकि उनमें 'अति' बहुत ज्यादा होता है। यहां इस रचना में कवि ने सावधानी बरती है। इसी लिए इसे पढ़कर उब पैदा नहीं होती।

इन सारे रंगों में
उभरती है एक शक्ल
और
एक आजाद देश का
नक्शा बना देती है।

यह कविता मर्म स्पशी है और पाठक इसे पढ़कर निश्चित रूप से अभिभूत होता है।

यूं तो इस संग्रह के बारे में या इससे इधर बहुत कुछ लिखा जा सकता है। लेकिन कुल मिलाकर यह कहना सत्य होगा कि यह संग्रह पूरे तौर से प्रभाव छोड़ता है। ये कविताएं व्यक्ति के आसपास की कविताएं हैं और सबसे महत्व पूर्ण बात यह कि ये ईमानदार कविताएं हैं। संग्रह देर से आया यह अलग मुद्दा है लेकिन मित्रें ऐसे संग्रहों से क्या फायदा जो आएं साल दर साल पर कविता के नाम पर शून्यता या खालीपन। इसलिए पलाश दहके हैं का स्वागत है क्योंकि यह देर से आया पर अच्छी कविताएं लेकर आया ताकि हम सब सोच सकें। समझ सकें। गुन सकें। और हम सावधानी से कविता पर मशक्कत कर सकें।

पुनःबधाई.......

पलाश दहके हैं– कविता संग्रह
रचनाकार– डा–धनंजय सिंह
प्रकाशक– शुभम् प्रकाशन
एन–10, उलधनपुर
नवीन शाहदरा सी–29
पृष्ठ–103 गुलमोहर पार्क

धनंजयसिंह : एक काव्यमय व्यक्तित्व

रश्मि अग्रवाल

धनंजयजी का सम्पूर्ण जीवन साहित्य सेवा में व्यतीत हुआ। काव्यजगत में वह एक प्रतिष्ठित गीतकार के रूप में जाने जाते हैं। जहाँ समयचक्र घूमने के साथ–साथ गीत लिखने की परम्परा लुप्त होती जा रही हैं, कई श्रेष्ठ गीतकारों ने या तो हास्य लिखना प्रारम्भ कर दिया या अतुकान्त कविता लिखने में तल्लीन हो गये, वहीं धनंजयजी ने गीतों के माध्यम से अभिव्यक्ति को निरंतर बनाये रखा। वह एक संवेदनशील कवि तो हैं ही उनती संवेदनशीलता उनके प्रतिदिन के कार्यकलाप एवं व्यवहार में भी परिलक्षित होती है। या हो सकता है कि उनके व्यक्तित्व की संवेदनशीलता ने उन्हें एक संवेदनशील कवि बनाया हो।

धनंजयजी विविद्धरसों में गीत लिखते हैं जो आस–पास में घटित हो रही घटनाओं के प्रति सजगता दर्शाते हैं। उन्होंने नवगीत विधा में रचना की पर ये नवगीत लयात्मकता से कभी दूर नहीं हुये। वह जब सस्वर गीत पढ़ते हैं तो मानो पूरा वातावरण काव्यमय हो जाता है। उन्होंने प्रा।ति के माध्यम से कई गीतों में अपनी बात रखी है। इस प्रतीकात्मकता से ऐसा लगता है मानो कविदृश्य प्रा।ति को आत्मसात कर लेना चाहता है, प्रा।ति के निकट रहना चाहता है और प्रा।ति का महत्व कहीं बहुत गहराई से अनुभव करता है। उनकी एक पुस्तक का नाम ही है 'पलाश दहके हैं' जो उनके प्रा।ति प्रेम को दिखाती है। इसी पुस्तक के कुछ अंश देखें:

'भाव विहग उड़ इधर–उधर
दुख दाने चुग आये
मन पर घनी वनस्पतियों के
जंगल उग आये'

या फिर:

आज फिर बरबस खिले हैं
फूल सरसों के
खेत में थी घास किस्में नागफनियों की कई
ले बसंती फूल यह, सरसों कहाँ से आ गई।

प्रा।ति का प्रतीक बनाकर मन के भावों को व्यक्त करने की कला अभूतपूर्व है। बहुत गहरी से गहरी बात को वह प्रा।ति के माध्यम से कितनी आसानी से व्यक्त कर पाते हैं।

'फिर उतर आई वनों में सांझ
पर पंछी न जाने क्यों नहीं आये'

या

'सुबह–सुबह नील–कमल ताल पर
उत्तर गये चीलों के झुण्ड
और भी
आये तो थे काफ़िळले बहारों के
पर उपवन की सीमा पर ठहरे हैं।

जीवन का एक कटु सत्य है कि इन्सान सोचता है कि उसके अच्छे कर्मों का परिणाम अच्छा क्यों नहीं हुआ। इस पीड़ा की अभिव्यक्ति कवि ने कैसे की है इसका एक उदाहरण देखें:

'हमने कलमें गुलाब की रोपी थी
पर गमलों में उग आई नागफनी। '

धनंजयजी का लेखन चित्रत्मक है। पूरा का पूरा परिदृश्य वे अपनी रचना के माध्यम से ऐसे प्रस्तुत करते हैं जैसे वहीं सबकुछ घटित हो रहा हो:

'चैबारे पर दीपक धर कर
बैठ गई संध्या
एक एक कर तारे डूबे
रात रही बंध्या'

या
'वातायन हंस उठे
किरण आंगन में मुस्काई
धरती छूने हरसिंगार की
डाली झुक आई'

कवि अपने आसपास हो रही घटनाओं के प्रति सजग है पर अपने मूल्यों से समझौता करने को तैयार नही:

'पाठ कभी दुनियादारी का
हमें नहीं आया
हमने केवल जिया वही
जो अपने मन भाया
ऋण–धन गुणा–भाग की भाषा
जग ने समझाई
किन्तु जटिलता उसकी मन में
पैठ नहीं पाई'

धनंजय जी का जीवन संघर्षयुक्त रहा पर उन्होंने जीने की लालसा और वह भी जुझारू होकर और अपने मनोभाव के अनूकूल होकर कभी नही छोड़ी। उन्होंने परिस्थितियों से कभी समझौता नहीं किया। विषम परिस्थितियों में स्वयं को कैसे गतिशील रखना है, वह इसकी कला जानते हैं:

'धूप चिलचिलाती है, सड़क बहुत लम्बी है
नहीं दूर तक कोई छाँव
और हमें नगे ही पाँव
जाना है सपनों के गाँव'

प्रेम और स्नेह जीवन का शाश्वत सत्य है शायद यही सारे ब्रह्मांड को एक दूसरे से जोड़े रखता है। प्रेम ही जीवन को गति देता है और देता है शक्ति जीवन के संघर्षो से जुझने की। कवि के इस रस से भरे गीत रूह तक उतर जाते हैं:

'ढ़ाई आखर नाम तुम्हारा ले लिया
मावस वाली रात उजाली हो गई
कच्चा आँगन फिर गोबर से लिप गया
मन की ये बस्ती वैशाली हो गई।
(दिन क्यों बीत गये पुस्तक से)

'आओ मिल बैठे बतियायें
हो सकता है शब्द न बोलें
बातों को मन ही मन बोले
आओ भावों की चाबी से
कुंठा का हर ताला खोले
तुम भी मन का बोझ उतारो
हम भी कुछ हल्वेळ हो जायें

धनंजयजी जितनी भावों और अनुभूतियों की अभिव्यक्ति में प्रवीणता रखते हैं उतना ही उनका भाषा पर अधिकार हैं। कठिन से कठिन शब्दों का अपने गीतों में प्रयोग बहुत सहजता से कर जाते हैं:

'अथ इति क्रमागत चक्र में
आते जाते रहे
पर जिन्दगी के गीत हम
हर हाल में गाते रहे। '

'पीड़ा के छान्दोग्य भाष्य का
अनुभव पर्व लिखा जब मैंने
क्रौंच–मिथुन या हंस सभी के
गये रुलाकर घायल डैने'

लिखने को और बहुत कुछ पर यहाँ मैं अपने लेखन को विराम देती हूँ। इस शुभ अवसर पर मैं उन्हें बधाई के साथ–साथ दीर्घायु होने एवं स्वस्थ रहने की कामना करती हूँ। वह हम सबको अनेकानेक वर्षों तक अपनी मधुर वाणी से गीतों का रसास्वाद कराते रहें और अपना स्नेह बनाये रखें।

आजकल इलेक्ट्रॉनिक मीडिया का समय है। अत: इस अवसर पर यदि धनंजयजी के गीतों की सी–डी– बनाई जाये तो आगे आने वाली कई पीढियाँ लाभान्वित होती रहेंगी।

धनंजयजी का एक बहुत ही प्यारा गीत जो मुझे बहुत प्रिय है और जब उसे वह अपनी सुमधुर खनकते स्वर में पढ़ते हैं तो ऐसा लगता है मानो शहर के कोलाहल से दूर कहीं एकान्त में प्र॥ति के बीच सुवूळन के पल मिल रहे हों या तपती दोपहरी में बारिश की बूँदे बरस गई हों। इस गीत की कुछ पंक्तियां आप भी देखें:

कोई उजली भीगी बदली
आकर वंळधे पर झुक जाये
तो तुम्हीं कहीं वो भीगापन
जी लूँ या तन–मन जलने दूँ

मन तो है कि पूरा गीत यहाँ लिख दूँ पर कभी उनके मुख से ही सुने।

एक बार फिर बधाई के साथ।

आत्मीय पल

–डॉ– शशि शुक्ला

डॉ – धनंजय सिंह के व्यक्तित्व एवं ॥तित्व के विषय में मैं कम ही जानती हूँ हाँ मैं उन्हें सुप्रसिद्ध पत्रिका कादम्बिनी के संपादक के रूप में अवश्य जानती रही हूँ। कुछ वर्ष पहले पेळसबुक के माध्यम से डॉ– सिंह से जुड़ने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ। व्यक्तिगत रूप से मैं आपसे लगभग दो वर्ष पूर्व मिली, पहली बार मिलने पर मुझे ऐसा कदापि लगा ही नही कि हम पहली बार मिल रहे हैं ''सादा लिबास, सहज सदभाव जताती सी आंखें अनिमेष देखते रह जाने को विवश कर देने वाली जैसी न कोई साज सज्जा न कोई दिखावा न कोई ठनक और न कोई बनावटीपन'' पति और पत्नी दोनों ही बेहद विनम्र व शालीनता की प्रतिमूर्ति नजर आये। मगर उनकी सहज सरल भाषा और अपनी बात कहने का उनका आत्मविश्वास पूर्ण हठीला अंदाज ही उनके व्यक्तित्व का परिचायक है ऐसा मुझे लगा ''शायद मैंने कहीं पढ़ा था कि व्यक्तित्व का मूल मन्त्र् सत्य आँखों से दिखने वाला सत्य नहीं वरन् साधना के वरदान सा स्वयं सिद्ध सत्य होता है यही सत्य व्यक्तित्व के उदात्त रूप का आदर्श होता है उसकी लगन की राधा का कन्हैया और उसकी मन की गति का विराम भी। व्यक्तित्व का लक्ष्य होता है सर्वोदय जिसमे रंक को भी राजाओं जैसी सुविधा देने का हौसला रहता है जिससे जन जन के अभाव को सामाजिकता के संतोष में परिणित करने की ललक रहती है। इस तरह हम ऐसे व्यक्तित्व को ईश्वर के द्वारा भेजा हुआ कोई दूत ही कह सकते है। समाज परक, चिन्तक, भाव प्रवण गेयता से सम्बद्ध गीतकार अप्रतिम व्यक्तित्व के धनी उदात्त भावो को ललित छंदों में बांधना भाषा को संगीतात्मक रुप देकर प्रस्तुत करना गीतों में उनके अप्रतिम स्वरूप की झलक दिखाई देती है। अंतर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त कवि मनीषी कुशल संपादक ख्याति प्राप्त सुप्रसिद्ध पत्रकार अनेकानेक सम्मानों के साथ साहित्य भूषण की उपाधि से सम्मानित सशक्त रचनाकार डॉ– धनंजय सिंह जी जैसी महान विभूति का अभिनन्दन होना ही चाहिए उनके बहुआयामी व्यक्तित्व एवम् —कृतित्व के विषय में जानने के उपरान्त मेरी जैसी एक साधारण कवियत्री के लिए उनपर कुछ लिखना कठिन लगा अपने 75 वर्षीय जीवन में साहित्य शिक्षा पत्र्कारिता के साथ सुमधुर गीतों के माध्यम से आपने जो कीर्तिमान स्थापित किये उनका मूल्यांकन कर पाना मेरे लिए असहज ही नहीं असंभव भी है। आप हमेशा स्वस्थ एवं सानंद रहें आपके दीर्घ कालिक जीवन की प्रभु से कामना।

डाक्टर आशा रावत

नवगीत के सशक्त हस्ताक्षर

धनंजय जी के साहित्यकार के विषय में क्या कहें! नवगीत के सशक्त हस्ताक्षर वे यूं ही नहीं कहलाते। ऐसे मधुर लय, ताला, भाव, शिल्प के गीत रचे हैं उन्होंने और कंठ भी ईश्वर ने ऐसा दिया है कि सुनते सुनते आप मंत्रमुग्ध होकर किसी दूसरे लोक में पहुंच जाते हैं। उनके नवगीत 'उग आई नागफनी', 'मौन की चादर बुनी है ', " बेच दिये हैं मीठे सपने' ' फूटा गीत नया' ' लौटना पड़ेगा फिर फिर घर ', झांकते हैं फिर नदी में पेड़' जैसे अत्यंत मधुर व संवेदनशील होने के साथ-साथ कालजयी भी बन गए हैं। गीत ही नहीं उनकी कविताएं और गज़लें भी बेमिसाल हैं। नए व अछूते विषयों पर रचित उनकी रचनाओं में भाव, भाषा और शिल्प में अद्भुत समंजन देखने को मिलता है, जिन्हें पढ़ सुन कर कई बार आश्चर्य होता है कि जो शब्द हम सबको मिले हैं, वही उनके पास हैं तो फिर कैसे वे उन्हें चुन कर ऐसी बेजोड़ रचनाएं हमारे समक्ष रख देते हैं।

किसी का खांटी व ईमानदार व्यक्तित्व उसके संघर्षों से निर्मित होता है। गांव में आगे की पढ़ाई की सुविधा उपलब्ध न होने के कारण उन्हें भागकर शहर आना पड़ा और कई वर्ष फुटपाथ पर गुजारने पड़े। छोटे-मोटे काम करते हुए अपनी पढ़ाई संपूर्ण कर वे बड़ी मुश्किलों से इस मुकाम तक पहुंचे हैं। इस तरह स्वयंसिद्ध होने के कारण वह सहज ही दूसरों के कष्ट समझ लेते हैं और भरसक उनकी निःस्वार्थ सहायता करते रहे हैं। 'कादंबिनी' जैसी स्तरीय पत्रिका के 'उप संपादक 'रहते हुए तथा ऐसे सशक्त लोकगीत रचते हुए भी उन्होंने कभी किसी को अपने पद या साहित्यिक स्थिति का एहसास नहीं कराया। दर्प या अहंकार उन्हें छू नहीं गया है। जिस तरह वे सबके साथ प्रेम तथा अपनेपन से मुस्कुरा कर मिलते हैं , उसे देखकर यही लगता है कि साहित्यकार होने से पहले अच्छा इंसान होना ज़्यादा जरूरी है। जहां तक उनके स्वभाव की बात है तो सामने वाले को पहली मुलाकात में ही एहसास हो जाता है कि वे कितने सहज, सरल, हंसमुख और स्पष्टवादी व्यक्ति हैं। जब वे वातावरण में अपनी निश्छल हंसी बिखेरते हैं तो उनकी खूबसूरत धवल दंतपंक्ति देखते ही बनती है।

मैं उनसे पहले पहल सन 1993 में अपने शोधकार्य के सिलसिले में मिली थी। व्यंग्य निबंधों पर अपेक्षित सामग्री देहरादून में उपलब्ध न होने के कारण मुझे दिल्ली का रुख करना पड़ा। मेरे परम आदरणीय मित्र प्रख्यात साहित्यकार, मनीषी तथा रीडर डॉक्टर हरिमोहन ने मुझे उनसे मिलवाया था ताकि हिंदुस्तान प्रेस से संबंधित सामग्री मुझे मिल सके। मैं एक महीने दिल्ली जेएनयू में कार्यरत अपने मौसेरे भाई के घर रुकी थी और नियमित रूप से प्रेस के रिकॉर्ड रूम में काम करती थी। धनंजय जी ने मुझे बहुत सहयोग दिया, अन्यथा मेरा शोध कार्य सुचारु रुप से संपन्न नहीं हो पाता।

धनंजय जी के साथ मुझे उनके घर जाने का अवसर भी प्राप्त हुआ और मेरा ऐसा मानना है कि किसी के घर जाने पर ही उसके व्यक्तित्व का सही अनुमान लगाया जा सकता है। यहीं मुझे उनके संघर्षों की जानकारी मिली थी और मधु सी मीठी मधु भाभी से मुलाकात का शुभ

अवसर भी प्राप्त हुआ। लगा ही नहीं कि उनसे पहली बार मिल रही हूं। भाभी से वह अपनापा आज भी बना हुआ है। हम समयानुसार एक दूसरे के घर आते जाते रहते हैं। अंतराल लंबा खिंचता है तो कुछ सूना सूना सा महसूस होता है। मेरे पति श्री सुरेंद्र उन्हें बहुत पसंद करते हैं और वे भी। दोनों एक दूसरे को 'मृदु स्वभाव का बहुत प्यारा आदमी' का विशेषण देते हैं। मधु भाभी तो है ही शहद। इन सबके बीच मैं ही कड़वी हूं। पतिदेव की दृष्टि में (अक्खड़ और मुंहफट)।

यों दोस्तों के दोस्त धनंजय जी के मित्र प्रेम का जवाब नहीं। भाभी बताती हैं कि जब वे नई नई शादी होकर आईं तो यह देखकर दंग रह गई थीं कि घर में अक्सर तीन चार दोस्त बने रहते हैं। बिना किसी झिझक या संकोच के कोई भी किसी के भी कपड़े पहन लेता है और हर समय चाय के दौर चलते रहते हैं। भोजन का तो कहना ही क्या!गर्मी में इतनी रोटियां सेंकते सेंकते उनकी क्या हालत होती होगी! बाद में तो मेरी सहनशील भाभी को इस सब की आदत ही पड़ गई।

मुझे अपने मित्र से दो बहुत गहरी शिकायतें हैं। पहली यह कि वे अपने स्वास्थ्य के प्रति बिल्कुल भी सचेत नहीं हैं। अक्सर किसी न किसी रोग से ग्रस्त होने के बावजूद वे अपनी ओर से सदा उदासीन बने रहते हैं। ऐसा नहीं है कि उनसे मैंने कभी अपनी शिकायत दर्ज न की हो, किंतु वे सुनते कहां हैं! नेताओं वाले आश्वासन देकर मुझे चुप करा देते हैं।

मेरी दूसरी शिकायत उनके लेखन को लेकर है। उन्हें अपने लेखन पर जितना ध्यान देना चाहिए था, उसका दसवां भाग भी उन्होंने नहीं दिया। वे जो लिख सकते थे। जितना लिख सकते थे, वह लिखा ही नहीं। बस दूसरों को ही लिखने की प्रेरणा देते रहे। कविता संग्रहों का संपादन तो उन्होंने बहुत किया, लेकिन अपने भीतर के कवि की उपेक्षा करते रहे।

धनंजय जी की रचनाओं में से कुछ पंक्तियां उकेरने का लोभ मैं संवरण नहीं कर पा रही हूं।

उनके पहले काव्य संग्रह 'पलाश दहके हैं' के पहले गीत ' उग आयी नागफनी' की यह पंक्तियां देखिए-

' हमने कलमें
गुलाब की रोपी थीं
पर गमलों में उग आयी नागफनी। '

' बेच दिये हैं मीठे सपने' की इन पंक्तियों पर ध्यान दीजिये-

' हमने तो
अनुभव के हाथ
बेच दिये हैं मीठे सपने। '

एक अन्य नवगीत ' झर गये पत्ते' की ये पंक्तियां देखिये-

' साथ बारिश के बिजलियां होंगी
इन खयालों से डर गये पत्ते। '

एक छोटी कविता ' दायित्व 'के भाव देखिये-

' पंखों में
बांधकर पहाड़
उड़ने को कह दिया गया। '

तथा ' ध्वजारोहण ' के कटाक्ष पर दृष्टि डालिये-

' शौर्य
शान्ति
और समृद्धि को
काले पहिये से बांधकर
बांस पर
लटका दिया गया है मेरे देश में। '

ऐसी रचनाओं के रचनाकार अपने लेखन पर अपेक्षित ध्यान न दें तो दुख होता है। आज धनंजय जैसे कवियों तथा गीतकारों की हमारे समाज और साहित्य को बहुत आवश्यकता है। इलेक्ट्रॉनिक मीडिया से वैसे ही साहित्य को नुकसान पहुंच रहा है। फिर मंच भी उतने स्तरीय तथा आकर्षक नहीं रहे तो धनंजय जी जैसे विद्वानों को आगे बढ़कर कमान संभालनी ही होगी। मैं ईश्वर से यही प्रार्थना करती हूं कि हमारे प्रिय मित्र श्री धनंजय सिंह सदा स्वस्थ तथा प्रसन्न रहें। नए नए गीत रचते रहें और हिन्दी साहित्य की विकास धारा में अपना योगदान देते रहें।

कवि–पत्रकार–संपादक : डॉ– धनंजयसिंह

—आशा 'क्षमा'

बात लगभग 25 वर्ष पुरानी है, मेरा निवास स्थान मिंटो रोड, दिल्ली मैं था। मेरी रुचि हिंदी लेखन में शुरू से ही रही है। कवितायें लिखना मुझे विशेष प्रिय रहा है। यदा–कदा इन कविताओं को प्रकाशन हेतु विभिन्न पत्र्–पत्रिकाओं में भेजती रहती थी। अपनी कुछ कविताएं मैंने 'हिंदुस्तान टाइम्स' से प्रकाशित 'हिंदी की प्रसिद्ध साहित्यिक पत्रिका 'कादम्बिनी' मैं प्रकाशन हेतु भेजी हुई थीं। एक दिन मुझे हिंदुस्तान टाइम्स से एक पत्र् प्राप्त हुआ जिसमें लिखा था कि कादम्बिनी में प्रकाशन हेतु मेरी रचनाएं चयनित नहीं हुई हैं, किंतु यदि में चाहूं तो एक काव्य संकलन में प्रकाशन हेतु उन्हें भेजा जा सकता है। मुझे यह प्रस्ताव भी ठीक लगा और फिर मैंने पास में ही कनाट प्लेस स्थित हिंदुस्तान टाइम्स ऑफिस में सम्पर्क किया। उसी सिलसिले में मैं पहली बार श्री डॉ– धनंजय सिंह जी से मिली। हिंदी साहित्य के बारे में बात हुई। डॉ– धनंजय सिंह जी उस समय कादम्बिनी के उप सम्पादक एवम वरिष्ठ पत्रकार थे। फिर मेरी कविताएं विभिन्न काव्य संकलनों में प्रकाशित होने लगीं। लगातार प्रकाशन होने से स्वाभाविक था कि नित उत्साह बढ़ता गया और मेरा लेखन भी जारी रहा।

मैं पेशे से एक वैज्ञानिक हं्ू अत: अति व्यस्त होने पर भी डॉ– धनंजय सिंह जी के आग्रह और प्रोत्साहन के कारण में लिखती गयी और मेरा प्रथम काव्य संकलन 'अर्धविराम' सन 2001 मैं 'अमर भारती साहित्य संस्।ाति संस्थान' से प्रकाशित हुआ, जिसकी भूमिका भी उन्होंने स्वयम ही लिखी थी। मेरा स्थानांतरण तब तक जोधपुर यराजस्थानद्ध हो चुका था। तब मैंने अनुभव किया कि डा– धनंजय सिंह जी स्वयम एवम उनका संस्थान 'अमर भारती साहित्य संस्।ाति संस्थान' नयी–नयी प्रतिभाओं को हिंदी लेखन के क्षेत्र् में किस तरह प्रोत्साहित कर रहे हैं, यह भी हिंदी साहित्य की बहुत बडी सेवा है। आज तक मेरी तरह न जाने कितनी युवा प्रतिभाओं को उन्होंने प्रोत्साहित किया होगा, जो उचित मार्गदर्शन के अभाव में आगे नही बढ़ पातीं। मैं साक्षात उदाहरण हूं। पिछले 25 वर्षो में मैंने, अपने वैज्ञानिक दायित्वों के साथ–साथ, अपनी क्षमतानुसार हिंदी के क्षेत्र् में भी काफी कार्य किया है, शायद उसी का प्रतिफल है कि मैं आज रक्षा मंत्रलय मे राज भाषा विभाग में अपर निदेशक के रूप मे भी कार्यरत हूं। किंतु हिंदी के क्षेत्र् में अपनी सफलता का श्रेय में श्री डॉ– धनंजय सिंह को ही देती हूं। मुझे स्मरण है कि एक बार आपने ही मुझे बताया था कि जब आप अपने ऑफिस में यह देखते थे कि किस तरह नये लेखकों की अचयनित रचनायें, रद्दी की टोकरी में डाली जाती थीं, तो आपको बहुत कष्ट होता था और तभी आपको संकलनों के माध्यम से इन प्रतिभाओं को आगे लाने का विचार आया था। इस संदर्भ में मैं यहां विशेष रूप से उल्लेख करना चाहती हूं कि हिंदी समाज इसके लिये सदेव आपका आभारी रहेगा।

विद्यावाचस्पति डॉ– धनंजय सिंह जी जो एक कवि, पत्रकार, सम्पादक, साहित्यकार, गीतकार और सबसे ऊपर एक अच्छे इंसान हैं, के महान व्यक्तित्व के बारे में जितना लिखा जाये, वह कम है। वे एक सच्चे साहित्य सेवी हैं। मुझे अपनी हिंदी साहित्य यात्र के दौरान आपका सान्निध्य एवम मार्गदर्शन मिला, यह मेरे लिये सौभाग्य की बात है। अंत में मैं आपके स्वस्थ, सुखद एवम दीर्घ जीवन की कामना करती हूं और

बिरले रचनाकार

सुभाष चंदर

डॉ – धनंजय सिंह हमारे समय के उन बिरले रचनाकारों में से हैं जिन्होंने कविता की शालीनता को, उसकी विशिष्टता को बचाए रखने की हर संभव कोशिश की है। यह कोशिश प्रकाशन की दृष्टि से तो सफल हुई ही है वहीं मंचों पर जहां तालीबजवाऊ कविताओं की मांग ज्यादा है, जहां अधिकाँश बड़े रचनाकार भी कई बार समझौता करते नजर आते हैं, वहां भी उनका रचनाकार कविता की शुद्धता को बचाए रखने में सफल रहा है। अगर मंचीय कविता के परिप्रेक्ष्य में उनके रचनाकार के अवदान की बात करें तो वह उन दुर्लभ कवियों में शामिल हैं जिनकी कविता तालियों के प्रलोभन में आकर सस्ती नहीं होती, जो अपनी शालीनता, अपने कवितापन को हर स्थति में बनाये रखती हैं। यही कारण है कि उनके यहाँ पत्र् पत्रिकाओं में प्रकाशनार्थ भेजी जाने वाली कविताओं और मंच पर पढी जाने वाली कविताओं के लिए अलग से खाने नहीं बनाए गए हैं। इसी कारण

नित्य ही होता हृदयगत भाव का संयत प्रकाशन ध् किन्तु मैं अनुवाद कर पाता नहीं हूं 'या 'जीवन की परिधियाँ बढी ध् हम तुम केंन्द्राभिमुख हुए' जैसे तत्सम शब्दों की बहुलता वाली पंक्तियाँ मंचों पर भी अपनी उपस्थिति दर्ज कराती रहीं। वे लोग जो मंच की कविता की प्र।।ति से परिचित हैं वे समझ सकते हैं कि मंच के लिए ऐसे प्रयोग कितने साहस की मांग करते हैं।

डॉ धनंजय सिंह ने यूं तो छन्दमुक्त कवितायें भी कम नहीं लिखीं पर उनकी पहचान उनके गीतों को लेकर रही है। प्रारम्भ में उन्होंने पारंपरिक गीतों में अपनी प्रतिभा के आयामों से परिचित कराया, बाद में उन्होंने नवगीत के क्षेत्र् को समृद्ध किया। नवगीत में उन्हें उनकी विशिष्ट प्रयोगधर्मिता के कारण जाना जाता है। उनकी यह प्रयोगधर्मिता नवीन प्रतीकों और अनछुए बिम्बों के कारण विशेष रूप से ध्यान आकर्षित करती है।

'दिन क्यों बीत गए' उनका सद्यप्रकाशित गीत संग्रह है जिसमें वह अहसास की धूप में पगी रचनाओं से हमारी पहचान कराते हैं। इस संग्रह में ड्क्तौढ़ शिल्प , शब्दों का अनुशासन और भाषा के प्रवाह पर पूर्ण नियंत्रण जहां उनके रचनाकार के काव्य कौशल पर विश्वास जगाते हैं, वहीं नए नवेले बिम्बों का सार्थक प्रयोग, प्रतीकों का सही स्थल पर नियोजन उन्हें गीतकारों की भीड़ से अलग दिखाने के लिए पर्याप्त हैं। धनंजय सिंह का कवि जीवन के विभिन्न रंगों को गीतों के माध्यम से अभिव्यक्ति प्रदान करने का सार्थक प्रयास करता है। उनके गीतों की इस बगिया में अनेक रंगों के पुष्प पल्लवित होते दिखाई देते हैं। निसंदेह इस ।।ति के अधिकांश गीतों का केन्द्रीय स्वर प्रेम है। इनमें प्रेम अपने अलग अलग रूपों में विद्यमान है, कहीं वह कोमल अनुभूतियों को स्वर दे रहा है तो कहीं मांसल अनुभूतियों को अपनी कूची से उकेर रहा है तो कहीं वह खुद से सवाल पूछ रहा है , इनमें विरह की पीड़ा को भी स्वर मिले हैं तो मादक अनुभूतियों ने भी मन के अंदरूनी कोनो को छूने की कोशिश की है।

जहां कवि कोंपल सी कोमल अनुभूतियों को गीत में सहेजता है तो रचता है

स्वप्न कीध्झील में तैरता
यह हृदय का सुकोमल कमल !
चन्द्रिका–स्नातध्मधु रात मेंध्हो हमारा तुम्हारा मिलन!

और — जब प्रेमिल अनुभूतियाँ मांसल सन्दर्भ ग्रहण करती हैं तब कवि की कल्पना देह की वीणा के तारों को झनझनाकर गीत बोती है–

बरफीली रेत में उगे गर्म गर्म साँसों के गीत
पिघल उठे

ऐसे ही जब समय के झंझावातों में अपनी विवशता को शब्द देने की बात आती है, अपने अन्दर के अकेलेपन से लड़ते हुए खुद को कसौटी पर कसते हुए अपने भावों को स्वर देने का अवसर आता है तो बेचैनी कुछ यूं अभिव्यक्त होती है:

बहुत दिन पहलेध्कभी जब रोशनी थीध्
चांदनी ने था मुझे तब भी बुलायाध्नाम चाहे
जो इसेध्तुम आज दो परध्
कोष आंसू का नहीं मैंने लुटायाध्तुम किनारे
पर खड़े आवाज मत दोध्
खींचती मुझको इधर मंझधार कोई

प्रेमिल अनुभूतियों के अलावा कुछ ऐसे गीत भी संग्रह में हैं जो कवि के आत्मसम्मान का, उसके परिस्थितियों के आगे न झुकने का , प्रलोभनों की तराजू पर न तुलने का, कालिख में से बचकर सही सलामत बहार निकल आने की सफलता का भी उद्घोष करते हैं। कुछ ऐसे गीत भी हैं जो अपनी शर्तों पर जीने की जिद को शब्द देते हैं। ऐसे गीतों में जैसे भी जी सका, ज्योतिर्मय गाते रहे हमने केवल वही जिया, गणित नहीं आया का उल्लेख किया जा सकता है। इन गीतों में से एक गीत का अंश देने का लोभ संवरण नहीं कर पा रहा हूँ:

हमने
सतत संघर्ष में
जो भी जिया
इतिहास था
बांटी सदा मुस्कान ही
मन में भले संत्रस था
धड़कनों की ताल लय पर
मुग्द्धमुस्काते रहे!

इन अनुभूतियों के अतिरिक्त, धनंजय सिंह के गीतों का एक अलग स्वर भी है जहां राजनीति और समाज की विसंगतियों पर उनके भीतर बैठा व्यंग्यकार बहुत बारीक पर तीखी टिप्पणी करता है और उस टिप्पणी के भीतर की वक्रोक्ति आपको अन्दर तक आहत कर जाती है। उनका यह कवि रूप बेहद प्रभावी है, तीक्ष्ण व्यंजना से लैस भी और प्रहारक की मुन्द्रा धारण किये हुए भी। वह सामाजिक सरोकारों के प्रति अपने कर्तव्यों को कुछ यूं निभाता है।

तापस ही
स्वर्ण मृगों के पीछे दौड़ें जब
तब किससे अभयदान मांगे
झील और सरोवर की
बात और होती है
दलदल को किस तरह छलांगें
बालू के टीलो पर
सपनों के महलों का
रोकें हम कैसे बिखराव !

सच कहा जाए तो इस गीत संग्रह के गीत आपको जहां अपने शिल्प की सुन्दरता से चमत्।।त करते हैं, वहीं जीवन के विभिन्न पक्षों से आपका साक्षात्कार भी कराते हैं। उनमें प्रेम की मादकता भी है तो व्यथित मन की कथा भी, ये एक तरफ आपको जीवन के दर्शन की ऊंचाईयों तक ले जाते हैं तो दूसरी तरफ सामजिक सरोकारों की कसौटी पर भी खुद को कसने की कोशिश करते हैं। यदि इतने सारे अनुभवों से आप दो–चार होना चाहते हैं और सबसे बढ़कर इस मिलावटी समय में शुद्ध गीत, दिल को गहरे तक छूने वाले गीतों से गुजरना चाहते हैं तो यकीनन यह संग्रह आपके लिए है।

लेख में व्यक्त विचार लेखक के हैं उनसे संपादक मण्डल या संपर्क भाषा भारती पत्रिका का सहमत होना आवश्यक नहीं है। किसी भी विवाद की स्थिति में न्याय-क्षेत्र नई दिल्ली रहेगा। प्रकाशक तथा संपादक : सुधेन्दु ओझा, 97, सुंदर ब्लॉक, शकरपुर, दिल्ली110092

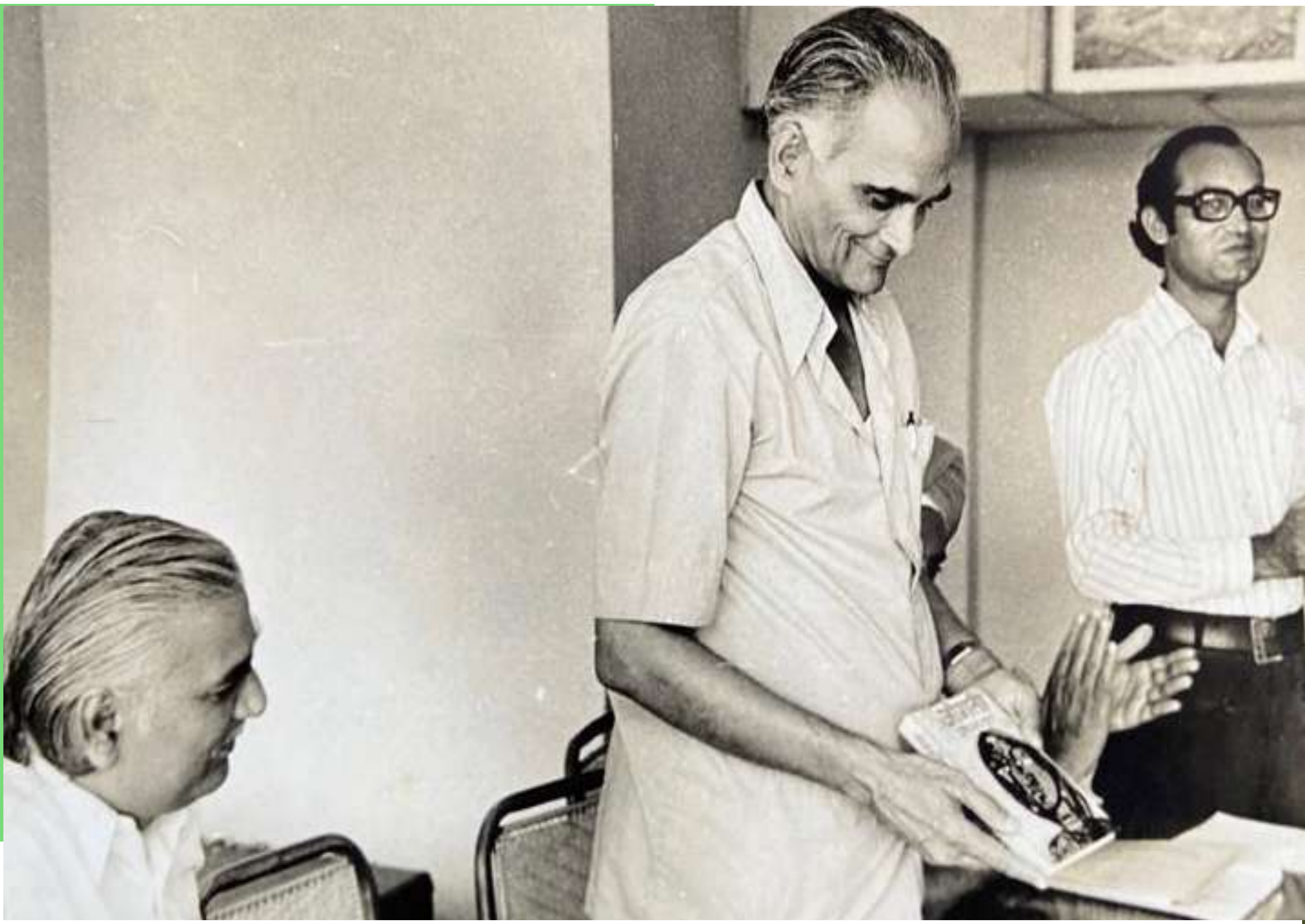

कवि की प्रामाणिकता का आधार

कुमार पंकज

एक युग से जिंदगी के घोल को मैं,
एक मीठा विष समझकर पी रहा हूं,
आदमी घबरा न जाए मुश्किलों से,
इसलिए मुस्कान बनकर जी रहा हूं।

धनंजय सिंह की ये पंक्तियां भाषा में कविता को तो प्रमाणित करती ही हैं। कविता में कवि को भी प्रमाणित करती हैं। कविताओं में कवि की चिन्ता एक ऐसे समाज को गढ़ने की है, जहां मनुष्य से सार्थक संवाद हो। वह भी संवाद ऐसा हो जो मनुष्य के जवीन को बेहतर बनाने और मनुष्य के पक्ष में ढ़ालने के निमित्त हो।

आज समाज में शब्द भी और संवाद भी लेकिन दोनों ही आज अविश्वसनीय हो गये हैं। समाज में जो कुछ सार्थक है भी वह हाशिये पर निर्वासित है। धनंजय सिंह का ये पहला कविता संग्रह है। एक लंबे अरसे से लिख रहे इस कवि ने अपने प्रति लापरवाही बरती है, जिनसे उनका एकमात्र् संग्रह ही प्रकाशित हो सका है। कवि के पास अपनी कविताओं का कोई रिकॉर्ड मौजूद नहीं है। कवि की हर कविता भावना भरी, नैतिक रूप से संपन्न और मन के कोमल तत्वों को उभारने वाली कविता है। जो मनुष्य के जीवन के मामूली तथा जटिल प्रसंगों से अपनी शक्ति ग्रहण करती है। आज जहां जटिल और संवेदना के स्तर वाली कविताएं प्रभाव छोड़ती हैं वहीं प्रकृति भी खास रूप से संवेदित करती है:

डाली डाली पलाश दहके हैं पर, कोई ऋतुपति के गीत नहीं गाता
कोयल का स्वर पिंजरे में बंदी है, वंशी के स्वर को राग नहीं भाता।

जहां भावना प्रधानता का रूप दिखाई पड़ता है वहां कविताएं अधिक संवेदनशील हो जाती हैं। कवि ने जीवन और प्रकृति के बीच बड़े ही सार्थक प्रतीक एवं विम्ब चुने हैं। लगता है वह जीवन के गहरे तालाब में जाकर दुर्लभ प्रतीक चुनकर लाया है। भाषा की सीपियों से चुने गये आबदार मोती अपनी चमक ही नहीं मूल्यवत्ता से भी इन कविताओं को

अनुप्राणित करते हैं। इनसे निकली विविध अर्थ छवियां कवि की सभी रचनाओं को नया विस्तार देती हैं।

गीतकार आत्ममुग्द्धमाने जाते है। उदाहरण के लिए एक कविता में कवि ने लिखा है:

आखिर कब तक चलता रहेगा,
मरी हुई मछलियों से,
पहचान पत्र् मांगने का क्रम

इसमें दुष्यंत और शकुन्तला वाला प्रसंग छिपा हुआ है, जब शकुन्तला की दुष्यंत प्रदत्त अंगूठी मछली ने निगल ली थी। बाद में वह मछली के पेट से निकली। वही अंगूठी शकुन्तला की वैद्धपहचानपत्र् थी। इस प्रसंग को जाने बिना इन पंक्तियों को अर्थ विस्तार नहीं मिल पाता। धनंजय सिंह गीतात्मक संवदेना के कवि हैं। हिन्दी जगत में उनके नवगीतों का भरपूर स्वागत हुआ है, गजलों का भी। गजलों के जरिए भी उन्होंने समाज की मुख्यधारा से जोड़ने का बड़ा ही सुंदर प्रयास किया है। मनुष्य की संवेदना को जागृत किया है। स्वŒ दुष्यंत कुमार के निधन पर लिखी उनकी एक गजल जो काफी चर्चित भी रही:

गूंजते ऊंचे स्वरों का कैसे, निभ पायेगा मौन
इस कदर बेबाक गजलें, और कह पायेगा कौन।

धनंजय सिंह की कविताओं में समय, समाज और मनुष्य अलग–अलग सत्ताएं नहीं हैं। क्योंकि वह तीनों की अंत: सूत्रा को एक साथ उजागर करना चाहते हैं। वह जिस काव्य संवेदन का साक्ष्य है उसके पीछे एक गहरी मानवीय दृष्टि को अनुभव किया जा सकता हैं। कविता की रचनाओं में विषय विविधता है।

उनकी कविता जीवन की कविता है, इसलिए जीवन की हर स्थिति को छूती है। प्रेम जैसे नाजुक विषय से लेकर, राजनीति, महानगरीय बोध, ग्राम्य सहजता, मानवीय गरिमा, विषाद, करुणा तथा एकान्तिक तन्मयता तक सब कुछ उनकी कविताओं में अपने पूरे प्रभाव के साथ मौजूद है। धनंजय सिंह की रचनाओं की एक अद्भुत विशेषता है। वह यह कि मुहावरों का सावधान प्रयोग, सार्थक शब्दों का चयन, प्रतीकों और विम्बों का उपयोग उनकी रचनाओं में इच्छित वातावरण की सृष्टि करते हैं। भाषा और शिल्प की दृष्टि से भी सहजता विद्यमान है। कुछ समय कविता में भाषा को जटिल बनाने की प्रवृति दिखायी पड़ी। फैशन की दृष्टि से लोकभाषा को ठूसने का प्रयास किया गया। लेकिन धनंजय सिंह जैसे कवियों ने कविता की परंपरा को जीवित कर रखा हैं उनकी कविता का यह रूप और उसकी यह शक्ति बहुत भरोसेमंद लगती है। निश्चय ही उनके अगले संग्रह की प्रतीक्षा पाठक वर्ग को रहेगी।

जिनका सम्पूर्ण व्यक्तित्व ही गीत है...

राकेश जुगरान

डॉ0 धनंजय सिंह जी के नाम से परिचय श्रीनगर-गढ़वाल के प्रसिद्ध बैकुंठ चतुर्दशी मेले में आयोजित कवि सम्मेलन में आमंत्रित कवि के रूप में प्रथम बार हुआ। कादम्बनी जैसी लोकप्रिय पत्रिका से सम्बद्ध होने के कारण भी उनको जानने की उत्सुकता अधिक थी। साहित्य में अभिरुचि होने के कारण कादम्बनी मेरी भी पसंदीदा पत्रिकाओं में शामिल रही है। इस कारण से उनके प्रति एक सहज सम्मान की भावना और भी बढ़ गयी थी। चूंकि उस दौरान(1995 के बाद के वर्ष)हम भी कविताएं लिखने और मित्र मंडली के बीच सुनने-सुनाने वाले दौर से गुजर रहे थे तो कवि सम्मेलनों एवं गोष्ठियों को लेकर उत्साह चरम पर रहा करता था। बावजूद इसके धनंजय सिंह जी से साक्षात मुलाकात न हो सकी। हाँ मित्र

नीरज नैथानी जो श्रीनगर गढ़वाल में आयोजित होने वाले इस राष्ट्रीय कवि सम्मेलन के आयोजक मंडल में रहते थे, का उनसे निरंतर संपर्क बना हुआ था। उनके माध्यम से ही डॉ0 धनंजय सिंह के व्यक्तित्व के अनेक पहलू मालूम होते रहते थे। बड़ा ही मधुर बोलते हैं यार धनंजय सिंह जी, नीरज अक्सर बताया करते थे।

वर्ष 2001-02 में उत्तराखंड विद्यालयी शिक्षा विभाग के अंतर्गत डाइट, रुड़की (हरिद्वार) में कार्यरत था। नीरज जी ने अवगत कराया कि धनंजय सिंह जी युवा रचनाकारों को प्रोत्साहित करने हेतु एक सामूहिक कविता संग्रह का संपादन करने जा रहे हैं और इस हेतु मैं भी अपनी आठ-दस रचनाएं, संक्षिप्त परिचय एवं फोटोग्राफ डॉ0 धनंजय सिंह को पोस्ट कर दूं। मैं अपनी कविताओं

का प्रकाशन श्री सिंह के संपादन में होने की बात से अत्यधिक उत्साहित था। तत्काल निर्देशानुसार रचनाएं कादम्बनी के पते पर पंजीकृत डाक से पोस्ट कर दी। लगभग एक माह बाद ही "सपनों के मोरपंख" की दस प्रतियां डॉ0 धनंजय सिंह के बधाई संदेश के साथ डाक द्वारा प्राप्त हो गयी। अपनी कविताओं को अपने परिचय और फोटो के साथ देखा तो खुशी का ठिकाना न रहा। अब सभा-सम्मेलनों में बताते फिरते थे कि हमारा एक काव्य संकलन छप चुका है।

छः माह बाद ही डॉ0 साहब का पत्र प्राप्त हुआ कि "सपनो के मोरपंख" को खूब सराहना मिली है और बहुत से अन्य युवा रचनाकारों द्वारा अनुरोध किया जा रहा है कि एक और संकलन संपादित किया जाए। मैं आप साथियों को इस संकलन में भी वरीयता देने का इच्छुक हूँ, आप संकलन हेतु तत्काल रचनाएं तैयार कर लें। पत्र में स्नेह, अपनत्व के साथ आदेश भी था। मैंने तुरत-फुरत रचनाएं तैयार कर ली और अग्रिम आदेश की प्रतीक्षा करने लगा। उन्ही दिनों मुझे विभागीय प्रशिक्षण में तीन सप्ताह के लिये दिल्ली जाना था। जब इस संबंध में नीरज जी से बात हुई तो यह तय किया गया कि मैं अपनी रचनाएं पोस्ट करने के बदले लिफाफा साथ लेता जाऊं। वह स्वयं जयकृष्ण पैन्यूली एवं राजेश जैन के साथ इसी बीच एक दिन के लिये दिल्ली आ जाएंगे। डॉ0 धनंजय सिंह को अपनी रचनाएं हाथों हाथ दे देंगे और एक काव्य गोष्ठी के लिये भी अनुरोध कर लेंगे। धनंजय सिंह जी से इस संबंध में जब वार्ता हुई तो उन्होंने बहुत आत्मीयता के साथ हमारा अनुरोध स्वीकार कर लिया। छोटा भाई मुकेश जो साहिबाबाद में स्थित डाबर कंपनी में काम करता था और निकट ही रहता था के आवास पर सांयकालीन गोष्ठी का शानदार आयोजन हुआ जिसमें डॉ0 धनंजय सिंह के साथ ही दिल्ली एवं गाजियाबाद के दो महत्वपूर्ण कवियों के द्वारा भी प्रतिभाग किया गया। सात कवियों की यह गोष्ठी लगभग रात्रि 9 बजे तक निर्बाध चलती रही। उस शानदार गोष्ठी में डॉ0 सिंह को निकट से ख़ूब सुना भी और जाना भी। नीरज जी द्वारा समय-समय पर वर्णित परिचय से आगे ही पाया उन्हें। उनकी आत्मीयता एवं सहज व्यवहार ने किंचित भी यह अहसास नहीं करवाया कि मैं इतने बड़े साहित्यकार से पहली बार मिला हूँ।

शीघ्र ही दूसरा संकलन"नई सदी के हस्ताक्षर"भी डॉ0 धनंजय सिंह के संपादन में छप कर तैयार हुआ और हमारी उपलब्धियों में जुड़ गया। इन दोनों संकलनों के प्रकाशन ने जहां एक ओर साहित्य जगत में पहचान बनाने में मदद की वहीं बेहतर लिखने की प्रेरणा भी प्रदान की। इस हेतु डॉ0 धनंजय

सिंह जी की प्रेरणा को भुलाया नहीं जा सकता।

स्वतंत्रता दिवस, 15 अगस्त, 2002, हिंदी अकादमी, दिल्ली द्वारा आयोजित कवि सम्मेलन में प्रतिभाग करने के उपरांत जब नीरज नैथानी लौटे तो उन्होंने अवगत कराया कि समकालीन साहित्य सम्मेलन, मुंबई आगामी अक्टूबर, 2002 में एक अंतर्राष्ट्रीय साहित्य सम्मेलन मॉरीशस में आयोजित करने जा रहा है। आदरणीय धनंजय जी उसमें प्रतिभाग कर रहे हैं और उन्होंने नीरज जी को भी प्रतिभाग हेतु आमंत्रित किया है। नीरज जी ने अवगत कराया कि उनके अनुरोध पर मेरे और श्री राजेश जैन को भी कार्यक्रम में सम्मिलित करने हेतु स्वीकृति प्राप्त हो गयी है। डॉ0 सिंह इस संबंध में खुद महेंद्र कार्तिकेय, अध्यक्ष समकालीन साहित्य सम्मेलन, मुंबई से वार्ता कर चुके हैं। मॉरीशस सम्मेलन की पूर्व तैयारियों यथा पासपोर्ट-वीज़ा से लेकर कार्यक्रम के समापन तक डॉ0 धनंजय एक अभिभावक की भांति निरंतर हमारा मार्गदर्शन करते रहे। मॉरीशस अंतरराष्ट्रीय सम्मेलन में प्रतिभाग के उपरांत साहित्य क्षेत्र की अनेक संस्थाओं से एवं साहित्यकारों से परिचय और जुड़ाव हुआ और हमें अपने क़दम बढ़ाने के अवसर प्राप्त होते रहे। इस अवधि में जब भी आदरणीय के मार्गदर्शन की आवश्यकता हुई, उनका स्नेह प्राप्त होता रहा।

व्यक्तिगत एवं विभागीय व्यस्ताओं के कारण फिर लगभग 10-12 वर्षों तक डॉ0 सिंह से संपर्क लगभग टूट सा गया। यदा-कदा साथियों से उनकी कुशल-क्षेम पता चलती रहती थी बस। सितंबर, 2015, मुझे जिला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थान, देहरादून में आये डेढ़ महीना ही हुआ था कि एक दिन नीरज नैथानी जी का फोन आया कि देहरादून में डॉ0 अतुल शर्मा द्वारा अपने पिता प्रसिद्ध स्वतंत्रता संग्राम सेनानी एवं कवि स्वर्गीय श्री राम शर्मा जी की कविताओं के संकलन का लोकार्पण कार्यक्रम आयोजित किया जा रहा है और उसमें उन्हें और जयकृष्ण पैन्यूली को भी सम्मिलित होना है। उन्होंने यह भी अवगत कराया कि उक्त कार्यक्रम में डॉ0 धनंजय सिंह विशेष रूप से आमंत्रित किये गए हैं। डॉ0 सिंह का विमोचन कार्यक्रम से एक दिन पहले देहरादून पहुंचने का कार्यक्रम था। नीरज जी द्वारा प्रस्ताव रखा गया कि वो भी श्रीनगर से एक दिन पहले देहरादून आ जाएंगे और धनंजय सिंह जी के साथ एक छोटी सी काव्य संध्या आयोजित कर ली जाएगी। उन्होंने यह भी अवगत कराया कि धनंजय सिंह जी ने यह अनुरोध स्वीकार भी कर लिया है। अब प्रश्न था कि गोष्ठी का आयोजन कहाँ होगा? नीरज जी ने किसी होटल अथवा वेडिंग पॉइंट में आयोजन का प्रस्ताव रखा जो प्रबंधन एवं होने वाले व्यय के मद्देनज़र सुविधाजनक नहीं प्रतीत होता था। विचारोपरांत मैंने उक्त कार्यक्रम अपने संस्थान में आयोजित करने की बात कही तो नीरज जी को भी यह उचित जान पड़ा। श्रोताओं के रूप में उक्त अवधि में संस्थान में प्रशिक्षणरत माध्यमिक विद्यालयों के प्रधानाचार्यों एवं प्राथमिक शिक्षकों का समूह था ही। यह तय हुआ कि शिक्षा को केंद्रित करते हुए काव्य गोष्ठी का आयोजन प्रशिक्षणार्थियों के लिये तो एक बेहतरीन अवसर होगा ही, साथ ही कवियों को उच्च स्तर के श्रोता मिल जाएंगे।

नीरज जी ने डॉ0 धनंजय सिंह एवं डॉ0 अतुल शर्मा से उक्त कार्यक्रम के संबंध में बातचीत करके अवगत कराया कि दोनों साहित्यकार इस कार्यक्रम में प्रतिभाग हेतु उत्सुक हैं। मैंने कार्यक्रम की औपचारिक तैयारी प्रारम्भ कर दी। मैंने संस्थान के अपने सहयोगी शिक्षकों के साथ कार्यक्रम की रूपरेखा तैयार कर ली। बैठक व्यवस्था, साउंड सिस्टम, स्वागत, जलपान आदि की औपचारिकताएं तुरंत पूर्ण करने हेतु कार्य विभाजन कर लिया गया। सबने समय से अपने कार्यों को पूर्ण किया और कार्यक्रम आयोजन की उत्सुकता के साथ प्रतीक्षा करने लगे।

कार्यक्रम निश्चित तिथि को मध्यांतर बाद प्रारम्भ हुआ। श्रोताओं के उल्लास और उत्साह को देखकर आमंत्रित कवि गदगद हो उठे। सामान्यतः इतनी संख्या में सुधी श्रोता मिलने मुश्किल होते हैं इसलिए कवियों द्वारा भी उत्साह के साथ अपनी श्रेष्ठ रचनाओं की शानदार प्रस्तुतियां दी गयी। डॉ0 धनंजय सिंह जी एवं डॉ0 अतुल शर्मा के नाम से बहुत से साथी परिचित थे ही इसलिये उनको सम्मुख सुनने का उत्साह चरम पर था। अपने श्रेष्ठ गीतों की प्रस्तुति देकर उन्होंने भी सबकी अपेक्षाओं को पूर्ण किया। नीरज नैथानी जी एवं जयकृष्ण पैन्यूली ने भी शानदार रचना पाठ किया। हमारे संस्थान में राष्ट्रीय स्तर के ऐसे कवि सम्मेलन का यह पहला अवसर था जिसका श्रेय संस्थान प्रमुख होने के नाते मेरे हिस्से ही आया और शिक्षक समुदाय में मेरा सम्मान बढ़ा। आज भी उस कार्यक्रम की सफलता की चर्चा संस्थान में होती रहती है। इसके लिये मैं पुनः डॉ0 धनंजय सिंह जी का आभार व्यक्त करता हूँ।

इसके बाद पुनः डॉ0 धनंजय सिंह जी से भौतिक संपर्क नहीं हो पाया है, हालांकि फेसबुक और व्हाट्सएप पर उनकी रचनाएं एवं संस्मरण पढ़ने को मिलते रहते हैं। ये जानकर बहुत खुशी हुई है कि संपर्क भाषा भारती मासिक पत्रिका डॉ0 सिंह के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर विशेषांक निकालने जा रही है। मैं संपर्क भाषा भारती को इस महत्वपूर्ण कार्य हेतु शुभकामनाएं प्रेषित करता हूं। तत्क्रम में आदरणीय धनंजय सिंह जी से जुड़ी यादों को समेटने का प्रयास इस संस्मरण आलेख में किया है।

मैं डा0 धनंजय सिंह जी की दीर्घायु की कामना करते हुए हार्दिक बधाई एवं शुभकामनाएं प्रेषित करता हूँ। आप सानंद, स्वस्थ रहें और अपना आशीष बनाये रखें।

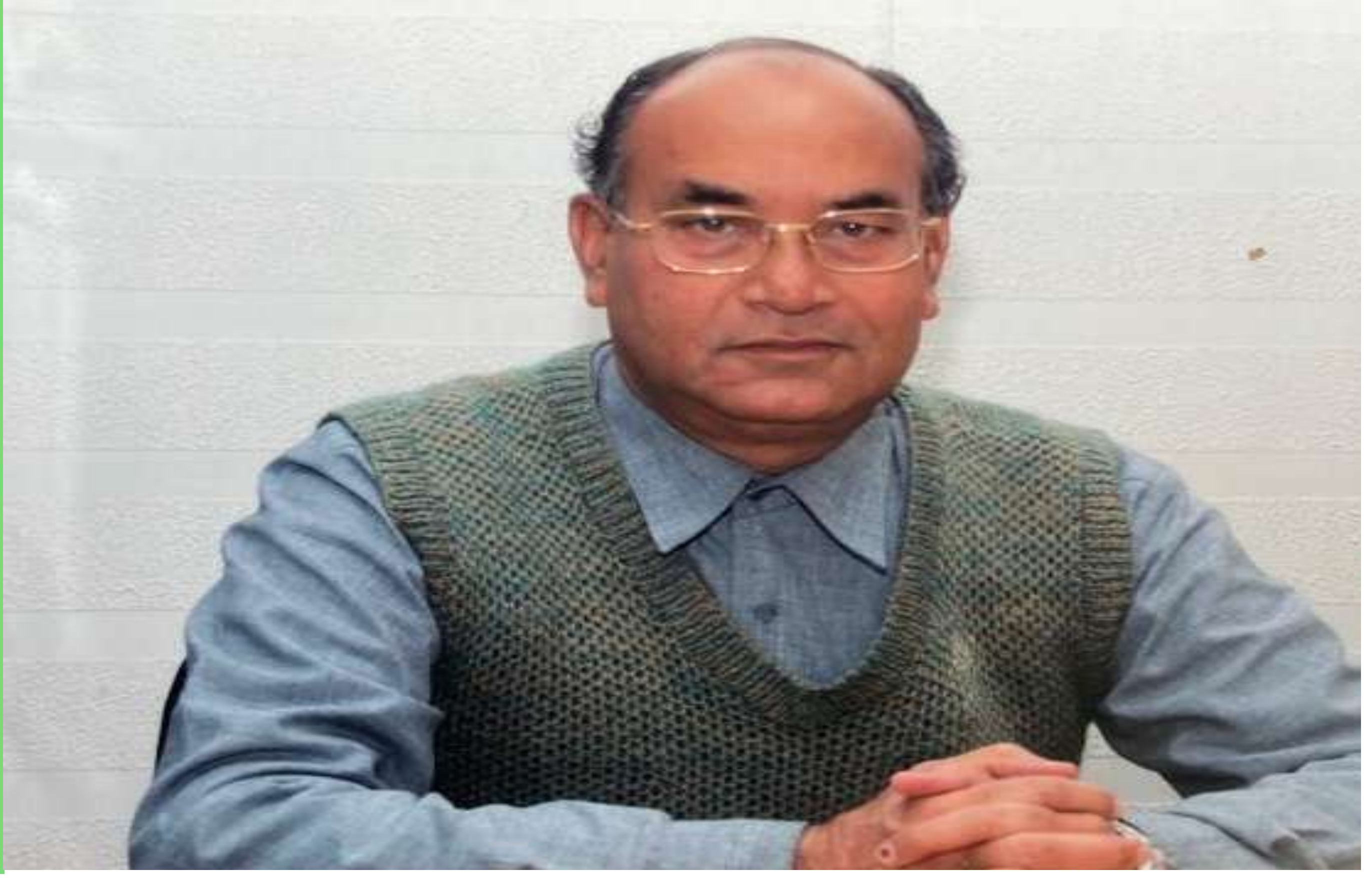

नीरज नैथानी

डा धनंजय सिंह जी के साथ...

डा0 धनंजय सिंह जी के साथ स्थापित घनिष्ठ संबंधों के विषय में जब मैं अपने साहित्कार मित्रों के साथ चर्चा करता हूं तो सदैव स्मृतियों का स्वपनिल संसार झिलमिलाने लगता है।

मेरे व उनके मध्य उम्र का अत्यधिक अंतर होने के पश्चात भी अत्यंत प्रगाढ़ संबंध स्थापित हैं तो इसका केवल एवं केवल एक कारण डा० धनंजय सिंह जी का सरल, सहज एवं मृदु व्यवहार ही है।

मुझे अपने जीवन में साहित्यिक गुरु, मार्ग प्रदर्शक, प्रेरणा दायी व्यक्तित्व, वरिष्ठ साथी, आत्मिक बंधु आदि अनेक रुपों में डा० धनंजय सिंह जी का सानिध्य प्राप्त हुआ है।

अतीत के पृष्ठों को पलटने पर समस्त संस्मरण चलचित्र की भांति समृति पटल पर चलायमान हो जाते हैं-

प्रथम भेंट-

यह माह नवंबर सन 2001 की बात है, उन दिनों मैं श्रीनगर गढ़वाल में संचालित हो रही एक नाट्य कार्यशाला में अभिनय हेतु प्रशिक्षण ले रहा था।

एक दिन रिहर्सल के दौरान एक साथी ने आकर बताया कि आज रात्रि को शहर में होने वाले अखिल भारतीय हिन्दी कवि सम्मेलन में काव्य पाठ करने वाले कवि गण पधार चुके हैं तथा समीप के ही होटल सुदर्शन कैसल में उनके रहने की व्यवस्था की गयी है।

यह समाचार मिलते ही हम कुछ साथी अपने नगर में पधारे कवियों से शिष्टाचार भेंट करने के लिए चल दिए। होटल में पंहुचने पर हमें वंहा कवि मित्र श्री अवनीन्द्र उनियाल जी मिल गए।

वे अपने कवि दोस्त डा० अतुल शर्रमा जी से मिलने आए हुए थे। जब अवनीन्द्र उनियाल जी ने हमारा परिचय डा० अतुल शर्मा जी से कराया तो वे अत्यन्त उत्साह एंव गर्मजोशी से मिले।

उनसे बातचीत करते हुए तनिक भी महसूस नहीं हुआ कि हम पहली बार मिल रहे हों। डा०अतुल शर्मा जी का नितान्त बेतकल्लुफ अन्दाज में मिलना व आत्मीयता प्रकट करते हुए बतियाना देखकर भ्रम भी होने लगा कि हम एक दूसरे को बहुत पहले से जानते हैं।

उनके सकारात्मक व्यवहार से प्रेरित होकर हमने उनके सम्मुख प्रस्ताव रखा कि अभी रात्रिकाल को आयोजित होने वाले कवि सम्मेलन में बहुत समय शेष है हम नवरचनाकारों की हार्दिक इच्छा है कि उससे पूर्व आप लोग हमारे जलपान के आग्रह को स्वीकार करते हुए संक्षिप्त गोष्ठी कर लें तो हमारा सौभग्य होगा।

डा० अतुल शर्मा जी ने तत्काल हामी भरी तथा सुझाव दिया कि एक बार आप लोग बगल के कमरे में ठहरे डा० धनंजय सिंह जी से भी पूछ लीजिए।

नयी दिल्ली से प्रकाशित होने वाली हिन्दी की लब्ध प्रतिष्ठित पत्रिका कादिम्बनी के वरिष्ठ संपादक व प्रख्यात गीतकार डा० धनंजय सिंह जी का दरवाजा खटखटाते हुए हमें संकोच हो रहा था बिना प्रत्यक्ष जान पहिचान व परिचय के हम सीधे उनसे मिलने जा रहे थे। पर जब वे बाहर आए तथा मैंने उन्हें

अपना स्वयं का एंव अन्य साथियों का परिचय देते हुए कहा कि हम स्थानीय कवि........।

उन्होंने मुझे तुरंत टोकते हुए कहा कि बन्धु मुझे आपके स्थानीय कवि शब्द पर आपत्ति है। कवि कभी भी स्थानीय नहीं होता और यदि आप यंहा स्थानीय है तो फिर हम भी अपने शहर में स्थानीय ही कहे जाएंगे

कवि तो सार्वभौम होता है। अतः आप स्वयं को स्थानीय कवि ना कहकर मात्र कवि कहकर सम्बोधित करेंगे तो उचित होगा।

डा० धनंजय सिंह जी की यह व्याख्या प्रेरणादायी के साथ अत्यन्त प्रभावशाली एंव आत्मीयता का पुट लिए हुयी थी।

हमने जब उनके सम्मुख अपना जलपान व शिष्टाचार भेंट का प्रस्ताव रखा तो वे सहर्ष तैयार हो गए तथा पूछा कि कंहा जाना है तथा वंहा कितना समय लगेगा ?

हमने उन्हें बताया कि बिल्कुल बगल में ही एक अतिथिगृह का सभागार है, दो मिनट का रास्ता है तो वे सहर्ष तैयार हो गए।

इसी के साथ उन्होंने अपने अन्य कवि मित्रों श्री मोहिन्दर शर्मा, श्री सतीश सागर जी को भी चलने के लिए तैयार कर दिया।

श्रीनगर गढ़वाल की डालमियां धर्मशाला के सभागार में उस दिन आयोजित वह कवि गोष्ठी मुझे आजीवन याद रहेगी।

हम लोगों ने राष्ट्रीय स्तर के कवि अतिथियों के सानिध्य में पहली बार बैठकर कविताएं सुनी व उन्हें अपनी रचनाएं सुनाने का अवसर भी मिला।

डा०धनंजय सिंह जी ने ना केवल हमारी रचनाओं की प्रशंसा की वरन प्रस्ताव रखा कि शीघ्र ही सहयोगी आधार पर मेरे संपादन में एक राष्ट्र स्तरीय काव्य संग्रह प्रकाशित होने वाला है यदि आप लोग इच्छुक हों तो उसमें आपके विस्तृत परिचय सहित पांच पांच रचनाओं का संकलन प्रकाशित किया जाएगा।

डा० धनंजय सिह जी का यह प्रस्ताव हमारे लिए अत्यंत प्रेरणादायी सिद्ध हुआ। 'सपनों के मोर पंख' शीर्षक नाम से प्रकाशित हुए उस काव्य संग्रह में दिल्ली, हरियाणा, मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश , उत्तराखण्ड आदि राज्यों के नवोद्धि रचनाकारों की कविताओं को संकलित किया गया था।

डा०धनंजय सिंह जी के कुशल संपादन में प्रकाशित इस काव्य संग्रह से मुझे व्यक्तिगत रुप से यह लाभ हुआ कि मेरे साहित्यिक संबंधों का विस्तार प्रारम्भ हो गया।

कहना अतिश्योक्ति ना होगा कि साहित्य जगत के नवीन मैत्रीय संबंधों ने नवीन दृष्टिकोण विकसित करने, नवीन अनुभवों को संजोने के साथ ही आत्मविश्वास में वृद्धि करने में प्रेरक का कार्य किया।

डा० धनंजय सिंह जी के साथ की यह परिचय श्रृंखला आगे चलकर प्रगाढ़ता में परिवर्तित हो गयी। इसके पश्चात आपकी प्रेरणा से 'नयी सदी के हस्ताक्षर', 'सपनों के शिखर, ' आदि अन्य काव्य संग्रह भी प्रकाशित हुए।

गजियाबाद की वह अविस्मरणीय काव्य गोष्ठी

इस बीच हमारे मित्र राकेश चन्द्र जुगराण जो उस समय ऐटा में सह जिला निरीक्षक अधिकारी के पद पर कार्यरत थे वंहा से स्थानांतरित होकर गाजियाबाद आ गए।

उन्होंने प्रस्ताव रखा कि मैं किसी दिन श्रीनगर से मित्र राजेश जैन व जय कृष्ण पैन्यूली को लेकर गाजियाबाद आ जाऊं साथ ही हम आदरणीय डा० धनंजय सिह जी से भी अनुरोध कर लेंगे व इस प्रकार से मेरे आवास पर एक काव्य गोष्ठी हो जाएगी। मैंने आदरणीय डा० धनंजय सिंह जी को जब फोन कर इस प्रस्ताव से अवगत कराया तो उन्होंने प्रसन्नतापूर्क सहमति प्रदान की।

फिर कुछ दिनों के पश्चात श्रीनगर गढ़वाल से

हम तीनों मित्र निर्धारित तिथि को जुगराण जी के पास पंहुच गए तथा डा० धनंजय सिंह जी को संध्या की गोष्ठी के लिए आमंत्रित कर दिया।

उस शाम डा० धनंजय सिंह जी जुगराण के आवास पर पधारे तथा साथ ही अपने साथ दो वरिष्ठ कवियों(श्री प्रेम शर्मा तथा श्री बृजेश भट्ट जी) को भी लेकर आए।

देर रात्रि तक संचालित उस काव्य गोष्ठी में काव्य स्वर लहरियां गुंजित होती रहीं। गीत, छंद, मुक्तक से लेकर सार्थक कविताएं, संस्मरण व अनुभवों को साझा करने का दौर रात्रि प्रहर तक चला।

कहने की आवश्कता नहीं कि इस काव्य गोष्ठी में डा० धनंजय सिह जी के साथ श्री प्रेम शर्मा एवं श्री बृजेश भट्ट जी जैसे वरिष्ठ व स्थापित कवियों ने हम नवरचनाकारों की रचनाओं की सराहना कर हमारे आत्मविश्वास में असीम वृद्धि की।

संबंधों में प्रगाढ़ता-

(मेरा प्रथम अखिल भारतीय कवि सम्मेलन में काव्य पाठ करना)

डा०धनंजय सिह जी के साथ मेरे प्रगाढ़ संबंधों को तब और ऊँचाई मिली जब मुझे जब हिंदी अकादमी दिल्ली द्वारा स्वतंत्रता दिवस 15 अगस्त 2002 के अवसर पर आयोजिति होने वाले अखिल भारतीय कवि सम्मेलन में पहली बार काव्य पाठ हेतु निमंत्रण मिला।

यह निमंत्रण मिलने पर मेरा खुशी के मारे हवा में तैरना स्वाभाविक ही था। मैंने कवि सम्मेलन में आमंत्रित कवियों की सूची में श्रद्धेय हरि ओम पंवार, श्री कुंवर बैचेन, श्री भारत भूषण, डा०धनंजय सिंह, श्री अरुण जैमिनी, श्री शोक चक्रधर, श्री ओम प्रकाश आदित्य, श्री विष्णू सक्सेना, श्री प्रवीण शुक्ला आदि कवियों का नाम पढ़ते ही सबसे पहले डा० धनंजय सिंह जी को फोन मिलाकर सादर सूचित किया कि मेरे लिए यह गर्व का विषय है कि मुझे आप जैसे वरिष्ठ कवियों के सानिध्य में मंच पर बैठकर काव्य पाठ करने का शुभ अवसर प्राप्त हो रहा है।

डा०धनंजय सिंह जी ने पूछा कि मैं कैसे (अर्थात बस से अथवा ट्रेन से)दिल्ली आ रहा हो ? मैंने बताया , आदरणीय मैं देहरादून से रात्रि को चलने वाली मसूरी एक्सप्रेस से आऊंगा। डा० धनंजय सिंह जी ने कहा तो आप दिल्ली से पहले गाजियाबाद स्टेशन उतर जाइएगा।

यंहा आप घर पर आइए फिर हम यंहा से साथ चलेंगे। मेरे लिए यह और भी प्रसन्नता की बात थी कि डा० धनंजय सिंह जी जैसे वरिष्ठ कवि व साहित्यकार के आवास पर जाकर भेंट करने का अवसर मिल रहा था।

अस्तु मैं 14 अगस्त 2002 की प्रातः को डा० धनंजय सिंह जी के आवास पर पंहुच गया। कहना अतिश्योक्ति ना होगी कि डा० धनंजय सिंह जी ने अत्यंत आत्मीयतापूर्वक मेरा स्वागत किया।

उन्होंने कहा कि आप नहा धोकर सफर की थकान दूर कर लीजिए तब तक नाश्ता भी तैयार हो जाएगा, कार्यक्रम तो शाम को है तब तक आप मेरे साथ दिल्ली चलिए दिन में ऑफिस का काम निपटाकर हम शाम को यंहा वापस आ जाएंगे तथा फिर तैयार होकर सम्मेलन के लिए निकलेंगे।

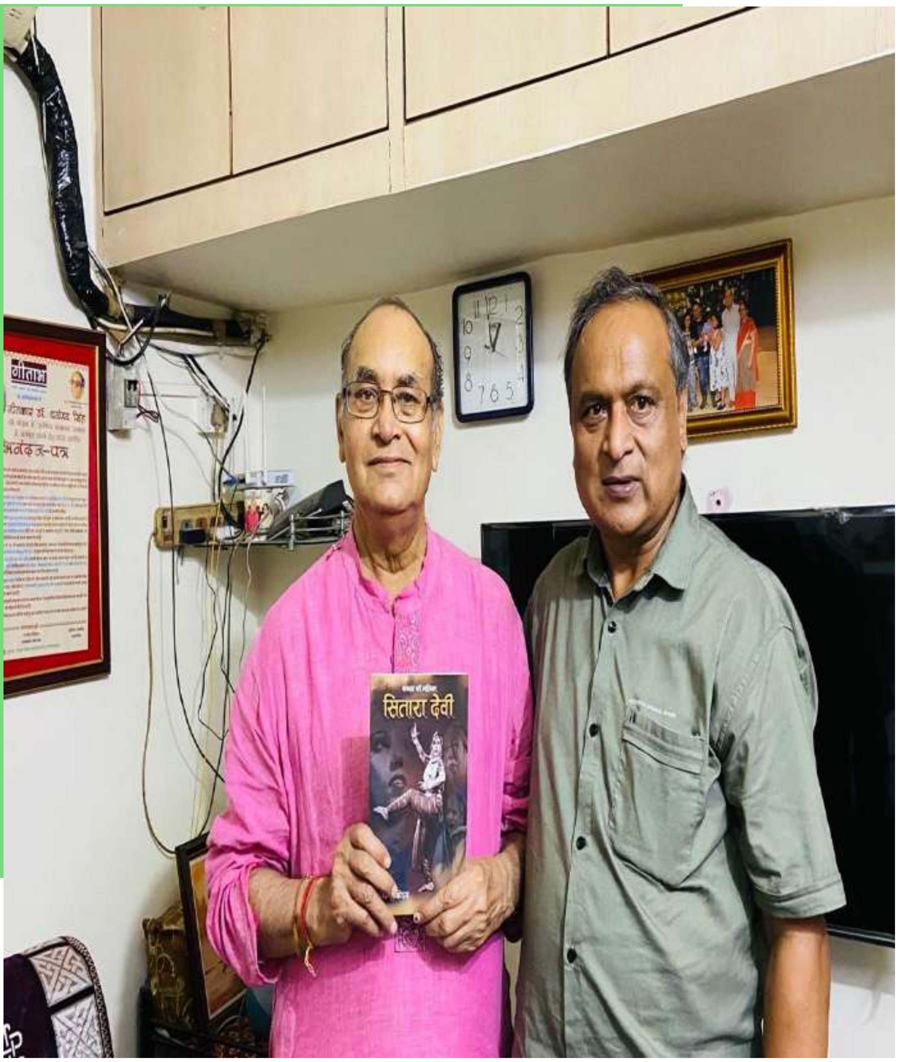

फिर नौ बजे के लगभग हम दोनों लोग तयशुदा कार्यक्रम के अनुसार दिल्ली के लिए रवाना हुए। दिल्ली में हिंदुस्तान की बिल्डिंग में प्रवेश करना भी मेरे लिए कम रोमांचकारी नहीं था।
लिफ्ट से ऊपरी मंजिल में जाना फिर वंहा बहुत बड़े हॉल में अनेक सारे चेम्बर्स में कम्पयूटर के आगे काम करते इतने सारे लोगों को देखना मेरा पहला अनुभव था। एक समाचार पत्र छापने के लिए इतनी बड़ी फौज काम करती है मुझे इसका तनिक भी अंदाजा नहीं था।
हिंदुस्तान की बिल्डिंग में कादिम्बनी के कार्यालय में जाना भी मेरे मन में अज्ञात सी अनुभूति करा रहा था। वंहा आदरणीय डा० धनंजय सिंह जी अपने केबिन में बैठकर काम करने लगे कि तभी उनके परिचित ने प्रवेश किया।
औपचारिक अभिवादन के पश्चात डा० धनंजय सिंह जी ने मेरा उनसे परिचय कराया आप रायपुर से गिरीश पंकज जी हैं। फिर कुछ देर इधर उधर की बातचीत के बाद उन्होंने
गिरीश पंकज जी से पूछा कि क्या आप भी मॉरीशस चल रहे हैं तो उन्होने कहा नहीं अभी अभी मैं अफ्रीका के लम्बे प्रवास से लौट रहा हूं इतनी जल्दी दुबारा विदेश यात्रा संभव नहीं है।
फिर कुछ देर की बातचीत के बाद डा० धनंजय सिंह जी हमें पास में ही स्थित प्रेस क्लब ले गए। सच बताऊं पहले हिंदुस्तान के भव्य भवन फिर कादिम्बनी के कार्यालय व अब प्रेस क्लब में बैठकर चर्चा करते हुए अल्पाहार लेने के वे क्षण मेरे जीवन के अनमोल अनुभव बन गए।
वहाँ एक से बढ़कर एक नामी गिरामी पत्रकारों लेखकों, संपादकों व कलम बिरादरी के नामचीन हस्तियों से डा०धनंजय जी ने मेरा परिचय कराया।
श्रीनगर के पहाड़ी कस्बे से निकलकर देश की राजधानी दिल्ली के प्रेस क्लब में जाना मुझे किसी स्वप्न लोक सा लग रहा था।
उस मायावयी संसार से निकल कर जब हम बाहर आए तो गिरीश पंकज जी ने कहा कि मुझे जाना है अतः मैं चलने की अनुमति चाहता हूं ऐसा कहते हुए अभिवादन कर वे हमसे विदा लेकर चले गए।

(मेरा प्रथम अंतर्राष्ट्रीय हिंदी साहित्य सम्मेलन में प्रतिभाग)

पुनः जब मैं व डा०धनंजय सिंह जी कादिम्बनी कार्यालय में आए तो अपने कम्पयूटर में काम करते हुए उन्होंने अचानक कहा, अरे मैं तो बातचीत में बताना ही भूल गया कि 17 से 23 अक्टूबर 2002 की अवधिमें मॉरीशस में 24वां अंतर्राष्ट्रीय हिंदी सम्मेलन हो रहा है, क्या आप भी चलना चाहेंगे ?
मॉरीशस में अंतर्राष्ट्रीय हिंदी सम्मेलन ! सुनकर मेरा मन तो बल्लियों उछलने लगा। हां, सर जी जरुर चलना चाहूंगा, मैंने उत्साह में भरकर कहा।
सम्मेलन में प्रतिभाग करने के लिए क्या करना होगा सर जी ?मैंने अपनी उत्सुकता प्रकट की।
आप अपना साहित्यिक परिचय समकालीन साहित्य सम्मेलन के महासचिव जी को प्रेषित कर दीजिए वे आपको विधिवत सूचना व निमंत्रण पत्र भेजेंगे पता मैं आपको बताता हूं नोट कीजिए ऐसा कहते हुए उन्होंने मेज की दराज से एक लिफाफा निकाला उसमें से एक पत्र पढ़कर खोलकर पढ़ने लगे। डा० महेन्द्र कार्तिकेय.... महासचिव ... समकालीन साहित्य सम्मेलन ...।
अरे डा०महेन्द्र कार्तिकेय जी समकालीन साहित्य सम्मेलन के महासचिव हैं मैंने धनन्जय सिंह जी की बात में हस्तक्षेप करते हुए जिज्ञासा प्रकट की ? हां, मुंबई वाले डा० महेन्द्र कार्तिकेय जी आप उनसे परिचित हैं धनन्जय सिंह जी ने प्रतिप्रश्न किया ?
जी हां बहुत अच्छी तरह से, हिंदी साहित्य सम्मेलन प्रयाग के कार्यक्रमों में मुंबई व इलाहाबाद में उनसे भेंट हुयी थी, मेरी डायरी में उनका पता नोट है व फोन नंबर भी मैंने आत्मविश्वास से भरकर कहा।
तो फिर आपको आपको क्या नोट करवाऊं

कहते हुए धनन्जय सिंह जी ने उस पत्र को पुनः लिफाफे में डालकर दराज में रख दिया। पासपोर्ट तो आपका बना हुआ होगा ही उन्होने आश्वस्त होने के लिए जानना चाहा ? पासपोर्ट ! सुनकर मुझे दिल की धड़कन बढ़ती हुयी महसूस हुयी। सॉरी सर पासपोर्ट तो नहीं बना हुआ है मैंने मायूसी भरा उत्तर दिया।

तो दिल्ली से घर लौटते ही सबसे पहले आप फटाफट पासपोर्ट बनवाएं बिना पासपोर्ट के विदेश यात्रा कहां संभव है इतना तो आपको ज्ञात ही होगा धनन्जय सिंह जी ने सलाह दी।

जी पासपोर्ट तो मैं बनवा ही लूंगा मैंने विश्वास पूर्वक कहा। बंधू पासपोर्ट के लिए जाते ही आवेदन कर दीजिए इस प्रक्रिया में समय लगता है पुलिस जांच, एड्रेस वेरिफिकेशन आदि आदि। आधा अगस्त समाप्त होने को है व अक्टूबर में सम्मेलन है फिर वीजा के लिए कम से कम दस दिन पहले आवेदन करना पड़ेगा उन्होने मेरे भावातिरेक को सहज करते हुए कहा।

जी मैं आपको विश्वास दिलाता हूं कि समय से पहले ही मेरा पासपोर्ट बनकर तैयार हो जाएगा मैंने दृढ़ संकल्पित होते हुए कहा। मैं आपके आत्मविश्वास का सम्मान करते हुए एक बात कहना चाहता हूं कि आप भारतीय कार्यालयों की लेट लतीफी से तो परिचित हैं ही तो पासपोर्ट विभाग भी इस सुस्त संस्कृति से अछूता कैसे रह सकता है इसलिए मॉरीशस अंतर्राष्ट्रीय हिंदी सम्मेलन में प्रतिभाग करना है तो सबसे पहली शर्त आपके पास वैध पासपोर्ट का होना है, धनंजय सिह जी ने मुझे सचेत करते हुए कहा। सर, मैं आपकी बात समझ गया मैंने सहमति में गर्दन हिलायी। फिर कुछ देर तक अन्य विषयों पर चर्चा करने के पश्चात हम गाजियाबाद लौट आए।

स्वाधीनता दिवस की पूर्व संध्या पर हिंदी अकादमी दिल्ली द्वारा आयोजित वह राष्ट्रीय कवि सम्मेलन निःसंदेह मेरे जीवन की महत्वपूर्ण उपलब्धि। देश के प्रतिष्ठित, वरिष्ठ व सम्मानित कवियों के साथ ही विशाल पाण्डाल की दीर्घा में सम्मुख विराजित अति विशिष्ट, महत्वपूर्ण व जागरुक श्रोताओं की उपस्थति में किया गया मेरा प्रथम काव्य पाठ मेरे जीवन में सदा सदा के लिए स्मरणीय बन गया। मैं निसंकोच कह सकता हूं कि दिल्ली अकादमी द्वारा आयोजित इस अखिल भारतीय कवि सम्मेलन की अतिरिक्त उल्लेखनीय उपलब्धि डा० धनंजय सिंह जी का सामीप्य पाना रहा।

तत्पश्चात डा० धनंजय सिंह जी के प्रोत्साहन से ही मुझे 17 से 23 अक्टूबर 2002 की अवधि में मॉरीशस में आयोजित हुए 24वें अंतर्राष्ट्रीय हिंदी सम्मेलन में प्रतिभाग का अवसर भी प्राप्त हुआ।

कुछ समय पश्चात रायसेन (मध्य प्रदेश) से साहित्यकार मित्र इसरार अहमद कुरैशी जी का फोन आया कि चैन्नई में अल्ताफ अहमद जी अखिल भारतीय कवि सम्मेलन कर रहे हैं श्रीनगर गढ़वाल से आप व गाजियाबाद से डा० धनंजय सिंह जी सादर आमंत्रित है। मैंने तत्काल डा० धनंजय सिंह जी को यह सूचना प्रेषित की तथा साथ ही आग्रह किया कि आप ही मेरा भी रेल टिकट बुक करवा दीजिएगा। पोंगल त्यौहार के अवसर पर 14 जनवरी 2006 को चेन्नइे में आयोजित होने वाले इस कवि सम्मेलन में मुझे डा० धनंजय सिंह जी के साथ लम्बी दूरी की रेल यात्रा करने व अनेक अनुभवों को साझा करने का शुभअवसर प्राप्त हुआ।

इसके पश्चात मैं दो बार और उनके साथ चैन्नई कवि सम्मेलन में गया। फिर एक बार डा० बुद्धिनाथ मिश्र जी ने टिहरी हाइड्रो डेवलपमेंट कार्पोरेशन के कवि सम्मेलन में जब आमंत्रित किया तो वंहा भी डा० धनंजय सिंह जी के साथ काव्य पाठ के अतिरिक्त टिहरी बांध व सुरंग के अंदर निर्मित विद्युत उत्पादन केंद्र को देखने व पर्यटन का अवसर प्राप्त हुआ।

इस बीच हमारे मित्र श्री राकेश चन्द्र जुगराण जब डायट देहरादून पोस्टिंग पर आए तो उन्होंने वंहा आयोजित कार्यशाला में डा० धनंजय सिंह जी के साथ ही मुझे भी आमंत्रित किया।

देहरादून के अतिरिक्त श्रीनगर गढ़वाल में बैकुंठ चतुरर्दशी के अवसर पर आयोजित होने वाले अखिल भारतीय कवि सम्मलनों में डा० धनंजय सिंह जी अनेक बार श्रीनगर काव्य पाठ हेतु पधारे हैं।

आपने अपने सुंदर गीतों, समधुर कंठ व सर्वोपरि सरल सहज व्यवहार से अपने प्रशंसकों का बहुत बड़ा साम्राज्य स्थापित किया हुआ हैं। मैं कह सकता हूं कि उत्तराखण्ड से आपको सदैव यथोचित मान सम्मान व आदर मिला है। प्रतिफल में आपने भी उत्तराखण्ड के साहित्य प्रेमियों को भरपूर स्नेह प्रदान किया है।

(संयुक्त अरब अमीरात के अंतर्राष्ट्रीय हिंदी साहित्य सम्मेलन में पुनः प्रतिभाग)

हां, मुझे स्मरण हो रहा है कि डा० धनंजय सिंह जी के साथ संयुक्त अरब अमीरात में 12 से 19 फरवरी 2013 को आयोजित होने वाले अंतरर्ष्ट्रीय हिंदी सम्मेलन में प्रतिभाग करने का एक अन्य अवसर भी मुझे प्राप्त हुआ।

हांलाकि इस बार वे नई दिल्ली से हमारे साथ नहीं चल रहे थे। फोन पर सम्पर्क करने पर उन्होने बताया कि मैं आजकल अपने बेटे के पास नाइजीरिया हूं लेकिन 12 फरवरी को सपत्नीक दुबई पंहुच जाऊंगा तथा सम्मेलन समापन के पश्चात हमारे साथ ही भारत लौटेंगे। दुबई में प्रथम दिवस को मध्याहन बेला में हमारा दल नगर की चकाचैंध से बहुत दूर किसी दुर्गम रेतीले इलाके में डिर्जट सफारी की रोमांचकारी राइड का आनंद लेने के लिए गया।

फिर हमने एक डिजर्ट रिजॉर्ट में साथ साथ अरब संसार की सांस्कृतिक संध्या का आनंद भी लिया। इस आठ दिवसीय सम्मेलन में प्रत्येक दिन भर की गतिविधियों के पश्चात सायं को हम डा० धनंजय सिंह जी के साथ कक्ष में अवश्य ही बैठते थे।

परिचर्चा के दौरान हमने डा० धनंजय सिंह जी के साथ उनके अफ्रीका भ्रमण के अनेक अनुभवों को साझा किया।

उन्होने हमें विस्तार से वाइल्ड लाइफ पार्क मसाईमारा के पर्यटन के रोमांचकारी अनुभव बताए साथ ही पार्क के विभिन्न पशु पक्षियों शेर, बाघ, हिरन, चीतल, जिराफ, , रीछ, गैण्डा आदि के आकर्षक फोटो भी दिखाए। डा० धनंजय सिंह जी के द्वारा साझा किए गए इन रोचक संस्मरणों के साथ ही संयुक्त अरब अमीरात के दुबई, शारजाह, अजमान, अबूधाबी, फुजीरोह आदि देशों में संचालित पर्यटन एवं साहित्यिक गतिविधियों में उनका सानिध्य मिला। श्रीनगर गढ़वाल के सुदर्शन कैसल होटल में आपसे हुयी प्रथम भेंट तथा श्री बद्रीनाथ केदारनाथ समिति के विश्रामालय

के सभागार में आयोजित काव्य गोष्ठी में आपके सानिध्य में किये गये काव्य पाठ से प्रारम्भ हुयी मेरी साहित्यिक यात्रा जो गाजियाबाद, नयी दिल्ली, मॉरिशस, देहरादून, नयी टिहरी, चेन्नई, संयुक्त अरब अमीरात के दुबई, शारजाह, अजमान, अबूधाबी, फुजीरोह आदि के अनेक पड़ावों से होकर गुजरी है में अपके साथ की गयी लम्बी दूरी की रेल यात्राओं, हवाई यात्राओं, समुद्री द्वीप तटों के पर्यटन के समृद्ध अनुभवों से से भरी हुयी हैं।

उपरोक्त संस्मरणें के आधार पर मैं कह सकता हूं कि हिंदी साहित्य क्षेत्र में यदि आज मुझे थोड़ा सा भी पहचान मिली है, थोड़ा सा भी नाम मिला है, थोड़े से भी साहित्यिक संबंध स्थापित हुए हैं अथवा थोड़े से भी अनुभव प्राप्त हुए हैं तो इसका समस्त श्रेय परम आरणीय डा०धनंजय सिंह जी को ही जाता है। अपने सरल व्यवहार, मधुर वाणी व सहयोगी प्रवृत्ति के कारण आप पल भर में ही किसी के भी अपने हो जाते हैं। साहित्यिक प्रतिभा के धनी होने, वरिष्ठ होने, विख्यात प्रख्यात होने, मान सम्मान प्राप्त कर उच्चतम बिंदु पर स्थापित होने का आप पर लेश मात्र भी दम्भ नहीं हैं आप सदैव नवोद्भि रचनाकारों को प्रोत्साहित करते हैं , प्रेरणा देते हैं व उनके पथ प्रदर्शक बनकर मार्ग प्रशस्त करते हैं।

मैं आपके सुदीर्घ, स्वस्थ एंव सफल जीवन की कामना करता हूं। यह हम सभी के लिए सौभाग्य का विषय है कि आपके सम्मान में पत्रिका प्रकाशित हो रही हैं मैं भगवान बद्री विशाल जी से प्रार्थना करता हूं कि आपके शतायु होने पर भी हमें आपके सम्मान में पुन: इसी प्रकार से पत्रिका प्रकाशित करने का

लेख में व्यक्त विचार लेखक के हैं उनसे संपादक मण्डल या संपर्क भाषा भारती पत्रिका का सहमत होना आवश्यक नहीं है। किसी भी विवाद की स्थिति में न्याय-क्षेत्र नई दिल्ली रहेगा।
प्रकाशक तथा संपादक : सुधेन्दु ओझा, 97, सुंदर ब्लॉक, शकरपुर, दिल्ली110092

सन्त मना कवि–पत्रकार डॉ– धनंजयसिंह

–श्याम श्रीवास्तव

अपनी काव्य॥ति 'दिन क्यों बीत गये' में प्रधान वाक्य 'कवित विवेकु नेकु नहिं मोरे' लिखने वाला परम विद्वान कोई निर्विकारी पराली ही सन्त दास कहलाने का अधिकारी हो सकता है।

आगामी 29–10–2019 को उम्र के पच्चहत्तर वर्ष में प्रवेश करने वाले यशस्वी कवि–पत्रकार डॉ– धनंजय सिंह, अमर भारती साहित्य, संस्॥ति संस्थान के संस्थापक होने के साथ–साथ कादम्बिनी पत्रिका के सम्पादक का कार्यभार भी सम्भालते हैं।

स्वभाव से विनम्र, यशलिप्सा से दूर, साधनारत डॉ– धनंजय सिंह निरालावृत्ति के पोषक हैं। 'जो जीते हैं वही लिखते हैं, अभिव्यक्त के पाखंड से दूर–बहुत दूर'

"किसी प्रलोभनवश, कोई समझौता नहीं किया
जैसे भी जी सका, शर्त पर अपनी सिर्फ़ जिया"

यह तो निर्विवाद सत्य है कि जीवन विसंगतियों से, कष्टों से भरा रहता है, किन्तु उत्सवधर्मी, संस्॥ति का तकाजा है कि इसी विसंगतियों से भरे जीवन में उत्सव के रंग भरता चले– कवि–साहित्यकार को तो यह उत्तरदायित्व और भी निभाना है। वह लिखते हैं:

"दुख–दर्दों से रहे हमारे ध् जनम–जनम के नाते ध्
फिर भी गीत–व्रती होकर हम रहे सदा पंचम में गाते"

इन दिनों नवगीत के कुछ नये भजंकार दाद, विसंगतियों का बखान बड़े चटपटे स्वरों–रंगों में करने में लगे हैं। इस विछोभी नवगीत को महिमा मंडित करने के अपने तर्क भी उनके पास हैं। लेकिन जो अमृत काव्य की रचना में साधनारत हैं, उन्हें तपस्वी कहा जाना चाहिये। कारण वे सही सिरे से समस्याओं के निदान में साधनारत हैं। सकारात्मकता के उपादान से निराशा को उत्साह उल्लास उत्सव की ओर ले जाने के लिए देखें:

"पत्र् लिखा मंजुल–भावों को ध् रचो सुमंगल गीत
और लिखा फिर ध् विश्वासों को ध् रहे अबाधित प्रीत"

और:

"रख दो व्यंग बाण तरकश में ध् ढीली कर लो प्रत्यंचायें
उन्मादों के अश्व दौड़ते ध् खींचों इनकी वल्गायें"

साहित्यकार–गीतकार–कवि अपनी–अपनी तरह यथाशक्ति समाज और मानवीय मूल्यों की संरक्षा एवं संवरण में साधनारत हैं। शब्द इस अभियान में उनके औजार–हसिंया–हथौड़ा, हल का काम करते हैं। उनका सही उपयोग आवश्यक है। डॉ सिंह लिखते हैं:

"शब्द अर्थ से हीन नहीं है ध् बहुत धनी हैं, दीन नहीं है
भरकर भाव गुनगुनाओ तो ध् स्वर कोई लयहीन नहीं है"

संक्षेप में कहना होगा कि कविकुलगुरु रवीन्द्रनाथ टैगोर एवं स्वामी विवेकानन्द के दिखाये सन्मार्ग पर चलते हुये डॉ–धनंजय सिंह को कवि–गीतकार का भी यही आह्वान है:

"आाओ साथी हर बाती के
मन में सोयी ज्योति जगायें
मानवता की राह प्रकाशित
करने वाले दीप जलाऐं———
लिखें तिमिर की नेमप्लेट पर
पूरनमासी का उजियारा
प्रेम–दीप की जगमग–जगमग
ज्योतिर्मय कर दो जग–सारा। "

आशा ही नहीं, पूर्ण विश्वास है कि अपनी अमृत–काव्य संरचना में, मानवीय–मूल्यों के संवर्धन में डॉ– धनंजय सिंह अपना योगदान यूँ ही शतवर्ष तक देते रहेंगे। शुभकामनाओं सहित।

भावों का अद्भुत संगम-डॉ धनंजय सिंह

डॉ धनंजय सिंह एक बहु-आयामी व्यक्तित्व के स्वामी होने के साथ-साथ आत्मीयता निभाने वाले दुर्लभ साहित्यकार हैं। वह प्राचीन और आधुनिक संदर्भों को नए दृष्टिकोण से देखने वाले श्रेष्ठ गीतकार हैं। डॉ धनंजय के साथ मेरी भेंट मेरे काव्य-संकलन 'गीत मंजरी' की प्रस्तावना के संदर्भ में हुई। हुआ यूँ कि जब मैं अपने गुरूजी डॉ अशोक मैत्रेय जी के पास गीत मंजरी की प्रस्तावना लिखवाने के लिए गई तो उन्होंने परामर्श देते हुए कहा कि-आप प्रस्तावना डॉ धनंजय सिंह से लिखवाएँ तो बेहतर रहेगा।

गुरुजी से फ़ोन नंबर लेकर मैंने धनंजय जी से संदर्भित विषय पर बात की। उनकी स्वीकृति मिलने पर मैं उनके ग़ाज़ियाबाद स्थित आवास पर गई और उन्हें अपने काव्य-संकलन की पांडुलिपि भेंट की। सहर्ष उन्होंने मेरे संकलन की प्रस्तावना लिखने के साथ-साथ मेरे गीतों को 'सरस्वती सुमन' पत्रिका में भी स्थान दिया।

आदरणीय डॉ धनंजय सिंह जी की साहित्यिक यात्रा के विषय में मेरे द्वारा कुछ लिखना सूर्य को दीपक दिखाने जैसा है। उनके व्यक्तित्व के बारे में कुछ भी कहने का साहस मुझ में नहीं है। मैं सिर्फ़ इतना ही कहना चाहूँगी कि-वह अनुशासन और सहृदयता का मिला-जुला रूप हैं। लंबे समय तक कादम्बिनी जैसी प्रतिष्ठित पत्रिका के संपादन से जुड़े रहने के बाद अपनी स्वंय की सृजनशीलता को बनाए रखना आसान काम नहीं था। परन्तु आप ने स्वंय को सृजनशील रखते हुए नए रचनाकारों का खूब उत्साहवर्धन किया।

अमर भारती साहित्य संस्कृति संस्थान के साहित्यिक आयोजनों में शिरकत करते हुए एक ओर जहाँ मुझे उनके फक्कड़ स्वभाव से रू-ब-रू होने का मौक़ा मिला वहीं दूसरी ओर गीत सृजन को लेकर उनके कड़े अनुशासन से भी वाक़िफ़ होना का अवसर मिला। उनके गीतों में बहुधा सरल शब्दों का तिलिस्मी प्रभाव नज़र आता है। वह कहते हैं-

"क्या खोया क्या पाया वाला गणित नहीं आया।
जो अनुगूँज उठी मन में बस मैंने वह गाया॥"

समाज की मानव विरोधी स्थितियों से जूझने की, उन पर विजय पाने की शक्ति उनके गीतों में स्पष्ट दिखलाई पड़ती है। धनंजय जी ने बार-बार गहराते अंधकार में रोशनी के दिए जलाए हैं। उनके गीतों में रह-रह कर समर्पण का भाव उमड़ता है। अपनेपन की प्यास लिए उनके हृदय में विराजमान भोला-भाला शिशु कह उठता है-

मन की गहरी घाटी में क्या उतरेगा कोई
जो उतरेगा वह फिर उस से निकल न पाएगा

धनंजय जी के गीतों में कोमल उपमानों की छटा बड़ा निराली होती है। जो अनछुई व्यंजना से सार्थक बन जाती है। उनकी मधुर कंठ ध्वनि में उनके गीत सुनना एक अलौकिक अनुभव की तरह होता है। उनके गीतों में भाव व शिल्प का अद्भुत संगम देखने को मिलता है। आज के इस युग में हर आदमी अपने अंदर एक अजनबीपन पाल कर घूम रहा है। ऐसे में उनका स्वर उस अजनबीपन को चुनौती देते हुए कहता है-

आओ, मिल बैठें-बतियाएँ
हो सकता है
शब्द न बोलें
बातों को मन ही मन तौलें

उनकी पहचान बन चुका यह गीत भी मुझे अक्सर याद आता है-

हमने कलमें गुलाब की रोपी थीं
पर गमलों में उग आई नागफनी

एक सच्चा कवि हर तरह की विषमता के विरूद्ध लड़ाई लड़ता है। धनंजय जी भी जीवन भर इस मोर्चे पर डटे रहे। आप शब्द, छंद, लय से कविता-कामिनी का शृंगार करते रहे हैं। एक स्थान पर वह कहते हैं-

प्रकृति के कैलेंडर में
आता नियमित वसंत
चाह रहे हम सब के जीवन में
आ जाए फागुनी बयार

गीतों में उनकी भाव-यात्रा एक पल के लिए भी पाठक को अकेला नहीं छोड़ती है। वह कहते हैं-

सुबह-सुबह नील कमल ताल पर
उतर गए चीलों के झुंड

अंत में मैं उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान द्वारा साहित्य भूषण सम्मान से अलंकृत डॉ धनंजय सिंह के स्वस्थ व सृजनशील बने रहने की कामना करती हूँ।

कमलेश त्रिवेदी फ़र्रूख़ाबादी

शान्त सरल और सौम्य गीतकार डॉ. धनंजय सिंह

आशा शैली

हालांकि मैं रामपुर बुशहर की कादम्बिनी क्लब की अध्यक्ष के नाते इससे पहले भी राजेंद्र अवस्थी से मिलने कई बार वहाँ जा चुकी थी। सुरेश नीरव जी से भी थोड़ी जान-पहचान थी ही, परन्तु डॉ. धनंजय सिंह से वहाँ आते-जाते कभी सामान्य सा भी परिचय नहीं हुआ। फिर एक परिचित लेखक ने मुझे कादम्बिनी कार्यलय जाने और वहाँ रचनाएँ देने को कहा था और मुझे डॉ. धनंजय सिंह का फोन नम्बर भी दिया था। डॉ. धनंजय सिंह से मेरी पहली मुलाकात उस समय हुई जब मैं हिमाचल में रहती थी और वे कादम्बिनी पत्रिका में कार्यरत थे। हालांकि जिनके कहने पर मैं डॉ. धनंजय सिंह से मिलने कादम्बिनी कार्यालय गई थी उनसे बस सामान्य सी ही पहचान थी, फिर भी मैं

चली गई। वह बहुत उथल-पुथल का समय था मेरा और मैं अनमने मन से ही कादम्बिनी कार्यालय गई थी, परन्तु डॉ. धनंजय सिंह के सौम्य व्यक्तित्व ने मुझे पहली ही नज़र में प्रभावित किया।

थोड़ी झिझक के साथ फोन किया था मैंने, पर वे तुरन्त ही बाहर आए। खद्दर का लम्बा कुर्ता और सफेद पायजामा पहने, चेहरे पर एक सौम्य मुस्कान लिए। वे मुझे भीतर ले गए और हम लोग देर तक बातें करते रहे। वे तब भी कादम्बिनी के उप सम्पादक थे और मैं एक साधारण कलमकार, परन्तु उनकी सरलता ने मेरी सारी झिझक एक पल में दूर कर दी। उसके बाद हमारी मित्रता गहरी और गहरी होती गई। अब मेरा जब भी दिल्ली जाना होता तो एक दोपहर तो हमारा साथ गुज़ारना

जरूरी ही होता। हम दिन भर साथ रहते, खाना खाते, गप्पें लगाते पर क्या मजाल कि कहीं डॉ. धनंजय सिंह ने अपने गीतकार को मेरे सामने आने दिया हो। हाँ यह बात अलग है कि कादम्बिनी में मेरी कोई रचना नहीं छप पाई। मुझे धनंजय ने बताया कि इसके लिए तो राजेंद्र अवस्थी ही चयन करेंगे। शायद छपती भी रचना पर मैंने हिम्मत ही नहीं की।

और फिर वे मेरे लिए मात्र धनंजय हो गए, तुम से तू हो गए। जीवन अब भी अव्यवस्थित ही था। मुझे वह दिन नहीं भूलता, मैं और कुहेली भट्टाचार्जी डॉ. सिंह से मिलने कादम्बिनी कार्यालय गए। कादम्बिनी कार्यालय में भी उथल-पुथल चल रही थी। बहुत सारे अच्छे कर्मचारी कादम्बिनी छोड़ चुके थे, इनमें मेरे एक अच्छे मित्र सतीश सागर भी थे। सब कुछ अनियमित सा था। पता था कि अब उन्हें भी यहाँ से विदा लेनी ही है। परन्तु डॉ. धनंजय सिंह का चेहरा अब भी वैसा ही खिला-खिला था। आँखों की चमक और होंठों की मुस्कुराहट बरकरार थी। एकदम वीतराग सन्यासी जैसी। बहुत देर तक हम लोग बातें करते रहे। जब वे हम दोनों को छोड़ने बाहर सीढ़ियों तक आए तो पूछने लगे, ''अब तुम्हारा क्या करने का इरादा है?''

''एक अच्छी पत्रिका निकालने के बारे में सोच रही हूँ।'' मैंने कहा तो डॉ. धनंजय ने तुरन्त ही जेब में हाथ डाला और एक हज़ार का नोट निकाल कर मेरे हाथ पर रख दिया, ''देर मत करो। हम तुम्हारे साथ हैं। यह शगुन लो और शुरू हो जाओ। पर मैं जल्दी शुरू नहीं कर सकी। बहुत सारी उलझने थीं। अस्तु!

जब हम बार-बार पंजीकरण कार्यालय का द्वार खटखटाकर थक गए तो एक बार फिर डॉ. धनंजय सिंह ने सहायता की और हमें शैलसूत्र के प्रकाशन की अनुमति मिल गई। पाठकों और रचनाकारों ने पत्रिका का भरपूर स्वागत किया और पत्रिका चल निकली। ढेरों रचनाएँ आने लगीं। शुरू-शुरू में उनसे रचना देने के लिए कहने से हिचकती रही, नई पत्रिका हैं और ये धुरंधर गीतकार। फिर जब पत्रिका लोकप्रिय होने लगी तब भी ये हाथ नहीं आए। बस हँसकर टाल देते। बार-बार अनुरोध करने पर भी इन्होंने अपने गीत नहीं दिए।

एक दिन इनसे मिलने ग़ाज़ियाबाद गई तो इनके कमरे से एक गीत उठा लाई और वह पत्रिका के हवाले कर दिया। उसके बाद भी कभी कभी फेसबुक से इनके गीत उठा लेती हूँ और पत्रिका में छाप देती हूँ। जबकि लोग धड़ाधड़ रचनाएँ भेजते रहते हैं और इन्हें परवाह ही नहीं। ऐसी ही सरल इनकी पत्नी मधु जी हैं, सौम्य सरल और नाम के अनुरूप मधु।

व्यक्तित्व तो एक ओर, पर इतनी आत्मीयता होते हुए मैंने आज तक इन्हें मंच पर नहीं सुना, न कभी आपसी बात-चीत में मैंने इनको रचना सुनाने को उद्यत देखा। हाँ, एक बार यह सौभाग्य मुझे गीताभ की गोष्ठी ने दिया। मैं तो बस इनका लिखा पढ़कर ही संतुष्ट हो सकती हूँ। डॉ. बुद्धिनाथ मिश्र के बाद यदि मुझे किसी के गीतों ने प्रभावित किया है तो उनमें से एक नाम डॉ. धनंजय सिंह का भी है। आज ग़ज़ल बहुतायत से कही जा रही है, अतुकान्त कविता का जोर ही नहीं रेल-पेल है। उसी अनुपात में सरस गीतों का अभाव डॉ. धनंजय के गीतकार को कहीं गहरे तक कचोटता है सभी तो उनका गीतकार कराहकर कहता है,

मन-वीणा में गुंजित होता/मृदु संगीत नहीं
ताल-छंद-लय युत गायन है /लेकिन गीत नहीं !
पहले जो भी लिख जाता वह गीत था
उसमें जलतरंग वाला संगीत था
लय थी, गति थी, नवल अर्थमय भाव थे
सबके मन के क्रौंच-मिथुन के घाव थे
शब्द भावना के संग होते /अब परिणीत नहीं !

परन्तु रचनाकार का मन कहीं निराशा में भी एक उज्ज्वल किरण खोज लेता है और फिर जब कोई नया गीत उसके प्राण गुनगुनाने लगते हैं तो सारे वातायन हँसने लगते हैं। सृष्टि का कण-कण हुमक उठता है। मन्दिरों की घंटियाँ बजने लगती हैं।

बहुत दिनों के बाद रचा फिर कोई गीत नया
गहन अन्धेरा चीर सुबह का सूरज जीत गया
भँवरे गाने लगे झूमकर /कलियाँ इठलायीं
पीकर मधु-मकरंद /तितलियाँ मन में बौरायीं
गया उदासी बुननेवाला स्याह अतीत गया
वातायन हंस उठे/किरन आंगन में मुसकायी
धरती छूने हरसिंगार की/डाली झुक आयी
वाष्पित जल से सागर का खारापन रीत गया

अभी कुछ दिन हुए डॉ. धनंजय सिंह का गीत संग्रह 'दिन क्यों बीत गए' आया समीक्षा के लिए तो इनके कुछ और गीतों से साक्षात्कार का भी अवसर मिला। डॉ.धनंजय सिंह का 'दिन क्यों बीत गए' गीत संग्रह आज के उत्तर आधुनिक परिवेश की अमानवीयता, संवेदनहीनता का आईना कहा गया है। समीक्षक पूनम सिंह के अनुसार धनंजय सिंह पर्यावरण चिंता को भौतिक स्तर पर उठाते हैं।

प्रभु से नम्र निवेदन है कि गीतों के ये वातायन ऐसे ही हँसते रहें, हरसिंगार की डालियाँ धरती को छूती रहें और डॉ. धनंजय सिंह के गीत ऐसे ही गहन अँधेरे को चीरकर सुबह के सूरज का विजयगान करते रहें।